मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
'जैनविजय' प्रि० प्रेस-सूरत।
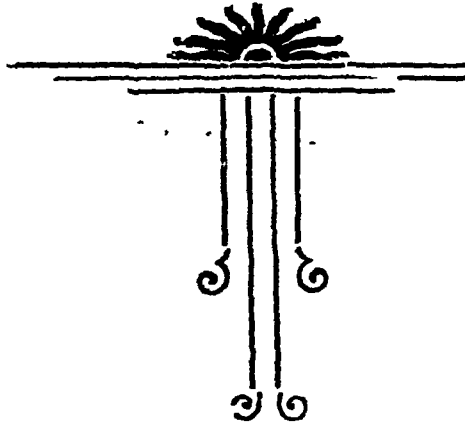
प्रकाशक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, चंदावाड़ी-सूरत।

भूमिका ।

विदित हो कि इस पवित्र जैन धर्मके सिद्धांत आत्माकी उन्नतिमें सर्वोत्तम और परम आदरणीय हैं, जिनको ठीक२ समझकर चलनेवाला जीव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि सुगमतासे कर सकता है और इस सिद्धिके साधनको करते हुए किसी प्रकारका कष्ट नहीं उठा सकता है। हमारी वर्षोंसे यह कामना हो रही थी कि सर्वसाधारण जैनी तथा अजैनी महाशयगण किस प्रकारसे जैन धर्मके सिद्धांतोंको सुगमतासे जानकर अपना हित कर सकें-इसका कुछ उद्योग किया जाय।

जैन धर्मकी प्राचीनताके विषयमें कुछ मिथ्या आक्षेपोंको ठीक २ समझाते हुए और यह दिखलाते हुए कि, न जैनधर्म नास्तिक है, न बौद्ध धर्मकी शाखा है, न हिन्दु धर्मसे निकला है; किन्तु एक प्राचीन स्वतंत्र धर्म है, जिसके प्रकटकर्त्ता इस कल्पकालके आदिमें श्रीऋषभदेवजी हुए हैं एक पुस्तक 'जिनेन्द्र-मतदर्पण' प्रथम भाग प्रकाशित की गई। उसके पीछे जिन सात तत्त्वोंके श्रद्धान करनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए 'जिनेन्द्रमतदर्पण' द्वितीय भाग अर्थात् तत्त्वमाला प्रगट की गई।

श्रद्धान और ज्ञानके पश्चात् आचरण करना अवश्य है। यह आचरण दो प्रकारका है:—पहला मुनिश्वरोंके लिये और दूसरा गृहस्थ श्रावकोंके लिये। प्रथम इस बातको लिखना आवश्यक समझकर कि गृहस्थियोंको अपने गृहस्थके कार्य बहुत ही सहजमें मालूम हो जाय, यह पुस्तक "जिनेन्द्रमतदर्पण" तृतीय भाग अर्थात 'गृहस्थधर्म' लिखी गई है। इस पुस्तकके विषयको संग्रह करनेके लिये हमने कई वर्षोंसे ग्रन्थोंका अवलोकन किया व विद्वानोंसे चर्चा वार्ता की। इसमें निम्न लिखित ग्रन्थोंकी सहायता मुख्यता करके ली गई है:—

(१) श्री तत्त्वार्थसूत्र—श्रीउमास्वामीकृत
(२) श्री रत्नकरंडकश्रावकाचार—श्रीसमन्तभद्राचार्यकृत
(३) श्री सर्वार्थसिद्धि—श्रीपूज्यपादस्वामीकृत
(४) श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा प्राकृतसंस्कृतटीका—श्रीशुभचन्द्रकृत
(५) श्री श्रावकाचार—श्रीवसुनन्दि आचार्यकृत
(६) श्री महापुराण—श्रीजिनसेनाचार्यकृत
(७) श्री गोमट्टसार संस्कृतटीका—श्रीअभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीकृत
(८) श्री यशस्तिलक चम्पू—श्रीसोमदेव आचार्यकृत
(९) श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय—श्रीअमृतचन्द्रकृत
(१०) श्री सुभाषितरत्नसंदोह—श्रीअमितिगति आचार्यकृत

(११) श्री सागारधर्मामृत, भव्यकुमुदचन्द्रिका सं० टीका
पं० आशाधरकृत

(१२) श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचार-पं० मेधावीकृत

(१३) त्रिवरणाचार-सोमसेन भट्टारककृत

(१४) ज्ञानानन्द निजरस-निर्भर श्रावकाचार भाषा

हमने अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार जो अर्थ समझा है उसीका भाव इस पुस्तकमें स्वतंत्र रीतिसे प्रगट किया गया है। बहुधा प्रमाणोंके लिये मूल ग्रंथके श्लोक व संस्कृतटीकाके गद्य दे दिये गये हैं, जिसमें विचारशील पाठकगण भले प्रकार अर्थको विचार लेवें।

इस पुस्तकके द्वारा गर्भसे मरण पर्यंतकी क्रियाएं जो गृहस्थियोंको करनी होती हैं बहुत संक्षेपसे वर्णन की गई हैं, ताकि एक मामूली गृहस्थ भी विना किसी विशेष खर्चके व पंडितोंके आलम्बनके अपने पुत्रोंके जन्म, मुंडन, विद्यालाभ, जनेऊ और विवाह आदि संस्कारोंको कर सके तथा एक गृहस्थ किस प्रकार धीरे २ अपनी इच्छानुसार धन कमाता हुआ व गृहमें रहकर सबका उपकार करता हुआ अपने चारित्रको बढ़ाकर ऐलक पदवी तक पहुंच सकता है, इसका संक्षेपसे वर्णन किया गया है।

बहुतसे लोगोंको मरणकी क्रिया व सूतक पातकके विचारमें बहुधा कठिनाइयां उठाना पड़ती थीं उनको दूर करनेके अभिप्रायसे जहांतक इन विषयोंमें हाल विदित हुआ है प्रकाशित किया गया है।

ऐसी पुस्तकके रचनेके लिये विद्यार्थी अवस्था ही में हमारे इस शरीरके निज भ्राता लाला सन्तलाल (जो चौक चूड़ी गली, लख-

नऊमें सकुटुम्ब रहते हैं) जीकी प्रेरणा रहा करती थी उस प्रेरणा-रूपी बीजका कुछ स्फुटन इस पुस्तकमें किया गया है।

न्याय, व्याकरण व जैन सिद्धांतका मर्मी न होनेके कारण संभव है कि अज्ञान व प्रमादके द्वारा कहीं कुछ अन्यथा अर्थ लिखा गया हो उसके लिये उदार और क्षमाशील पाठकोंसे प्रार्थना है कि हमको एक पत्रद्वारा सप्रमाण सूचित करें जिससे आगामी सुधार देनेका विचार किया जाय। यह द्वितीय आवृत्तिमें कुछ बातें ठीक कर दी गई हैं।

हमारी यह इच्छा है कि इस पुस्तकका प्रचार जैन और अजैन सर्व पठनशील पाठकोंमें किया जाय जिसमें सर्व ही गृहस्थ अपने आचरणको इस पुस्तकके अनुसार ठीक कर सकें और परम उपादेय जो आत्मानुभवरूपी अमृतरसायन है उसका स्वाद ले सकें।

बम्बई वीर सं० २४४९
पौष वदी १४
ता० १७-१२-२२

प्रार्थी—
सीतलप्रसाद ब्रह्मचारी।

विषय–सूची।

शुद्ध्याशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
११	११	पहुंज़ाना	पहुंचाना
१२	१४	रोहले	दोहले
२५	८	पः	यः
२६	२०	इन्दु	इन्द्र
३१	१	निषय	निषद्या
३७	११	वहरावे	पहराने
४०	७	कानमें	दाहने कानमें
४२	१४	तङ्का	तङ्कां
५०	१	दवो	देवा
५१	१७	चिद्रुप	चिद्रूप
५६	१४	शेषा	शेष
७१	४	निकले	निकाले
,,	७	नःसहि	निःसहि
७४	८	ही कही	कहीं
७९	१२	ताकात	ताकत
१०२	११-१२	सो....कहना	०
१०३	१७	गुप्ता	गुप्त
१०४	१	बीज	चीज़
१००	७	अग्गि	अग्नि
११९	६	वाणिज्या	बाणिज्य

१२०	१८	दु.श्रति	दुःश्रुति
१२७	२२	सोऊंगा	बैठूंगा
१४०	२१	षां	स्तेषां
१४३	९	क.यों	कार्यों
१९१	१	पुश्क	पुण्य
,,	१०	कोयक	कोयल
,,	१७	क्या	क्या अंतर है
१९२	९	पशुओंमें	पशुओंमें
१६०	१	इस	०
,,	११	मनं	मनः
१७७	२	पाष	पाठ
१७९	१६	मध्यकम	मध्यम
१८१	१२	भावी	भवी
१८९	६	सर्वका	सर्वको
१८७	५	किया नहीं	नहीं
१९१	१५	करवने	करावने
१९९	४	रुढ़ी	रुढ़ो
१९९	१८	गुढ	गूढ़
२११	६	करता करता	करता कराता
२१६	४	स्त्रागंम्	स्त्रांगम्
२२९	९	२८वें	३८वें
२३१	५	प्रति	प्रति संतान

२१६	१६	भोजन	हाथमें भोजन
२३९	१९	प्राकृत	प्रकृति
२४१	११	५४	२४
२४३	११	नींयते	नीयंते
२४४	९	महाव्र	महाव्रत
२५४	४	२०	१०
२६६	६	मनुर्यों	मनुष्यों
२७२	१	है	×
२७१	९	विंनलछन	विलछन

सिद्धयंत्र वा ॐ विनायक यंत्र।
ह्रीँ
अ
सि
आ
उ
सा
ॐ
केवलिपण्णत्तो
धम्मो मंगलं
अरहंत
लोगुत्तमा
सिद्धलोगुत्तमा
साहूलोगुत्तमा
केवलिपण्णत्तो
धम्मोलोगुत्तमा
अरहंतसरणं
पवज्जामि
सिद्धसरणं
पवज्जामि
यह यंत्र तांबेका बना बनाया सेठ गंभीरमलजी जुहारमलजी पोल
जयपूर (राजपूताना) के ठिकानेसे पत्र भेजनेपर व्ही.पी.द्वारा
मिल सकता है। मूल्य अनुमान १॥) रू० के होगा।
प्रकाशक

नमः वीतरागाय ।

गृहस्थधर्म ।

अध्याय पहला ।

पुरुषार्थ ।

संसारमें इस अमूल्य मनुष्य-जन्मको पाकर जीवोंको अपने आप अपने ही पुरुषार्थके द्वारा अपनी उन्नति करनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न और अपने पुरुषार्थके उपयोगके बलसे ही यह जीव अनादि कालसे अपने साथ चला आया जो मिथ्यात नामा वैरी उसका चूर २ कर सक्ता है और सम्यक्त-रत्न पाकर उसके द्वारा स्वस्वरूपमें आचरण करता हुआ और आत्माकी शुद्धि करता हुआ एक दिन कर्म मैलसे मुक्त हो सक्ता है। परन्तु यह उसी वक्त सम्भव है जब आत्मा प्रयत्नशील हो और पुरुषार्थको अपना इष्ट समझता हो।

वास्तवमें विचारकर देखिये तो उद्यम सब ही हर समय किया करते हैं, परन्तु कोई चढती और कोई गिरती अवस्थाकी तरफ। विद्वानोंका कथन है कि अगर तुम उन्नति न करोगे तो अवनति करोगे; एकसी समान अवस्थामें नहीं रह सक्ते। पदार्थोंमें नवजीर्णपना हरएक समयमें होता है। जो व्यक्ति अपने बलको वाह्य निमित्तोंके साथ संयोगमें लाकर उन्नतिके लिये

साहस और उत्साहसे पुरुषार्थ करता है वह उन्नति, और जो आलसी रहता है वह अपनी वर्तमान अवस्थासे भी अवनति कर बैठता है। यदि हम दश हजार रुपये रखते हुए भी खर्चें तो बराबर, क्योंकि खर्च बिना जीवन नहीं रह सक्ता; परन्तु पैदा करके उसमें कुछ भी हानिकी पूर्ति व उसकी वृद्धि न करें तो धीरे २ दश हजारके धनीसे एक हजारके धनी रहकर एक दिन सब खोकर कंगाल हो जावेंगे। इसी प्रकार यदि हम प्राचीन कालमें बांधे हुए शुभ कर्मोका फल तो भुगतते चले जावें, परन्तु नवीन शुभ कर्मोको पैदा न करें तो एक दिन हमारे पुण्यका अंत आकर हम पुण्यके दरिद्री हो जावेंगे। खाली दरिद्री ही नहीं, बल्कि पापकी गठरीको सिरपर लादकर, भारी भरकम होकर अधोगतिके पात्र हो जावेंगे। पुरुषार्थ विना मनुष्यका मनुष्यत्व ही प्रगट नहीं हो सक्ता। जो २ शक्तियां मनुष्यके भीतर हैं वे सब राखके नीचे दबी हुई अग्निकी तरह छिपी ही रह जाती हैं, यदि उनको काममें न लाया जावे।

पुरुषार्थ ऐसी वस्तु है कि जिसके बलसे हम अशुभ कर्मोकी प्रकृतिको शुभ कर्मरूप कर सक्ते हैं, उनका तीव्र बल घटाकर मंद कर सक्ते हैं, उनकी स्थिति जो बहुत कालकी हो उसको थोड़ी कर सक्ते हैं अर्थात् पापका फल भुगतनेके पहले पापको पुण्यमें पलटा सक्ते हैं।

साधारण बात है कि यदि ईंट, चूना, मिट्टी सब तयार हो और घर बनानेवाला शिल्पी भी हो, परन्तु जबतक शिल्पी हाथ पैर हिलाकर उन ईंट, चूने, मिट्टीको न जोड़े तबतक मकान नहीं

बन सक्ता और न शिल्पपना ही प्रगट हो सक्ता है। उसी तरह हम संसारी जीवोंको अपना साधारण ज्ञान दर्शन ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्मके क्षयोपशमसे, अपने चित्तका बिलकुल पागलपन न होना मोहनी कर्मके मंद उदयसे, अपनेमें साधारण शक्ति होना अंतरायके क्षयोपशमसे, शरीर और उसके अंग हाथ पैर आदि बनना नामकर्मके उदयसे, ऊंच व नीच कुलमें जन्म पाना गोत्रकर्मके उदयसे, अच्छे व बुरे देश तथा कुटुम्बियोंके मध्यमें पैदा होना वेदनीकर्मके उदयसे, एक गतिमें कुछ दिनोंतक कायम रहना आयुकर्मके उदयसे—ऐसा सब सामान प्राप्त हुआ है। इन सर्व सामग्रियोंको पाकर जबतक हम इनसे तरह तरहका काम लेनेका उद्यम न करें तब तक कदापि संभव नहीं है कि हम दुनियांका कोई काम कर सकें। यहांतक कि यदि हम अपने मुंहमें ग्रास न रखें तो अपना पेट कदापि नहीं भर सक्ते हैं और न हम पुरुष कहलाकर अपना पुरुषपना प्रगट कर सक्ते हैं। जैसे उद्यमके बिना शिल्पी और उसका सब सामान बेकाम होता है वैसे ही यह पुरुष और उसके मुंहके आगे रक्खी हुई सर्व सामग्री यदि वह उनसे काम न ले तो बेकाम होंगी।

उद्यम करना मनुष्यका कर्तव्य है। इसी बातको ध्यानमें रखकर प्राचीन आचार्योंने चार तरहके पुरुषार्थ नियत किये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हमारा मुख्य प्रयोजन धर्मरूप पुरुषार्थसे है, जो कि सर्व अन्य पुरुषार्थोंका बीज है। उसी प्रथम पुरुषार्थमें लीन होना हमारे परम कल्याणका कारण है।

अध्याय दूसरा।

सम्यक्चारित्रकी आवश्यक्ता।

जिस मनुष्यने सात तत्त्वोंका स्वरूप भली भांति समझकर निश्चय कर लिया है उसको अपने उस निश्चय किये हुए मन्तव्यके अनुसार आचरण करना बड़ा भारी फर्ज हो जाता है। हमारा तो यह विश्वास है कि उस सम्यग्दृष्टी पुरुषसे आचरणके मैदानमें चले बिना रहा ही नहीं जायगा वह अपनी शक्ति अनुसार चलेगा; चाहे धीरे धीरे चले चाहे जल्दी। वह जितनी शक्ति अपने पैरोंमें चलनेकी ज्यादा पायगा उतनी जल्दी जरूर चलेगा। क्योंकि सम्यग्दृष्टीको यह निश्चय होता है कि अपने आत्माको सच्चे व अनुपम सुखका पूर्ण लाभ विना मोक्ष-महलमें पहुंचे कदापि संभव नहीं है। संसारमें इस सुखका अनन्त कालके लिये पाना अत्यंत दुर्लभ है। यदि संसारमें यह सुख मिल भी जाय तो बहुत समयतक स्थिर नहीं रहता है। पस उस सुखमें आशक्त चित्त सम्यग्दृष्टी क्यों न मोक्ष-महलमें जल्दी पहुँचनेकी कोशिश करेगा और अपनेमें शक्ति रखता हुआ क्यों न चलेगा? अवश्य चलेगा।

सिर्फ जान लेने और विश्वास कर लेनेसे हम किसी भी कार्यका फल नहीं निकाल सक्के, जबतक कि हम उस कार्यके साधनोंका व्यवहार न करें। जो किसीकी ऐसी सम्मति पाई जाय कि श्रद्धा मात्रसे ही अथवा ज्ञान मात्रसे ही अथवा चारित्र मात्रसे ही भव-सागर पार हो जायगे सो कदापि संभव नहीं है।

जो सिर्फ इतनी ही श्रद्धा मात्र रखता हो कि व्यापार करनेसे लाभ होगा वह कभी भी द्रव्य प्राप्त नहीं कर सक्ता; न उसको द्रव्यका लाभ हो सक्ता है जो केवल व्यापार करनेके योग्य उपायोंका ही ज्ञान मात्र रखता हो और न उस पुरुषको धनका आगम होगा जो विना श्रद्धा और ज्ञानके योग्य उपायों और साधनोंसे व्यापार करने लग जायगा। द्रव्यका लाभ तो वही कर सक्ता है जो ठीक २ श्रद्धा और ज्ञानके साथ उपाय करे।

श्रीसमन्तभद्राचार्य्य अपने रत्नकरंडश्रावकाचारमें कहते हैं:-

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः॥४७॥

अर्थात् साधु पुरुष मोहांधकारके दूर होनेसे सम्यग्दर्शनको पाकर सम्यग्ज्ञानी होता हुआ राग और द्वेषको नाश करनेके लिये आचरणकी तरफ झुकता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य्य अपने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथमें इस तरह लिखते हैं:-

विगलितदर्शनमोहैः समंजसज्ञानविदिततत्त्वार्थैः।
नित्यमपि निःप्रकम्पैः सम्यक्चारित्रमालम्ब्यम्॥३७
न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानपूर्वकं लभते।
ज्ञानानन्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात्॥ ३८॥

अर्थात् जिनका दर्शनमोहनामा कर्म गल गया है, जो यथार्थ ज्ञानसे तत्त्वोंके अर्थको जानते हैं और सदा ही निर्भय हैं उनको सम्यग्चारित्रका आश्रय लेना चाहिये। अज्ञान सहित

आचरणको ठीक आचरण नहीं कह सक्के, इसीलिये चारित्रका सेवन ज्ञानके पीछे कहा गया है।

श्रीगुणभद्राचार्यजी अपने आत्मानुशासनमें चारित्रके लिये इस भांति प्रेरणा करते हैं:—

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात्।
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥ २११ ॥

अर्थात् अत्यंत अगाध और निर्मल हृदयरूपी तलावके होते हुए भी जब तक उसमें कषायरूपी मगरमच्छ चारों ओर वस रहे हैं उस वक्त तक गुणोंके समूह उसमें रह नहीं सक्के। इस लिये सबसे पहिले शंका त्याग उन कषायोंको जीतनेके लिये सम, दम, यम आदिकसे यत्न करना योग्य है।

सम्यग्चारित्रका पालना वहुत ही जरूरी समझकर, जिनको निराकुल सुख पानेकी कामना है उनको यह नर भव सफल करना चाहिये। पाठकगण! यह बात अच्छी तरह जानते होंगे कि यह सम्यग्चारित्र देव—गति और नरक—गतिमें तो किसी जीवको प्राप्त ही नहीं होता। पशुगतिमें अन्धेके हाथ बटेरके समान कभी किसी मनसहित पंचेन्द्री पशुको किसी महात्माकी संगतिसे प्राप्त हो जाय तो हो सक्ता है। परन्तु साधारण रूपसे कह सकते हैं कि पशुगतिमें भी सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि है तो यह एक मनुष्य—जन्म ही है कि जिसमें जीव सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंको यह शक्ति है कि यदि वे

उद्यम करें तो नीचीसे नीची दशासे ऊंचीसे ऊंची दशा तक प्राप्त कर सक्ते हैं। जिन मनुष्योंने जन्मका बहुतसा समय कुआचरणमें गमाया, वे ही जब सम्यग्दृष्टी हुए तब सम्यक्चारित्रपर चलकर ऐसे महात्मा मुनि हो गये कि जिनके चरणोंको राजा महाराजा देवादि तक नमस्कार करने लगे। विद्युत चोर उत्तम कुली होनेपर भी चोरी आदि व्यसनोंमें पूर्ण रूपसे रत था, परन्तु श्रीजम्बू-स्वामी महाराजकी संगति पा मुनि हो गया। उसने अत्यन्त कठिन चारित्र पाला तथा मथुराके वनमें उपसर्ग सहकर धर्मध्या-नके बलसे परम पुण्यको बांध सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिन्द्र होता भया।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित जो आचरण होता है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं।

पाठकोंको विदित है कि जैनधर्ममें निश्चय और व्यवहार दो नय बतलाई गई हैं। निश्चयनय किसी चीजकी असली हाल-तको बतलाती है और व्यवहारनय उस चीजमें दूसरी चीजोंके मिलने व छूटनेसे जो २ हालतें होती हैं उनको बतलाती है तथा निश्चयनयकी हालतको पानेका रास्ता बताती है। निश्चयनयकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शनसे अपने आत्म-स्वरूपकी दृढ़ श्रद्धारूप रुचि होनेका, सम्यग्ज्ञानसे आत्माके गुणोंको अच्छी तरह जाननेका और सम्यग्चारित्रसे अपने आत्मस्वरूपमें लीन होनेका मतलब है। अर्थात् जिस वक्त यह आत्मा श्रद्धा और ज्ञानसहित वीत-रागी हो अपने आत्मस्वरूपमें तन्मय होकर एकमेक हो जाता है, तब तीनोंकी एकता होनेसे निश्चय मोक्षमार्ग होता है और

यही ध्यान कहलाता है। इसी सीधे रास्तेपर चलनेसे अर्थात् अपने आत्म स्वरूपमें अपने मनको निश्चल रखनेसे कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है और इस आत्मानुभवरूप आचरणको हमेशा बारबार जारी रखनेसे किसी न किसी वक्त सर्व आत्माको घात करनेवाले कर्म झड़ जाते हैं और यह आत्मा अपने निज आनन्दमय स्वरूपमें ऐसा मगन याने लवलीन हो जाता है कि उस रसका स्वाद लेते हुए कभी दूसरी तरफ नहीं झुकता और उसी वक्त निराकुल सुखको पाकर मुक्तजीव कहलाता है, इस निश्चय सम्यग्चारित्रको स्वरूपाचरण कहते हैं जैसा कि पंडित दौलतरामजी अपने मनोहर छन्दोंमें कहते हैं:-

जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी डार अंतर भेदिया
वरणादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया॥
निज मांहि निजके हेत निज कर आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझार कुछ भेद न रह्यो॥
जहं ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेशकर्त्ता चेतना किरिया तहां॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोगकी निश्चल छटा।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीन धा एकै लशा॥
परमाण नयनिक्षेपको न उद्योत अनुभवमें दिखै।
दृगज्ञान सुख बल मय सदा नाहिं आन भाव जो मो विखै
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अर तसु फलनितैं।
चित पिंड चंड अखंड सुगुण करंड च्युत पुनि कलनितैं॥

यों चिन्त्य निजमें थिर भए तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नागनरेन्द्र वा अहमिन्द्रकै नाहीं कह्यो ॥

असलमें सम्यग्चारित्र अपने आत्माको परमात्मा अनुभवकर उसमें एकाग्रचित्त होनेका ही नाम है और यही रास्ता हर तरहसे पकड़नेके लायक है। परन्तु संसारी लोग संसारकी वासनाओंमें अनादि कालसे पड़े हुए हैं और अपने मनमें आत्मस्वरूपसे सर्वथा जुदी ऐसी चीजोंको वारम्वार विठा चुके हैं और अब भी विठाए हुए हैं। क्या ऐसे लोगोंके लिये यह बात सम्भव है कि वे एकदमसे अपना मन सबसे हटाके आत्माकी तरफ ले जा सकें और उसमें उसे बराबर स्थिर रख सकें ? कदापि नहीं। इसी लिये श्री तीर्थंकर भगवानने व्यवहार-मोक्षमार्गको बतलाया है कि जिसके सहारेसे ये संसाराशक्त आत्माएं अपना राग, द्वेष व क्रोधादि कषायोंको धीरे २ कम करते हुए किसी समय पूर्ण वीतरागी हो जावें और अपने ज्ञानानंदस्वरूपका लाभ करें।

व्यवहार सम्यग्दर्शनमें जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे ७ तत्त्वोंकी श्रद्धा करनी होती है, जिसका वर्णन दूसरा भाग अर्थात् तत्त्वमालामें किया जा चुका है। इन सात तत्त्वोंके ज्ञान और श्रद्धानसे ही यह संभव है कि संसारी जीवको अपने आत्मस्वरूपका निश्चय प्राप्त हो जावे।

व्यवहार सम्यग्ज्ञानमें सात तत्त्वोंका विशेष ज्ञान तथा आत्मा और कर्मोंका पूर्ण वर्णन जाननेके लिये जैन शास्त्रोंका खूब

अभ्यास करना योग्य है। प्रथमानुयोग जिसमें महान् पुरुषोंके जीवनचरित्र हैं; करणानुयोग जिसमें तीन लोक व गणित ज्योतिषादि विद्याका वर्णन है; चरणानुयोग जिसमें मुनि और श्रावकोंके आचरण विस्तारसे दिखाए हैं; द्रव्यानुयोग जिसमें जीवादि षट् द्रव्यका कथन पूर्णरूपसे कथित है, ऐसे चारों अनुयोगोंके शास्त्र जैसे महापुराण, हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार, गोम्मटसार, मूलाचार, श्रावकाचार, वृहद्द्रव्यसंग्रह, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार आदि शास्त्रोंको भले प्रकार समझना चाहिये। ज्यों २ अधिक शास्त्रज्ञान होगा त्यों त्यों अधिक आत्मस्वरूपके पहचाननेकी योग्यता प्राप्त होगी।

व्यवहार सम्यग्चारित्रके दो मार्ग हैं—एक मुनि, दूसरा श्रावक। मुनिमार्ग निरन्तर स्वरूपाचरणकी ओर ले जानेवाला है और इसीलिये उत्तम और श्रेय है। श्रावक-मार्ग गृहस्थियोंका है। जो मुनि मार्ग पर चलनेमें अशक्त हैं और घरमें ही रहकर कभी २ ध्यानका तथा राग और द्वेष छुड़ानेका अभ्यास कर सकते हैं। यह श्रावकका मार्ग मुनिमार्गके ग्रहण करानेमें सहायक है। जिसने श्रावक-अवस्थामें श्रावकमार्गका अभ्यास किया है वह मुनि होने पर सहजमें ही उस मार्ग पर चल सक्ता है। श्रावककी ग्यारह श्रेणियां हैं एक दूसरेसे अधिक २ व्यवहारचारित्र पलवाती हैं और इस तरह श्रावकको अधिक अवसर आत्मानुभवके लिये प्रदान करती हैं। इन श्रेणियोंका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय तीसरा ।

श्रावककी पात्रता ।

श्रावकधर्मके पालनेके अधिकारी दो तरहसे होते हैं। एक तो जब बालक श्राविकाके गर्भमें आवे तब हीसे उसपर श्रावकधर्म पालनेका असर पड़ता चला जावे। दूसरे जो अजैन हैं वे श्रावकधर्मका श्रद्धान कर श्रावकके आचरणको करें। इन दो रीतियोंके द्वारा श्रावकधर्म पालनेकी पात्रता होती है। प्रथम हम उसी पात्रताका वर्णन करेंगे जो मनुष्य अवतारके धारण करनेके अवसरमें आ सक्ती है।

जब बालक माताके गर्भमें आता है तब उसकी शक्तियोंको मजबूती और कमजोरीका पहुंचाना माताके ऊपर है। माता उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको कुण्ठित रखने व तेज करनेके लिये एक अद्भुत बलको धारनेवाली है। माताके मन, वचन, कायकी क्रियाका असर बालकके ऊपर पड़ता है। इसलिये माताको ! सच्ची श्राविका होना जरूरी है। यदि माता विवेकवती, सुशीला, धर्मात्मा और विदुषी होगी तो उसके मन, वचन, कायोंकी योग्य क्रिया बालककी शक्तियोंपर अपनी वैसी ही छाप बैठानेके लिये निमित्त कारण हो जायगी। यदि माता अज्ञान, कुशीला, अधर्मी और मूर्खा होगी तो उसकी क्रियाओंका बहुत बुरा असर बालकके ऊपर पड़ेगा। यद्यपि मनुष्यके पूर्वोपार्जित कर्म भी मनुष्यकी शक्तियोंके खिलानेमें निमित्त कारण हैं तथापि बाह्य निमित्त भी सहायक होते हैं। इसलिये हमको अपने उद्यमकी अपेक्षा बाह्य निमित्तोंकी पूर्ति अवश्य करनी चाहिये।

इसलिये गर्भस्थित बालकोंकी शिक्षाके लिये भी माता धर्मात्मा और विदुषी होनी चाहिये। यदि सच्चे श्रावक उत्पन्न करना है तो जैनसमाजको चाहिये कि, योग्य माताओंको तयार करे। अपनी कन्याओंको धर्म, नीति, गृह प्रबंध, कारीगरी आदिकी ऐसी शिक्षा देवे जिससे वे योग्य माता हो सकें। माता जो आहारपान करती है उसीका अंश गर्भस्थित बालकको प्राप्त होता है। यदि माता शुद्ध आहारपान करेगी तो बालकका शरीर भी उसीसे पोषित होगा, जिससे उसके शरीरमें निरोगता रहेगी और रुधिर शुद्ध होगा। माताके मनमें यदि अच्छे विचार होंगे तो उनके संसर्गसे बालकोंकी भी मानसिक वृत्तिपर अच्छा असर होगा। अक्सर देखा जाता है कि यदि कोई महान् तेजस्वी पुण्यात्मा जीव माताके गर्भमें आता है तो उसके ज्ञान और धर्मबलके निमित्तसे माताके मनके विचारमें भी फर्क आ जाता है; इसी प्रकारके नाना प्रकारके दोहले उत्पन्न होते हैं। यदि तेजस्वी पुत्र हो तो माता दर्पणमें मुंह देखती है। यदि अत्यन्त धर्मात्मा पुत्र हो तो माताके मनमें तीर्थयात्रा करनेके भाव होते हैं। यदि दरिद्री पुत्र हो तो माता चने अथवा मिट्टीके टुकड़े खाना चाहती है। ऐसे ही माताके सुविचारोंका असर भी बालकपर पड़ता है। द्रव्यपर भावका और भावपर द्रव्यका असर पड़ता है। इसलिये माता जैसी योग्य होगी वैसा ही बालकके विचारोंमें भी उसका असर अवश्य पड़ेगा। अतएव कन्याओंको योग्य, धर्मात्मा, सुशील और सुआचरणी बनाना मनुष्य समाजके सुधारके लिये अत्यन्त जरूरी है।

जैसे गर्भमें रहते हुए बालकोंके मन, वचन, कायपर माताके मन, वचन और कायका असर पड़ता है वैसे ही जबतक शिशु माताकी गोदमें रहता है और दूध पीता है उस समय भी माताद्वारा बालकोंके मन, वचन, कायोंपर असर पड़ता है। माता बालकोंकी बुरी और भली आदतोंकी जिम्मेदार है। माता बालकोंके बुरे व भले वचनोंकी जिम्मेदार है। माता ही बालकोंके बुरे व भले भावोंकी जिम्मेदार है, क्योंकि बच्चोंकी सर्व क्रियाएँ, सर्व रहनसहन माताओंके द्वारा होता है, इसलिये माताओंको खास तौरसे बच्चोंके बिगाड़ और सुधारका जिम्मेदार कहना पड़ता है।

बच्चोंके योग्य होनेके वास्ते जैसे योग्य माताओंकी आवश्यकता है वैसे ही शास्त्रमें कहे हुए कुछ अन्य संस्कारोंके किये जानेकी भी जरूरत है। इन संस्कारोंका वर्णन श्री जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराणजी अध्याय ३८, ३९ और ४० में दिया हुआ है। ये गर्भाधानादि संस्कार कहलाते हैं। हरएक गृहस्थी श्रावकको अपने बालकोंके कल्याणके लिये इन संस्कारोंका किया जाना आवश्यक है। ये संस्कार भी द्रव्य परमाणुओंकी शक्तिकी अपेक्षासे बालकोंके मन, वचन और तनके अन्दर अपने असरको पैदा करते हैं। आजकल जैन समाजमें इन गर्भाधानादि संस्कारोंका अभाव होगया है-कोई जैनी भाई इनकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। प्राचीन कालमें इनका यथार्थ व्यवहार होता था। आगे हम संक्षेपसे इनकी विधि और मंत्र इस रीतिसे बयान करेंगे जिससे एक मामूली गृहस्थ भी विना किसी विशेष खर्च और दिक्कतके

इन संस्कारोंको कर सके। जिनको बड़ी विधिसे करना हो वे अन्य ग्रन्थोंसे जानकर इनको प्रचारमें लावें। इनका वर्णन त्रिवर्णाचारोंमें भी है।

—(०)—
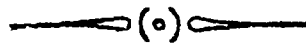
अध्याय चौथा।

गर्भाधानादि संस्कार।

गर्भाधान-पहला संस्कार।

पुरुषको स्त्रीका संभोग विषयोंकी इच्छासे नहीं करना चाहिये, किंतु सिर्फ पुत्रकी उत्पत्तिकी इच्छासे ही करना योग्य है। स्त्री मासके अंतमें जब ऋतुवंती हो, तब वह ४ दिन तक एकान्त स्थानमें बैठे, शृंगार न करे, नियमसे जो सादा भोजन मिले उसे करे, बारह भावनाका विचार करे तथा न घरका कोई काम करे, न किसी पुरुषको देखे। ऐसी स्त्री पांचवें दिन अथवा किसी २ की सम्मतिसे छठे दिन स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पतिके साथ श्री मंदिरजीमें जाकर श्री अरहंतकी पूजा करे। फिर वह घरमें आकर श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमा जो सिंहासनपर तीन छत्रसहित विराजमान हो उसके दाहिने बाएं २ चक्र स्थापे, तथा वेदीके आगे अग्निके तीन कुंड बनावे। बहुधा गृहस्थियोंके यहां चैत्यालय होते हैं। यदि प्रतिमाका संबन्ध न हो सके तो सिद्ध यंत्रको विराजमान करे। यदि उसका भी संबंध न हो सके तो श्री जिनशास्त्रको विराजमान करके उसके आगे ३ कुंड बनावे। एक कुंडका नाम गार्हपत्य, इसको चौखूंटा □ बनावे।

दूसरे कुंडका नाम आह्वनीय इसको त्रिखूंटा △ बनावे। तीसरे कुंडका नाम दक्षिणावर्त्त, (◡) अर्द्ध चंद्रके आकार बनावे। इन तीनोंमें अग्नि जलावे। पहले कुंडकी अग्निको तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्नि, दूसरे कुंडकी अग्निको गणधरके निर्वाणकी अग्नि तथा तीसरे कुंडकी अग्नि सामान्य केवलीके निर्वाणकी अग्नि, कहते हैं। इन तीनोंकी प्रणीताग्नि संज्ञा है। यदि तीन कुंड बनानेका आरम्भ न कर सके तो १ चौखूंटा कुंड तो अवश्य बनावे।

प्रतिमा या यंत्र या शास्त्रको सिंहासन वा ऊंचे आसनपर विराजमान करनेके पहिले जो क्रिया करनी चाहिये वह इस भांति है:—

शुद्ध प्राशुक जल लेकर **'नीरजसे नमः'** यह मंत्र पढ़कर जहां पूजा करनी है उस भूमिको छींटा दे शुद्ध करे। फिर **'दर्पमथनाय नमः'** यह मंत्र पढ़कर डाभका आसन ठीक मौकेपर अपने बैठनेको बिछावे। फिर आसनपर बैठकर आगेकी जमीनको **'शीलगंधाय नमः'** यह मत्र पढ़कर प्राशुक जलसे छींटे। फिर **'विमलाय नमः'** यह मंत्र पढकर उस भूमिमें पुष्प चढ़ावे। फिर **'अक्षताय नमः'** यह मंत्र पढ़कर अक्षत चढ़ावे। फिर **'श्रुतधूपाय नमः'** यह मंत्र पढकर धूप देवे। फिर **'ज्ञानोद्योताय नमः'** यह मत्र पढ़कर दीप चढ़ावे। फिर **'परमसिद्धाय नमः'** यह मत्र पढकर नैवेद्य चढावे। इस प्रकार जमीनको शुद्ध करके फिर सिंहासन या ऊंचे आसनपर प्रतिमा व यंत्र व शास्त्र विराजमान करे।

फिर आगे चौकीपर सामग्री रख थालमें देव, गुरु, शास्त्रकी नित्यपूजा स्थापनापूर्वक करे। पूजा संस्कृत हो चाहे भाषा। नित्यनियमपूजा बहुधा सर्वको कंठ आती है नहीं तो उसको बतलाने वाली पुस्तकें हर स्थानमें मिलती हैं। इसलिये वह यहां नहीं लिखी जाती है। तथापि पुस्तकके अंतमें नित्यनियमपूजा भाषा दी गई है। सो यदि और पुस्तक न हो तो उसीको सूचीपत्र परसे निकाल कर पूजन करें। यदि समयकी आकुलता न हो तो सिद्धपूजा भी की जाय। इस प्रकार नित्यनियमपूजा हो चुकनेके पश्चात् अग्निके उन कुंडोंमें व १ कुंडमें होम करे।

होमकी विधि।

कुंडमें ॐ वा सांथिया 卐 बनावे। तथा लाल चंदन, कपूर, सफेद चंदन, पीपलकी लकड़ी, अगुरु (अगर) और छिली हुई आककी लकड़ी शुद्ध प्रासुक होम करने योग्य कुंडमें रक्खे और अग्नि जलावे। फिर नीचे लिखा श्लोक पढ़कर अर्घ चढावे।

श्री तीर्थनाथपरिनिर्वृतिपूज्यकाले
आगत्य वह्निसुरपा मुकुटोल्लसद्भिः ॥
वह्निव्रजैर्जिनपदेहमुदारभक्त्या
देहुस्तदग्निमहमर्चयितुं दधामि ॥

ॐ ह्रीं प्रणीताग्नये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा बोलकर अर्घ चढ़ावे। यदि कुंड तीन हों तो तीन दफे ॐ ह्रीं आदि बोलकर तीन अर्घ चढ़ावे। फिर होमकी सामग्री लेकर नीचे प्रमाणे होम करे—

होमकी सामग्री ।

चंदन, अगुरु, बदामकी गिरी, पिस्ताकी गिरी, छुहारा तोड़ा हुआ, खोपारा, किसमिस, शक्कर, लवंग, कर्पूर, छोटी इलायचीके दाने आदि सुगन्धित द्रव्य लेवे । इन सबके बराबर घी लेवे और नीचे लिखे एक २ मंत्रपर घी और सुगन्धित द्रव्य अग्निकुंडमें होमे ।

पीठिकाके मन्त्र ।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥२॥
ॐ परमजाताय नमः ॥३॥ ॐ अनुपमजाताय नमः॥४॥
ॐ स्वप्रधानाय नमः ॥ ५ ॥ ॐ अचलाय नमः ॥ ६ ॥
ॐ अक्षताय नमः ॥ ७ ॥ ॐ अव्याबाधाय नमः ॥८॥
ॐ अनंतज्ञानाय नमः ॥९॥ ॐ अनंतदर्शनाय नमः॥१०।
ॐ अनंतवीर्याय नमः ।११। ॐ अनंतसुखाय नमः ।१२।
ॐ नीरजसे नमः ॥१३॥ ॐ निर्मलाय नमः ॥ १४ ॥
ॐ अच्छेद्याय नमः ॥१५॥ ॐ अभेद्याय नमः ॥ १६ ॥
ॐ अजराय नमः ॥ १७ ॥ ॐ अमराय नमः ॥ १८ ॥
ॐ अप्रमेयाय नमः ॥१९॥ ॐ अगर्भवासाय नमः।२०।
ॐ अक्षोभाय नमः ॥२१॥ ॐ अविलीनाय नम ।२२।
ॐ परमघनाय नमः।२३। ॐ परमकाष्ठायोगरूपाय नमः ॥२४॥ ॐ लोकाग्रवासिनेनमोनमः ॥२५॥ ॐ परमसिद्धेभ्योनमोनमः ॥२६॥ ॐ अर्हत्सिद्धेभ्योनमो नमः।२७। ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥२८॥ ॐ अंतःकृत्सि-

द्धेभ्यो नमो नमः ॥२९॥ ॐ परंपरासिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३०॥ ॐ अनादिपरंपरा सिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३१॥ ॐ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३२॥ ॐ सम्यग्दृष्टयासन्नभव्यनिर्वाणपूजार्हाग्नीन्द्राय स्वाहा ॥३३॥

इस तरहँ ३३ मंत्र पढ़ आहूति देकर फिर नीचे लिखा आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति देवे और पुष्प ले अपने व सर्व पास बैठनेवालोंके ऊपर डाले।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु॥

अथ जातिमंत्र।

ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये ॥३॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥ ॐ अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति-सरस्वति स्वाहा ॥ ८ ॥

इस तरहँ जातिमंत्र पढ़ आठ आहूति देकर आशीर्वादसूचक नीचे लिखा मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु।

अथ निस्तारक मंत्र ।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥२॥ ॐ षट्कर्मणे स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ग्रामपतये स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥५॥ ॐ स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ॐ श्रावकाय स्वाहा ॥७॥ ॐ देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥८॥ ॐ सुब्राह्मणाय स्वाहा ॥९॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥१०॥ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा ॥११॥

इस तरह ११ आहूति दे फिर वही " सेवाफलं षट्परम स्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु ।" मंत्र पढ़कर आहूति दे पुष्प क्षेपे ।

अथ ऋषिमंत्र ।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ॐ निर्ग्रन्थाय नमः ॥३॥ ॐ वीतरागाय नमः ॥ ४ ॥ ॐ महाव्रताय नमः ॥ ५ ॥ ॐ त्रिगुप्ताय नमः ॥ ६ ॥ ॐ महायोगाय नमः ॥७॥ ॐ विविधयोगाय नमः ॥८॥ ॐ विविधर्द्धये नमः ॥९॥ ॐ अंगधराय नमः ॥१०॥ ॐ पूर्वधराय नमः ॥११॥ ॐ गणधराय नमः ॥१२॥ ॐ परमर्षिभ्यो नमो नमः ॥१३। ॐ अनुपम-जाताय नमो नमः ॥ १४ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा ॥ १५ ॥

ऐसी १५ आहुति देकर वही निम्नलिखित आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहुति दे पुष्पक्षेपे।

"सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु॥"

अथ सुरेन्द्रमंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥२॥ ॐ दिव्यजाताय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ दिव्यार्चिजाताय स्वाहा ॥४॥ ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ॐ सौधर्माय स्वाहा ॥६॥ ॐ कल्पाधिपतये स्वाहा ॥७॥ ॐ अनुचराय स्वाहा ॥८॥ ॐ परंपरेन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अहमिन्द्राय स्वाहा ॥ १० ॥ ॐ परमार्हताय स्वाहा ॥ ११ ॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥१२॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे-कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा ॥१३॥

इस तरह १३ आहूति दे वही पहिले लिखित आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

अथ परमराजादिमंत्र।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ विजयार्च्यजाताय स्वाहा ॥४॥ ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ।५। ॐ परमजाताय स्वाहा ॥६॥ ॐ परमार्हताय स्वाहा ॥७॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥८॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे

उग्रतेजः उग्रतेजः दिशांजन दिशांजन नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा ॥९॥

इस तरह ९ आहूति दे वही आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

अथ परमेष्ठिमंत्र।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ॐ परमजाताय नमः ॥३॥ ॐ परमार्हताय नमः ॥४॥ ॐ परमरूपाय नमः ॥ ५ ॥ ॐ परमतेजसे नमः ॥ ६ ॥ ॐ परमगुणाय नमः ॥७॥ ॐ परमस्थानाय नमः ॥८॥ ॐ परमयोगिने नमः ॥९॥ ॐ परमभाग्याय नमः॥१०। ॐ परमर्द्धये नमः ॥११॥ ॐ परमप्रसादाय नमः ॥१२॥ ॐ परमकांक्षिताय नमः॥१३॥ ॐ परमविजयाय नमः ॥१४॥ ॐ परमविज्ञानाय नमः ॥१५॥ ॐ परमदर्शनाय नमः ॥ १६ ॥ ॐ परमवीर्याय नमः ॥ १७ ॥ ॐ परमसुखाय नमः ॥१८॥ ॐ परमसर्वज्ञाय नमः ॥१९॥ ॐ अर्हते नमः ॥ २० ॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥ २१ ॥ ॐ परमनेत्रे नमो नमः ॥ २२ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजय त्रैलोक्यविजय धर्ममूर्ते धर्ममूर्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा ॥ २३ ॥

इस प्रकार २३ आहूति देकर वही आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

इस तरह (३३+८+११+१५+१३+९+२३) ११२

आहूति और ७ आहूति आशीर्वादकी ऐसी १२० आहूति दे होम पूर्ण करे।

ये सात प्रकार पीठिकाके मंत्र हैं।

फिर गर्भाधान क्रियाके खास मंत्रोंको पढ़ आहूति देवे और एक १ आहूतिके साथ पति पत्नीपर पुष्प क्षेपे; स्वयं डाले व पूजा करनेवाला डाले।

गर्भाधान क्रियाके खास मंत्र।

सज्जातिभागी भव ॥ १ ॥ सद्गृहभागी भव ॥२॥ मुनीन्द्रभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रभागी भव ॥४॥ परमराज्यभागी भव ॥५॥ आर्हन्त्यभागी भव ॥६॥ परमनिर्वाणभागी भव ॥ ७ ॥

इस प्रकार होम करके शांतिपाठ, विसर्जन जैसा मंदिरोंमें करते हैं करें। बाद सर्व घरके पाहुनोंका यथायोग्य सत्कार कर व यथायोग्य दान देय आप पति पत्नी परम प्रीति सहित अपने२ पात्रमें भोजन करें। फिर दिनभर आनन्दमें बितावें, किसीसे कलह लड़ाई झगड़ा व शोक विषाद न करें और न पापोंके चिंतवनमें समय बितावें। रात्रिको पत्नी सर्व शृंगार किये हुए पतिसे प्रेम प्रगट करे। विषयानुराग विना सच्चे प्रेमके साथ पुत्रोत्पत्तिकी कांक्षासे पति पत्नी संभोग करें।

यह गर्भाधान क्रियाकी रीति है। इस संस्कार द्वारा जो गर्भ रहेगा उसी समय गर्भस्थित आत्माको पुद्गलपरमाणुओं द्वारा असर पहुंचेगा।

२. प्रीति क्रिया-दूसरा संस्कार।

गर्भके दिनसे तीसरे महीने यह दूसरी क्रिया की जाती है। इस दिन भी पहलेकी ही तरहँ दम्पति सुगंधित पदार्थोंसे स्नान कर, मंदिर जा, घर आ पूजाका विधान करें। जैसा कि गर्भाधान क्रियामें किया था वैसी ही पूजा तथा होम करे। पीठिकाके सात प्रकारके मंत्रों तक होम करे। फिर इस क्रियाके नीचे लिखे खास मंत्र पढ़ आहूति देवे और पति पत्नीपर तथा पत्नी पति पर पुष्प क्षेपे।

त्रैलोक्यनाथो भव ॥ १ ॥ त्रैकालज्ञानी भव ॥ २ ॥ त्रिरत्नस्वामी भव ॥ ३ ॥

फिर शांति विसर्जन करके दान देवे, भोजन करे, करावे।

इस क्रियासे धार्मिक प्रीति पैदा करनेका अभिप्राय है और बालकपर इसीका असर डालना है। इस दिन याने प्रीति क्रिया करनेके दिनसे मकानके द्वारपर तोरण बांधे तथा दो पूर्ण कुंभ स्थापित करे और यदि योग्यता हो तो नित्य बाजे बजवावे, उत्सव करे।

३. सुप्रीतिक्रिया-तीसरा संस्कार।

गर्भाधानसे ५ वें महीने सुप्रीति क्रिया करे। इस क्रियामें भी पहिलेकी भांति पूजापाठ होमादि करे। सात प्रकारके पीठिकाके मंत्रोंतक वही विधि है। फिर इस क्रियाके निम्नलिखित खास मंत्र पढ़ होम करे और पुष्प क्षेपे।

अवतारकल्याणभागी भव॥१॥ मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव ॥२॥ निष्क्रांतिकल्याणभागी भव

॥३॥ आर्हंत्यकल्याणभागी भव ॥४॥ परमनिर्वाण-कल्याणभागी भव ॥ ५ ॥

इस भांति पूजा करके प्रेमपूर्वक दान देय आहार करे। यह क्रिया परम प्रीति बढ़ानेवाली है।

४. धृति क्रिया–चौथा संस्कार।

यह क्रिया गर्भसे ७ वें महीने की जाती है। इसमें भी पहिलेकी तरहँ पूजापाठ होमादि करे। सात पीठिकाके मंत्रों तक वही विधि है। फिर इस क्रियाके नीचे लिखे मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

सज्जातिदातृभागी भव॥१॥ सद्गृहदातृभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रदातृभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रदातृ-भागी भव ॥ ४ ॥ परमराज्यदातृभागी भव ॥ ५ ॥ आर्हंत्यदातृभागी भव ॥ ६ ॥ परमनिर्वाणदातृभागी भव ॥ ७ ॥

फिर शांतिपाठ विसर्जन करके दान देय आहार करे, करावे। यह क्रिया धैर्य्य प्रदान करनेवाली है।

५ मोदक्रिया–पाँचवा संस्कार।

यह क्रिया गर्भके दिनसे ९ वें मास करनी होती है। इसमें भी पहिलेकी तरहँ सात पीठिकाके मंत्रोंतक होम करके फिर इस क्रियाके नीचे लिखे खास मंत्र पढ़के आहूति देवे और पुष्प क्षेपे।

सज्जातिकल्याणभागी भव ॥ १ सद्गृहकल्याण-भागी भव ॥ २ ॥ वैवाहकल्याणभागी भव ॥ ३ ॥ मुनीन्द्रकल्याणभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकल्याण-

भागी भव ॥ ५ ॥ मंदराभिषेककल्याणभागी भव ॥६॥ यौवराज्यकल्याणभागी भव ॥७॥ महाराज्य-कल्याणभागी भव ॥ ८ ॥ परमराज्यकल्याणभागी भव ॥ ९ ॥ आर्हन्त्यकल्याणभागी भव ॥ १० ॥

पश्चात् शांति विसर्जन करे। फिर गर्भिणी स्त्री अपने उदरमें गंधोदक लगावे। पति नीचे लिखा मंत्र पढ़ पत्नीके उदरको छुए और उसी मंत्रको गंधोदकसे उसके पेटपर लिखे।

ॐ कं ठं ह्रः पः असिआउसा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा।

फिर पत्नीके हाथमें णमोकार मंत्र पढ़ रक्षाका सूत्र बांधे।

इस दिन घरमें मंगलाचार करे, दान देय, आहार करे, करावे तथा गीत गावें, वादित्र बजवावें।

गर्भिणी स्त्रीके कर्तव्य।

५ वें महीनेसे गर्भिणी स्त्री बहुत ऊची जमीनपर चढ़े उतरे नहीं, नदी तरके न जावे, गाड़ीपर न बैठे, कठिन दवाई न खावे, खार पदार्थ न खावे, मैथुन सेवन न करे, बोझा न ढोवे।

पतिका कर्तव्य।

गर्भिणी स्त्रीके पतिको उचित है कि देशांतर न जावे, ऐसा किसी नए मकान आदिका काम शुरू न करे, जिससे छुट्टी न पा सके। गर्भिणीकी सदा रक्षा करनी उचित है।

६. प्रियोद्भवक्रिया–छठा संस्कार।

यह क्रिया जब बालक जन्मे तब करनी होती है इस दिन घरमें पहिलेकी तरह पूजन होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य

अथवा कोई द्विज पूजन करे। पिता व कुटुम्बीजन सामने रहें। जब सात पीठिकाके मंत्रोंतक होम हो चुके तब नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़ आहूति देवे।

दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा। परमनेमिविजयाय स्वाहा। आर्हन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा।

फिर भगवानके गंधोदकसे बालकके अंगको छींटे देवे। यदि घरमें प्रतिमाजी व यंत्र न हो तो श्री मंदिरजीसे गंधोदक मंगा लेवे। फिर पिता बालकके सिरको स्पर्श करे और आशीर्वाद देवे। अशीस देते समय पिता इस तरहं कहे:-

कुलजातिवयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयैः। भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता॥ सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेयमतस्त्वमपि पुत्रकः। सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि प्राप्य चक्राण्यनुक्रमात्॥ १११-११२॥

यदि संस्कृतमें कहते न बने तो भाषामें इस तरह कहे:—

" तेरी माता कुल शुद्धि, जाति कुल शुद्धि, वय, रूप, शील इत्यादि गुणनिकर मंडित, उत्तम संतानकी उपजावनहारी, भाग्यवती, सौभाग्यवती, विधिमार्गकी प्रवृत्ति करनहारी, महा सौम्यमूर्ति, सम्यग्दर्शनकी धारक, अणुव्रतकी पालनहारी महा योग्य। अरे! हे पुत्र तू हूं दिव्यचक्र जो इन्द्रपद अर विजयचक्र जो चक्रवर्ती पद अर परमचक्र जो तीर्थंश्वर पद इन तीन चक्रनिका अनुक्रमसे धारक हूज्यो।" पुत्रके अंगको छूकर पुत्रके रूपमें अपना साक्षात् रूप देख स्नेहधारि यह कहे:-

अङ्गादङ्गात्सम्भवासि हृदयादपि जायसे । आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम् ॥ ११४ ॥

अथवा भाषामें इस तरह कहे:-हे पुत्र ! तू मेरे अंगतें उपज्या है, हृदयथकी उपज्या है, मानूं मेरा आत्मा ही है, सो शतें वर्ष जीव ।

फिर दूध घीसे बना हुआ अमृत लेकर उससे बालककी नाभिको सींचे और नाभि-नाल काटे, उस समय यह आशीस देवे:--

" घातिजयो भव, श्रीदेव्यः ते जातक्रिया कुर्वन्तु । " इसका भावार्थ यह है कि, "घातिया कर्म जीते तथा श्रीदेवी तेरी जन्म-क्रिया करे । "

फिर बहुत यत्नके साथ बालकके शरीरमें सुगंधित चूर्ण याने उबटना लगाकर शोभित करे । फिर सुगंधित जलसे बालकको स्नान करावे उस समय यह मंत्र पढ़े " मंदिराभिषेकार्हो भव । " फिर पिता बालकके सिरपर अक्षत डाले और अशीस कहे " चिरं जीवयात् । "

फिर औषधियोंसे मिले हुए घीको बालकके मुंहमें माता तथा अन्य कुटुम्बियोंसहित पिता लगावे । उस समय यह मंत्र पढ़े " नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नं । "

फिर बालकका मुंह माताके आंचल (स्तन) में लगावे, तब यह मंत्र पढ़े " विश्वेश्वरा स्तन्य भागी भूयात् । "

इस दिन जन्मका उत्सव करे, दान देवे । बालकका जरापटल नाभि-नालिसहित ले जा कर किसी पवित्र धान्य उपजने

योग्य भूमिको खोदकर गाड़े। भूमि खोदने पहिले यह मंत्र पढे " सम्यग्दृष्टे सर्वमातृ वसुंधरे स्वाहा। " यह मंत्र पढ़कर पहिले अक्षत और जल गड्ढेमें डाले। फिर जरापटल और नाभि-नाल गाड़े। इनके रखनेके पहले पांचों रंगके रत्न नीचे रक्खे। फिर जरापटलादि रक्खे तब यह मंत्र पढ़े।

" त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयात्सुचिरजीविनः। "

फिर क्षीरवृक्ष बड़ पीपल आदिकी शाखा उसी जमीनमें रक्खे, गड्ढा बन्द करे।

इधर माताको उष्ण याने गर्म जलसे स्नान करावे, तब यह मंत्र पढ़े।

" सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये आसन्नभव्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमाता जिनमाता स्वाहा। "

इस प्रकार जन्मके दिन क्रिया की जावे।

पूजा करानेवाला द्विज पितासे सब काम करावे। जहां अर्हंत आदिकी पूजाका विधान हो उसे द्विज आप करे। *

जन्मसे तीसरे दिन पिता उस बालकको रात्रिके विषैं हाथमें लेकर उंचा करके नक्षत्रोंकर मंडित आकाश दिखावे, तब यह मंत्र पढ़े " अनंतज्ञानदर्शी भव "।

---

*नोट—आदिपुराणमें सर्व क्रिया पिता ही को करनी लिखा है। चूंकि बालकके जन्मसे वर्तमान प्रवृत्तिके अनुसार पिताको सूतक लग जाता है, इस लिये पूजा सम्बन्धी क्रिया गृहस्थाचार्य करे।

सम्पादक।

७. नामकर्म-सातवां संस्कार।

जन्मके दिनसे १२ वें दिन बालकका नाम रक्खे। नाम बहुत सुन्दर रक्खे, इस दिन भी ऊपर कहे प्रमाण पूजा व होम सात प्रकार पीठिकाके मंत्रोंतक करे। फिर नीचे लिखे मंत्र पढ़कर बालकके सामने आहुति देवे:-

" इत्यष्टसहस्रनामभागी भव। विजयनामाष्टसहस्रभागी भव। परमनामाष्टसहस्रभागी भव। "

फिर गृहस्थाचार्य व द्विज १००८ नाम जो सहस्रनाममें आते हैं अथवा अन्य शुभ नाम कागजके अलग २ टुकड़ोंपर लिखकर रख दे और किसी सदाचारी मनुष्य व बालक द्वारा उनमेंसे १ पत्र उठवा ले। उसमें जो नाम निकले वही नाम पुत्रका रक्खे। नाम सुन्दर हो, जैसे जिनदास, शुभचंद्र, ज्ञानचंद्र, रत्नज्योति आदि।

इस दिन भी सबको दान देय संतोषितकर पिता आहार-पान करे।

८. बहिर्यानाक्रिया-आठवां संस्कार।

दूसरे, तीसरे अथवा चौथे महीने ठीक मुहूर्त और अनुकूल दिनमें प्रसुति-घरसे बालकको बाहर लाया जावे। आजकल लोग एक मास भी नहीं बीतता है कि बालकको प्रसुति-घरसे बाहर कर लिया करते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि प्रसुति-घरके बाहर आ जानेसे माताका ध्यान दूसरी बातोंपर चला जाता है। प्रसुति-घरमें माताका यह फ़र्ज़ है कि पुत्रकी पालना भले प्रकार करे और आप भी आराम पाती हुई शरीरकी निर्बलताको-

दूर करे। प्रसूति–घरमें हवा व रोशनीके जानेका मार्ग जरूर होना चाहिये।

इस दिन भी पहिलेकी तरह पूजा होम करे। फिर माता अथवा धाय बालकको स्नानादि कराय योग्य वस्त्र पहिराय प्रसूति–घरसे बाहर लावें और होम कुंडके समीप सविनय माता बालक सहित बैठे। उस समय नीचे लिखे मंत्र पढ़ आहूति देवे।

उपनयनिष्क्रांतिभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ४ ॥ मंदराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ५ ॥ यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ६ ॥ महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥७। आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥८॥

फिर सर्व बंधुजन कुटुम्बी हर्षसे बालकको देखें और उसके हाथमें द्रव्य देवें। इसका अभिप्राय यह है कि आगामी कालमें यह पिताका धन पावे।

फिर सर्व कुटुम्बी–जन मिलके मातासहित बालकको धूम-धामके साथ श्रीजिनमन्दिरमें ले जाय, दर्शन करावें। यदि यह न बन सके तो घरमें जो चैत्यालय हो उसीमें दर्शन करावें। दर्शन कराते समय यह मंत्र पढ़ें।

ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा।

फिर लौटकर दानपूर्वक बंधुजनोंका सम्मान करके आहार-पान करे।

९. निषद्याक्रिया-नवां संस्कार।

पांचवें महीने अथवा जब बालक बैठने योग्य हो जावे तब यह क्रिया करनी चाहिये। इस क्रियाका यह मतलब है कि यह बालक विद्याके सिंहासनमें बैठने योग्य होवे। इसकी विधि यह है कि पहलेकी तरह पूजन होम पीठिकाके मंत्रोंतक करके फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करे।

दिव्यसिंहासनभागी भव ॥ १ ॥ विजयसिंहासनभागी भव ॥ २ ॥ परमसिंहासनभागी भव ॥३॥

फिर अक्षत बालकके मस्तकपर डाल, उस बालकको पलंगपर बैठावे जिस पर कि रुईके कोमल बिछौने बिछे होवें। इस दिन घरमें मंगल गीत गाये जावें।

१० अन्नप्राशन क्रिया-दसवां संस्कार।

जब बालक जन्मसे ७, ८ व ९ महीनेका हो जाय तब उसको अन्नके आहारका प्रारम्भ करना चाहिये। जबतक यह क्रिया न हो जाय तबतक अन्न नहीं खिलाना चाहिये।

इस दिन भी पहिले की भांति पूजा व होम पीठिकाके मंत्रोंतक करके फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम पूजा करके बालकके ऊपर अक्षत डाल उसको सुवस्त्रोंसे सुशोभितकर अन्न शुरू करावें।

दिव्यामृतभागी भव ॥ १ ॥ विजयामृतभागी भव ॥ २ ॥ अक्षीरामृतभागी भव ॥ ३ ॥

इस दिन भी घरमें मंगलाचार करे।

११ व्युष्टिक्रिया अथवा वर्षवर्धन क्रिया—ग्यारहवां संस्कार।

जब बालक जन्म—दिनसे १ वर्षका हो जाय तब यह क्रिया करनी चाहिये। आजके दिन इष्टबंधु मित्रजनोंको बुलाना चाहिये। पहिलेकी तरहं पूजन होम करके नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करके आशीर्वाद—सूचक अक्षत, वस्त्रोंसे सज्जित बालकके ऊपर क्षेपे।

उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव ॥ ४ ॥ मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव ॥५॥ यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ६ ॥ महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥७॥ परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ८ ॥ आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥९॥

इस प्रकार पूजन विसर्जन करके यथाशक्ति दान देवे, बंधुजनोंका सम्मान करे, उन्हें आहार कराय आप भोजन करे और घरमें मंगल गीत गवावे।

१२. चौलिक्रिया अथवा केशवापकर्म (मुंडनक्रियां) बारहवां संस्कार।

जब बालकके केश बढ़ जावें तब यह मुंडक्रिया कराई जावे। इसके लिये कोई खास समय नियत नहीं है, किंतु तेरहवां संस्कार बालकके पांचवें वर्ष पूर्ण होनेपर होता है। इसलिये उसके पहिले २ जब बालक दो तीन व ४ वर्षका होय तब यह क्रिया

यथायोग्य की जावे। शुभ दिन देखकर मुंडन कराना योग्य है। पहिलेकी तरह पूजा होमादि करे। पीठिकाके मंत्रोंके बाद नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करे। बालक व बन्धुजन वस्त्रोंसे सज्जित निकट बैठें।

उपनयनमुण्डभागी भव ॥ १ ॥ निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव ॥ २ ॥ निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव ॥३॥ परमनिस्तारककेशभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकेशभागी भव ॥ ५ ॥ परमराज्यकेशभागी भव ॥ ६ ॥ आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव ॥ ७ ॥

फिर जिनेन्द्रके गंधोदकसे बालकके केश गीले करके आशिकाके पुष्प बालकके सिरपर डाले जावें फिर बालक दूसरे स्थान लावे और उस समय चोटी सहित बिलकुल सिर मुंडन कराया जावे। इधर विसर्जन हो जाय। फिर बालकको गंधजलसे स्नान कराके चंदनादि सुगंध द्रव्य बालकके मस्तकादि अंगोंपर लगावें, तथा योग्य आभूषण पहिरावे। सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित कर बंधुजन मिलके उस बालकको श्रीमुनिमहाराजके निकट ले जावें, यदि मुनि महाराज न हों तो श्रीजिनमंदिरजीमें गाजे बाजेके साथ ले जावें और वहां दर्शन व प्रणाम तथा सामग्रीकी भेंट कराय फिर गृहस्थाचार्य या द्विज बालकके मस्तकपर चोटीके स्थानपर चंदनसे साथिया कर दे, जिसका प्रयोजन यह है कि अब इसको चोटी रखनी होगी। फिर श्री मंदिरजीसे सर्व घर लौट आवें और दानादि करें, बंधुजनोंको आहार कराय आप भोजन करें। घरमें मंगलगीत गाए जावें।

इस क्रियामें आभूषण पहिरानेका वर्णन लिखा है, सो आभूषण ऐसे मुलायम होने चाहिये, जिससे बालकको कष्ट न हो। आभूषणों में आजकल कुडल व बाले कानोंमें पहने जाते हैं, परन्तु आदिपुराणमें कानोंके बींधे जानेकी कोई विधि नहीं है; इससे यह प्रगट होता है कि प्राचीन कालमें विना कानोंको बींधे ही कानोंपर ऊपरसे ही कुंडल पहनाते होंगे। परन्तु 'सोमसेन त्रिवर्णाचार'में कानोंके व नाक (कन्याके सम्बन्धमें) के बींधे जानेकी विधि व मंत्र लिखा है। मालूम होता है कि उस समय यह रीति प्रचलित होगी। हमारी सम्मतिमें यदि बींधनेकी प्रथा बंदकी जावे तो बालकोंको कानोंके विधानेका कष्ट न हो। तथापि सोमसेनजीके लिखे अनुसार हम उस मंत्रको लिख देते हैं। जबतक यह प्रथा न छोड़ी जाय तब तक जैन-मत्रके अनुसार ही यह कार्य किया जाय। कर्ण-वेध क्रियाको सोमसेनजीने नामक्रियाके साथ ही करना कहा है तथा नामक्रियाको जन्मसे १२ वें दिन भी करसक्ते हैं, ऐसा कहा है। चूंकि मुंडनक्रियाके साथ ही यह क्रिया होनेकी प्रथा है इसलिये यहींपर वह मंत्र लिखा जाता है। जिस समय मुंडन कराया जाय उसी समय कर्णवेध भी हो सक्ता है।

कर्णवेधका मंत्र।

ॐ ह्रीं श्री अर्हं बालकस्य हः कर्णनासावेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

१३. लिपि संख्यान क्रिया-तेरहवां संस्कार।

जब बालक पांच वर्षका हो जाय तब यह क्रिया किसी शुभ दिन विषैं की जाती है। यदि अध्यापक घरमें ही आकर पढ़ावे तब तो यह क्रिया घरहीमें की जाय, किन्तु जो किसी जैनशालामें पढ़ने जावे तो वहीं यह क्रिया की जाय। तब सर्व बंधुजनोंको एकत्र कर बालकको वस्त्राभूषणोंसे सज्जित कर गाजे बाजेके साथ शालामें ले जावें। वहीं पूजन और होमकी विधि की जाय। जैसा होमादि पीठिकाके मंत्रोंतक इसकी पूर्वकी क्रियाओंमें हुआ है वैसा ही यहां किया जाय। फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करके अक्षत बालकके ऊपर डाले जावें।

शब्दपारगामी भव ॥ १ ॥ अर्थपारगामी भव ॥२॥ शब्दार्थसम्बन्धपारगामी भव ॥ ३ ॥

फिर उपाध्याय बालकके हाथसे पहले 'ॐ' अक्षरको लिखवावे। लिखानेका विधान यह है कि अक्षतोंको क्रमसे जोड़कर अक्षर बनवावे, व केशरसे कलम द्वारा अक्षत, सोने, चांदी, व धातु, पाषाणकी पाटीपर लिखवावे। ॐ के पीछे ॐ नमः सिद्धेभ्यः लिखवावे तथा बँचवावे। फिर अन्य अक्षर भी लिखा व बँचा सक्ता है। बालकको अक्षरोंकी लिपि-पुस्तक दी जाय और उसके रखनेकी विधि बताई जावे। जिस समय बालकको गुरु अक्षराभ्यास करावे उस समय बालक गुरुके सामने वस्त्रादि द्रव्य भेंट रक्खे और हाथ जोड़ प्रणाम करे, विनयसे गुरुके सामने बैठे। उस समय बालकको पिता यथायोग्य दान करे, सर्व बंधुजनोंको व गुरुके अन्य शिष्योंको मिष्टान्नादिसे सम्मानित करे, याचकोंको

तृप्त करे । फिर गाजे बाजे सहित घरको लौटे, यथायोग्य बंधु-ओंका सत्कार कर भोजन किया जाय।

आजके दिनसे प्रतिदिन बालक अक्षर व अंक आदिका अभ्यास करे अर्थात् इसके आगे करीब ३ वर्षमें होनेवाली जो उपनीति क्रिया है उसके पहिले २ अपनी (Primary Education) प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर ले; याने अक्षर, शब्द, वाक्योंका ठीक २ ज्ञान, लिखना, बांचना अर्थ समझना, जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित सीखे। यदि एकके सिवाय अन्य लिपिके शास्त्रोंका भी आगे अभ्यास करनेका इरादा होय तो उन लिपियोंको भी इस कालमें सीख लेवे तथा साधारण धर्मकी शिक्षा भी लेता रहे जिससे अपने जैनपनेकी पहचानता जाय। नित्य दर्शन, जाप आदि व खानपान क्रियाओंमें ठीक २ वर्तें। इस कालमें बालक मातपिताके पास ही रहता है, परन्तु विद्याका अभ्यास अध्यापक द्वारा घरमें व उसके स्थानपर लेता है। प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) में इस बालकको उपनीति क्रियाके पहिले २ चतुर हो जाना चाहिये। इसी लिये ३ वर्षका काल नियत किया गया है।

१४. उपनीति क्रिया (जनेऊ क्रिया)—चौदहवां संस्कार।

गर्भके दिनसे जब बालक ८ वर्षका हो जाय तब शुभ नक्षत्रमें यह यज्ञोपवीत क्रिया करनी योग्य है। त्रिवर्णाचारमें यह भी विधि है कि ब्राह्मण ८ वें वर्षमें, क्षत्री ११ वें वर्षमें, तथा वैश्य गर्भसे १२ वें वर्षमें यज्ञोपवीत करावे। तथा अंतकी हद ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके लिये क्रमसे १६, २२ और २४ वर्ष है,

परन्तु आदिपुराणके अनुसार तीनोंके लिये सामान्य काल ८ वर्ष है।

इस दिन श्रीजैनमंदिरजीमें व किसी खास मंडपमें जहां श्रीजिनबिम्ब विराजमान हों और बंधुजनादि बैठ सकें वहां यह क्रिया होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य वा प्रवीण द्विज या श्रावक यज्ञोपवीतकी सर्व क्रिया करावे। पहली क्रियाओंकी तरह पूजा व होम सात पीठिकाके मंत्रोंतक किया जाय। जिसका यज्ञोपवीत हो वह बालक चोटी सिवाय अन्य अपने सब केशोंका मुंडन कराय स्नानकर गृहस्थाचार्यके निकट आवे तब द्विज नीचे लिखे मंत्रोंसे आहूति देता हुआ उसके ऊपर अक्षत डाले और फिर विकाररहित सफेद वस्त्रादि पहिरावे, आदिकी क्रिया करे।

परमनिस्तारकलिंगभागी भव ॥ १ ॥ परमर्षिलिंगभागी भव ॥२॥ परमेंद्रलिंगभागी भव ॥३॥ परमराज्यलिंगभागी भव ॥ ४ ॥ परमार्हन्त्यलिंगभागी भव ॥५॥ परमनिर्वाणलिंगभागी भव ॥ ६ ॥

पहले कमरमें मूंजका डोरा तीन तारका बटा हुआ (लाल हो तो शुभ है) नीचे लिखा मंत्र पढ़ तीन गांठ देकर बांधे। तीन गांठ देनेका यह मतलब है कि यह रत्नत्रयका चिह्न है।

ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे मौंजीबन्धनं प्रकल्पयामि स्वाहा।

फिर सफेद कपड़ेकी कोपीन मौंजीको पकड़के नीचे लिखा मंत्र पढ़के अक्षत डालते हुए बांधे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं

कौपीनसहितं मौंजीबन्धनं करोमि पुण्यं बंधो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा ।

फिर गलेमें यज्ञोपवीत नीचे लिखा मंत्र पढ़के डाले । यज्ञोपवीत कच्चे सुतका हो, जो पीला रंगा जाय और सात तारका बनाया जाय, जिसका प्रयोजन यह है कि यह बालक ७ परम स्थानका भागी हो ।

ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि, मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा ।

फिर मुंडे हुए सिरमें चोटीको गांठ लगावे, मस्तकपर नीचे लिखा मंत्र पढ़ पुष्पमाला रक्खे वा पुष्प डाले । मस्तकपर तिलक करे और १ सफ़ेद धोती और सफेद दुपट्टा पहरावे । मूंडनेका मतलब यह है, यह मन वचन कायको मूंडने अर्थात् वशमें रखनेकी इच्छाकी वृद्धि करे ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्र परमेष्ठिने ललाटे शेखरशिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा ।

उज्वल धोई धोती दुपट्टा देनेका मतलब यह है कि यह अरहंतके पवित्र कुलका धारी है । फिर वह बालक एक अर्घ भगवानको चढ़ावे और अक्षतादि सहित हाथ जोड़कर गृहस्थाचार्य्यसे व्रत मांगे, तब द्विज नीचे लिखा मंत्र तीन वार पढ़कर णमोकार मंत्र देवे, तथा पांच स्थूल पापोंके त्यागका उपदेश दे

और स्थूलपने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील और तृष्णाका घटाव ये पांच व्रत भले प्रकार समझाकर ग्रहण करावे।* विद्याभ्यास करने तक पूरा ब्रह्मचर्य्य ग्रहण करावे।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा।

तथा नीचे लिखी वातोंके न करनेका उपदेश देवे! और उसका दूसरा शुभ नाम रक्खे।

१. हरे काष्टसे दन्त-धावन न करे। २ ताम्बूल न खावे। ३ सुरमा न लगावे। ४. हलदी आदि पदार्थोंको लगाकर स्नान न करे, केवल शुद्ध जलसे प्रतिदिन नहावे। ५ खाटपर न सोवे, तखत चटाई व भूमिपर अकेले सोवे। ६. दूसरेके अङ्गसे अपना अंग अकेले न छुवावे।

फिर वह बालक अग्निके उत्तरकी ओर खड़ा हो एक अर्घ चढ़ावे और अपने आसनपर बैठे। फिर पूजा विसर्जन की जाय और तब वह बालक द्विजकी आज्ञा ले भिक्षाका पात्र ले भिक्षा मांगनेको जावे। क्षत्रीका पुत्र अपने माता पितादिसे ही भिक्षा मांगे। ब्राह्मण व वैश्यका पुत्र तीन वर्णोंके गृहस्थियोंसे भिक्षा ले, गुरुके आश्रममें जावे। वहीं पहले श्रावककी क्रियाका ग्रंथ उपासकाध्ययन पढ़े। फिर व्याकरण, छंद, ज्योतिष, गणित अपने २ वर्णके योग्य परमार्थिक और लौकिक विद्याका अभ्यास करे। शिष्य जिसके घर भिक्षा लेने जाय उसके आंगनमें जा

---

* यहा जैसे गृहस्थ श्रावक प्रतिज्ञा रूप व्रत लेते है वैसे नहीं है किन्तु अभ्यासरूप है ऐसा समझमें आता है।

" भिक्षां देहि " ऐसा शब्द कहे। तब दातार अत्यन्त सम्मान पूर्वक तंदुलादि जो दे सो ले ले। इस तरह संतोष वृत्तिके साथ भिक्षासे उदर भरता हुआ और दिन रात गुरुके पास ब्रह्मचारीके रूपमें रहता हुआ विद्याभ्यास करे।

यज्ञोपवीत धारनेका विचार—जनेऊ अपने तालूके छेदसे नाभितक लम्बा लटकता रहना चाहिये, नाभिके नीचे न जावे, न इससे छोटा हो। लघुशंका करते समयमें कानमें तथा दीर्घशंका समय बांएं कानमें तथा सिरमें भी लपेट सक्ता है, ताकि अशुद्ध न होने पावे। शौच करने बाद व सूतक पातक होनेपर व अंगमें तेल लगाकर स्नान करनेपर जनेऊको गलेसे उतारकर अच्छी तरह धोवे, फिर पहिने। यदि जनेऊ तथा मौंजीसूत्र टूट जावे तो दूसरा बदल ले और पुरानेको नदी व दूसरे बहने पानीमें डाल दे।

१५. व्रतचर्य्या–पन्द्रहवां संस्कार।

इस क्रियाका कोई खास दिन व मंत्र नियत नहीं है। इस क्रियाके कहनेका यह अभिप्राय है कि वह विद्यार्थी ब्रह्मचारी कटि-चिन्ह (मौंजीबन्धन), उरुचिन्ह (जंघ चिन्ह), गलेका चिन्ह (जनेऊ) तथा सिरका चिन्ह (सिर मुंडा हुआ शिखा–सहित) ऐसे चार चिन्हों सहित गुरुके पास विद्याध्ययन करे। दृढताईसे ब्रह्मच-र्य्यव्रत पाले। अपने वीर्य्यकी भले प्रकार रक्षा करे। वीर्य्यका कभी भी खोटा उपयोग न करे। गरिष्ट भोजन न खावे। भूखसे कुछ कम भोजन करे। अपने कर्तव्यमें पूरा तल्लीन रहे। नाटक खेल नाच कूद न देखे, जिससे परिणामोंमें विकार पैदा हों। इस तरह

कमसे कम ८ वर्षतक गुरुके पास खूब विद्याभ्यास करे। यदि अधिक कालतक विद्याभ्यास करता रहे तो कोई हर्ज़की बात नहीं है। विद्य के लाभमें खूब प्रवीण हो जावे। विद्याभ्यास करनेकी तो यही पद्धति है; परन्तु यदि गुरुके आश्रममें पढ़नेका साधन न हो तो यज्ञोपवीत कराकर रक्षकोंको योग्य है कि अपने पुत्रोंको कमसे कम ८ वर्षतक विद्याभ्यास करावें, यदि पढ़नेमें शौक बढ़ता जा रहा हो तो और अधिक पढ़ने देवें और घरमें भी उनको ब्रह्मचारीकी रीतिसे ही रखनेकी पूरी २ चेष्टा करें। विद्यार्थियोंको धार्मिक विद्याके साथ २ लौकिक विद्याका पूर्ण विद्वान्, विद्यार्थीकी रुचिके अनुसार, विद्याके विभागमें बनाना चाहिये और जबतक विद्यारूपी स्त्रीके लाभमें विद्यार्थी लवलीन रहे तबतक भूलकरके भी उसके सामने विवाहकी चरचा तक न करनी चाहिये, सगाई व विवाह करना तो दूर ही रहा। विद्याभ्यास करनेवाले विद्यार्थीको मांस, मदिरा, मधु आदि अभक्ष्य पदार्थोंके खानेका त्याग होता है।

१६. व्रतावतारण क्रिया-सोलहवां संस्कार।

विद्याभ्यास कर लेनेके बाद विद्यार्थी गुरुकी आज्ञा लेकर माता पिताके निकट आता है। यदि उसके परिणाम होते हैं कि मै अब ब्रह्मचारी ही रहूं अथवा उत्कृष्ट श्रावक व मुनिके व्रत पालूं तो वह अपने मातापितासे आज्ञा लेकर उनको संसारकी अनित्यता दिखाकर श्री आचार्यके निकट रह व्रतका पालन करता है। और यदि उसके परिणाम विरक्त नहीं होते तो वह विवाहकी इच्छा करके घरमें रहता है। जनेऊ-**दाता** गृहस्थाचार्य्यकी आज्ञासे पहिलेके व्रतोंको उतारता है, वस्त्राभरण व पुष्पमालादि

अपने कुलके योग्य धारण करता है; परन्तु मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलका त्याग इसके सदा रहता है तथा पंच अणु· व्रतोंको सदाकाल पालता है और देवपूजा दानादि कर्मको करते हुए अपने २ कुलके योग्य व्यापारादिमें प्रवर्तन करता है। इसके पश्चात् मातापिता उसके योग्य कन्या तलाश करते हैं। जिसके साथ प्रसन्न होकर वह विवाह-संस्कार करता है।

१७. विवाह क्रिया-सत्रहवां संस्कार।

योग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह होना भी एक धर्म कार्य है। जैसा श्रीआदिपुराण पर्व १५ में कहा है:—

देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहम्।
संतानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनाम्॥

अर्थात् संतानके लिये ये विवाह-संस्कार गृहस्थियोंका धर्म है।

कन्याके लक्षण।

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम्।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः॥

अर्थात् दूसरे गोत्रमें जन्मी हो, रोग रहित हो, सुलक्षणवान हो, दीर्घायु हो तथा गुणवती हो (विद्याभ्याससे गृह धर्म और आत्मीक धर्ममें चतुर हो) तथा पिताद्वारा दी गई हो।

वरके लक्षण।

वरोपि गुणवान् श्रेष्ठो दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः।
सुकुली तु सदाचारो गृह्यतेऽसौ सुरूपकः॥

अर्थात् वर गुणवान (धर्मकार्य्य तथा लौकिक आजीवि

कादि कार्यमें चतुर हो) कन्यासे बड़ा, दीर्घायु, निरोगी, सुकुली, सदाचारी तथा सुरूपवान हो।

विवाह योग्य आयु।

कन्याको ११ वर्षकी उमरमें विवाह देना चाहिये, उससे पहले नहीं। यदि रजस्वला धर्म होनेकी संभावना न हो तो १२ से अधिक अवस्थामें भी विवाह हो सक्ता है। रजस्वला धर्म होनेकी संभावनापर कन्याको अवश्य विवाह देना चाहिए। कन्याकी उमरसे वरकी उमर कमसे कम ४ वर्ष अधिक व अधिकसे अधिक ८ वर्ष अधिक हो तो ठीक है।

यद्यपि माता–पिता कन्या व पुत्रके विवाहके अधिकारी हैं। तथापि कन्या व वरको भी अपने २ आगामी सम्बन्धीका हाल वाग्दानके पहले ही मालूम हो जाना चाहिये; क्योंकि विवाह होनेपर दोनोंमें एकता रहने ही से गृह–धर्मकी शोभा होगी। यदि किसी वर व कन्याका मन परस्पर न मिले तो माता पिताको उनसे पूछकर उनका वाग्दान नहीं करना चाहिये, किन्तु अन्य सम्बन्ध खोजना चाहिए।

वाग्दान क्रिया।

जिस मासमें लग्न होनेका हो उसके पहले पहले वाग्दान हो जाना चाहिये। सर्व सम्बन्धियोंके सन्मुख कन्या और वरके पिता किसी स्थानपर अपने २ इष्ट देवकी पूजा करके एकत्र हों, वहां गृहस्थाचार्य भी हो। तथा पहले कन्याका पिता यह वचन कहे कि "आप सबके सामने मैं अपनी इस कन्याको सद्धर्मकी वृद्धिके लिए अपने मन, वचन, कायसे आपके पुत्रको देना चाहता हूं।"

यह वचन सुन वरका पिता ऐसा कहे, "मैं सर्व मंडलीके सन्मुख आपकी कन्याको अपने पुत्रके अर्थ वंश वृद्धिके हेतुसे स्वीकार करता हूं" फिर कन्याका पिता अपने इस वचनके संकल्पको दिख-लानेके लिये वरके पिताके हाथमें फल और अक्षत तथा तांबूल देवे। फिर वरका पिता भी उसे फल, अक्षत व ताम्बूल देवे।

सगाई (गोद लेना।)

कन्याका पिता किसी शुभ दिनमें वरको अपने घर बुलावे। उस दिन कन्याका पिता वरको वस्त्रादि देवे, टीका करे। घरमें पहलेकी भाँति देव-पूजा तथा स्नपीठिकाके मन्त्रोंतक होम करना चाहिये।

इसी प्रकार वरका पिता भी किसी शुभ दिन कन्याको बुलावे और ऊपरके समान कार्य्य किया जाय।

लग्नविधि।

किसी शुभ दिनमें कन्याका पिता पंचोंके सम्मुख विवाह करनेकी लग्न निश्चय करके पत्रमें लिख सेवकके हाथ वरके पिताके घर भेजे। वरका पिता पंचोंके सामने उस लग्नपत्रको बांचकर सुनावे और सेवकको वस्त्रादि देवे।

सिद्धयंत्रका स्थापन।

जैसा पहली क्रियाओंमें कहा गया है कि इस यंत्रका स्थापन हरएक गृहस्थीके यहां होता ही है। यदि न हो तो विवाहके पहले यह सिद्ध यंत्र वर तथा कन्याके पिताके घरमें श्रीमंदिरजीसे यथायोग्य उत्सवके साथ लाया जाय अथवा यदि नवीन स्थापना करनी हो तो स्थापित किया जाय, और देव, गुरु शास्त्रकी पूजा नित्य की जाय।

कंकण-बंधन विधि ।

विवाहके तीन दिन पहले गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मंत्र पढ़ वर और कन्याके हरएकके घरमें रक्षाबंधनके लिये कंकण बांधे । इस दिन भी पहलेकी भांति सप्त पीठिकाके मंत्रों तक पूजा व होम किया जाय ।

जिनेन्द्रगुरुपूजनं श्रुतवचः सदा धारणं ।
स्वशीलयमरक्षणं ददनसत्तपो बृंहणम् ॥

इति प्रथितषट्क्रियानिरतिचारमास्तां तवेत्यथ प्रथमकर्मणे विहितकंकणिकाबंधनम् ।

मंडप तथा वेदीकी रचना ।

कन्याके [illegible] आठके थम्भसे युक्त सुन्दर चौकोर वेदी बनावे उसे [illegible] वस्त्र और सूतसे वेष्टित करे । बीचमें वेदी (चबूतरा) चार हाथ लम्बी, चौड़ी बनावे । जिसमें तीन कटनी कन्याके [illegible] हाथ ऊंची बनवावे । सबसे ऊपरकी कटनीपर [illegible] स्थापित करे । बीचकी कटनीपर शास्त्र तथा नीचेकी कटनीपर आठ मंगल द्रव्य अर्थात् झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, चमर, ठोणा, छत्र और दर्पण रक्खे । यदि ये मंगल द्रव्य चांदी व धातुके बने न हों तो आठ मंगल द्रव्योंका तोरण बांध दे तथा एक रकाबीमें केशरसे चौसठ ऋद्धियोंके नाम लिखे अथवा नीचे लिखा वाक्य लिखे ।

बुद्धिचारणविक्रियातपः बलौषधिरसाक्षीणचतुः षष्ठिऋद्धिधारकेभ्यो गुरुभ्यो नमः ।

तीसरी कटनीके आगे बेदीपर ही होमके लिये चौकोर तीर्थंकुड बनवावे । पूजा तथा होमकी सामग्री तय्यार रक्खे ।

विवाह विधि ।

पाणिग्रहणके समय कन्या तथा वर और दोनोंके पिता माता और गृहस्थाचार्य ऐसे सात जीव रहने योग्य हैं । गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मंत्र पढ़के प्राशुक जलसे भरे हुए यथासंभव नवरत्न तथा पुष्प गंधाक्षत व बिजौरा फलसे शोभित कलशको बीचकी कटनीपर शास्त्रकी उत्तर ओर स्थापित करे ।

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमानाविवाहकर्माणि होममंडपभूमिशुद्ध्यर्थं पात्रशुद्ध्यर्थं क्रियाशुद्ध्यर्थं शांत्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगंधपुष्पाक्षतादिबीजपूरशोभितशुद्धप्राशुकतीर्थजलपूरितं मंगलकलशस्थापनं करोम्यहं झ्वीं क्ष्वीं हंसः स्वाहा ।

अब शुभ घड़ीमें बरात लेकर वर श्वसुरके घरपर आवे । वर बरातके दिन स्नानादि कर वस्त्रादिसे सुसज्जित हो चैत्यबिम्ब व सिद्धयंत्रकी तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके सर्व बरातियोंके साथ योद्धाकी भांति यथासंभव उत्सवके साथमें श्वसुरके द्वारपर आवे और द्वारपर जो तोरण (बन्दनमाल) बंधा हो उसको स्पर्श करे । फिर स्त्रियोंके साथ कन्याकी माता आवे । वरके मुखको देखकर वरके मस्तक ऊपर अक्षतादिकी अंजली फेंके और सरसों, पुष्प, मोती, दूब, अक्षत और दीपकोंके समूह सहित थाल लेकर आरती उतारे तथा मुद्रिका आदि कुछ

भी आभूषण देवे। उसी समय वरका पिता कन्याके लिये लाये वस्त्राभूषण कन्याकी माताको अर्पण करे। उसी समय कन्याको स्नान करा वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित की जावे।

फिर कन्याका मामा वरको लाकर वेदीके दक्षिण ओर पूर्व मुखसे खड़ा कर दे। फिर कन्याको भी लाकर वरके सम्मुख खड़ी कर दे। गृहस्थाचार्य्य कोई भी मगल पाठ व स्तोत्र पढ़े। तब कन्या सेहरा उठाकर वरका मुख देखे और वर कन्याका मुख देखे। फिर कन्या वरके गलेमें सुगन्धित पुष्पोंकी माला पहिरावे।

फिर पहले कन्याका मामा वरसे कहे, ' मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवाके लिये यह कन्या देना चाहता हूं। " फिर ऐसा ही कन्याका पिता भी कहे, फिर कन्याके कुटुम्बके अन्य लोग भी ऐसा ही कहें। फिर कन्याका पिता अपने वंशको अपने परदादेसे गिनाता हुआ वरके परदादेसे बापतक नाम लेता हुआ कहता है कि, "अमुककी यह कन्या सो अमुकके पुत्र जो तुमको देना चाहता हूं, सो तू उसे वर। "

वर सिद्धमहाराजको नमस्कार करके कहता है, "वृणेऽहम्" अर्थात् मैं वरी। फिर कन्याका पिता कहता है, " इसे धर्मसे पालन करना। " वर कहता है, ' मैं धर्मसे, अर्थसे और कामसे इसका पालन करूंगा। " फिर कन्याका पिता जलकी भरी झारी हाथमें उठावे। तब दोनों पक्षके स्त्री पुरुष कहें " वृणीध्वं वृणीध्वं वृणीध्वं " अर्थात् वरो वरो वरो। फिर गृहस्थाचार्य्य पिताकी ओरसे कहे, अमुक वर्षकी तिथि वारमें अमुक गोत्र नामवाला मैं अपनी कन्याको प्रदान करता हूं, तब यह नीचे लिखा

मंत्र पढ़कर झारीमेंसे जलकी धारा वरके हाथमें डाले। सर्व स्त्री पुरुष वर कन्याके मस्तकपर अक्षत क्षेपण करें।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्द्धमानाय श्रीब-लायुरारोग्यसंतानाभिवर्द्धनं भवतु, इमां कन्यामस्मै कुमाराय ददामि झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

फिर गृहस्थाचार्य्य नित्यनियमपूजा, देवशास्त्रगुरुकी पूजा तथा सिद्धपूजा करे। पूजा हो चुकने तक वर और कन्या खड़े रहें अथवा शक्ति न हो तो बैठ जावें। सिद्धपूजाके बाद सात पीठिकाके मंत्रोंतक जैसा पहले लिखा है होम किया जावे। फिर कोई सुहागन स्त्री वर और कन्याका गठजोड़ा करे अर्थात् दोनोंका वस्त्र बांधे तथा कन्याका पिता हल्द व मेंहदी अपनी कन्याके बाएं और वरके दक्षिण हाथमें लगावे। फिर गृहस्थाचार्य्य णमोकारमंत्र पढ़ता हुआ कन्याका बांया हाथ नीचे और वरका दाहना हाथ ऊपर रखकर जोड़ दे। उस समय कन्याका पिता अपनी योग्यतानुसार दहेज देवे। फिर सात परमस्थानकी प्राप्तिके लिए वर कन्या वेदीकी सात प्रदक्षिणा देवे। सातवीं प्रदक्षिणा हो चुकनेपर कन्याकी संज्ञा छूटकर वधूकी संज्ञा हो जाती है। फिर वर वधू वेदीके सामने खड़े हो जावें; तब गृहस्थाचार्य्य हाथमें कलश ले जल–धारा देता हुआ नीचे लिखे मंत्र पढकर शांति–धारा करे।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं। लोकोद्योतनकरा अतीत-कालसंजाता निर्वाणसागरमहासाधुविमलप्रभशु-द्धाभश्रीधरसुदत्तामलप्रभोद्धराग्निसन्मतिशिवकुसु-मांजलिशिवगणोत्साहज्ञानेश्वरपरमेश्वरविमलेश्वर-

यशोधरकृष्णज्ञानमतिशुद्धमतिश्रीभद्रशांताश्चेति चतुर्विंशतिभूतपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ १ ॥

ॐ संप्रतिकालश्रेयस्करस्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणकेवलज्ञाननिर्वाणकल्याणविभूतिविभूषितमहाभ्युदयाः श्रीवृषभाजितशंभवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचंद्रप्रभपुष्पदन्तशीतलश्रेयोवासुपूज्यविमलानंतधर्मशांतिकुंथ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमिपार्श्ववर्धमानाश्चेति चतुर्विंशतिवर्तमानपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ २ ॥

ॐ भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभवाः महापद्मदेवसुप्रभस्वयंप्रभसर्वायुधजयदेवोदयदेवप्रभादेवोदंकदेवप्रश्नकीर्तिजयकीर्तिपूर्णबुद्धनिष्कषायविमलप्रभबहलनिर्मलचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्वयंभूकंदर्पजयनाथविमलनाथदिव्यवागनंतवीर्याश्चेति चतुर्विंशतिभविष्यत्परमदेवाश्च वः प्रीयंता प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ३ ॥

ॐ त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदयाः सीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातकस्वयंप्रभऋषभेश्वरानंतवीर्यविशालप्रभवज्रधरचंद्राननचंद्रबाहुभुजंगेश्वरनेमप्रभुवीरसेनमहाभद्रयशोभद्रजयदेवाजितवीर्याश्चेति पंचविदेहक्षेत्रविहरमाणा विंशतिपरमदेवाश्च वः प्रीयन्ताम् प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ४ ॥

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवो वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ५ ॥

ॐ कोष्ठबीजपादानुसारिबुद्धिसंभिन्नश्रोत्रप्रज्ञाश्रवणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ६ ॥

ॐ आमर्षक्ष्वेडजल्लविड्उत्सर्गसर्वौषधयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ७ ॥

ॐ जलफलजंघातंतुपुष्पश्रेणिपत्राग्निशिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ८ ॥

ॐ आहाररसवदक्षीणमहानसालयाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ९ ॥

ॐ उग्रदीप्ततप्तमहाघोरानुपमतपश्च वः प्रीयंतां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १० ॥

ॐ मनोवाक्कायबलिनश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ११ ॥

ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ १२ ॥

ॐ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च वः प्रीयंन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १३ ॥

ॐ अंगांगबाह्यज्ञानदिवाकराः कुंदकुंदाद्यनेकादिगंबरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥धारा॥१४॥

ॐ इह वान्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताजिनधर्मपरायणाः भवन्तु ॥ धारा ॥ १५ ॥

दान तपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु ॥ धारा ॥१६॥

मातृपितृभ्रातृपुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्वजनसंबंधिबंधुस-हितस्यामुकस्य (वरका नाम बोलो) ते धनधान्यै-श्वर्यबलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्द्धतां ॥धारा।१७।

शान्तिधारा।

तुष्टिरस्तु। पुष्टिरस्तु। वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। अविघ्नमस्तु। आयुष्यमस्तु। आरोग्यमस्तु। कर्म-सिद्धिरस्तु। इष्टसंपत्तिरस्तु। काममांगल्योत्सवाः संतु। पापानि शाम्यंतु। घोराणि शाम्यन्तु। पुण्यं वर्द्धतां। धर्मो वर्द्धतां। श्रीर्वर्द्धतां। कुलं गोत्रं चाभिवर्धताम्। स्वस्ति भद्रं चास्तु। झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा ॥ श्रीमज्जिनेन्द्रचरणारविंदेष्वानंदभक्तिः सदाऽस्तु ॥ धारा ॥ १८ ॥

इस प्रकार पढ़ता हुआ मंगल कलशसे धारा छोड़ता जाय।

इति शांतिधारा।

फिर नीचे लिखी स्तुति पढ़कर गृहस्थाचार्य्य जलधारा देवे व शांतिके लिये पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे।

चिद्रूपभावमनवद्यमिमं त्वदीयं, ध्यायन्ति ये सदुपधिव्यतिहारमुक्तं।
नित्यं निरंजनमनादिमनंतरूपं, तेषां महांसि भुवनत्रितये लसंति॥१
ध्येयस्त्वमेव भवपंचतयप्रसार-निर्णाशकारणविधौ निपुणत्वयोगात्
आत्मप्रकाशकृतलोकतदन्यभाव-पर्यायविस्फुरणकृत्परमोऽसियोगी।

त्वन्नाम मंत्रधनमुद्धतजन्मजातम्-
दुःखक्रमदावमभिशम्य शुभांकुराणि।

व्यापादयत्यतुलभक्तिसमृद्धिभांजि
स्वामिन्यतोऽसि शुभदः शुभकृत्त्वमेव ॥ ३ ॥
त्वत्पादतामरसकोशनिवासमास्ते
चित्तद्विरेफसुकृती मम यावदीश ।
तावच्च संसृतिजकिल्विषतापशापः
स्थानं मयि क्षणमपि प्रतियाति काचित् ॥ ४ ॥
त्वन्नाममंत्रमनिशं रसनाग्रवर्ति
यस्यास्ति मोहमदघूर्णननाशहेतु ।
प्रत्यूहराजिलगणोद्भवकालकूट-
भीतिर्हि तस्य किमु संनिधिमेति देव ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वमेव शरणं तरणं भवाब्धौ
शांतिप्रदः सकलदोषनिवारणेन ।
जागर्त्ति शुद्धमनसा स्मरतां यतो मे
शांतिः स्वयं वरतले रभसाभ्युपैति ॥ ६ ॥

फिर "उदकचंदन आदि" बोलकर वर वधूसे अर्घ चढ़वाना चाहिये। फिर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर गृहस्थाचार्य्य वर वधूसे पुष्प क्षेपण करावे।

जगति शांतिविवर्धनमंहसां, प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन मे ।
सुकृतबुद्धिरलं क्षमया युतो, जिनवृषो हृदये मम वर्त्ततां ॥१॥

फिर गृहस्थाचार्य्य नीचे लिखा मंत्र पढ़ पुष्पांजलि क्षेपकर पूजा विसर्जन करे तथा जलधारा देवे।

ॐ ह्रीं अस्मिन् विवाहमांगल्यकर्माणि आहू-

यमानदेवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु, अपराधक्षमापनं भवतु।

फिर सासू और अन्य स्त्रियें वर और कन्याकी अक्षत सहित आरती करें।

गृहस्थाचार्य नीचे लिखे मंत्रसे आशीर्वाद देवे, वर वधू विनय करे।

आरोग्यमस्तु चिरमायुरथो शचीव
शक्रस्य शीतकिरणस्य च रोहिणीव।
मेघेश्वरस्य च सुलोचनका यथैषा
भूयात्तवेप्सितसुखानुभवोद्य धात्री ॥१॥

इसके पीछे वर सासु आदिको प्रणाम करे। वरका पिता सेवकनको दान देवे तथा श्री जैनमंदिर व विद्या-वृद्धिके कामोंमें वर और कन्याके पिता यथायोग्य दान देवें। यदि विवाहमें १००००) लगावें तो दसवां भाग धर्मार्थ अवश्य देवें। इसी हिसाबसे दान करना उचित है।

पश्चात् वर वधूको लेकर व दहेजको लेकर वरके सम्बंधी अपने घर आवें। घरमें सात दिनतक वर वधू ब्रह्मचर्यसे रहैं, परन्तु दोनों परस्पर प्रेमसे वचनालाप कर सकते हैं। यदि दूसरे ग्राममें बरात गई हो तो डेरेपर आकर दूसरे दिन उस ग्रामके मंदिरोंके दर्शन वींद वींदनी करें, फिर घरमें पधारें। इसी प्रकार ७ दिनतक सर्व मंदिरोंके बराबर दर्शन करें। आठवें दिन श्री मंदिरजीके दर्शन करके उच्छवसहित घरमें आवें और कंकण-डोरा खोला जावे। उस दिन रात्रिको दूसरे तीसरे पहर केवल संतानके अर्थ काम सेवन करें।

पश्चात् ऋतु समय हीमें अर्थात् रजस्वला होने पर ही कामसेवन करना उचित है।

इस तरहँ विवाह–संस्कार तक १७ संस्कारोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। विवाह सम्बन्धी विशेष विधि "जैन विवाहविधि" नामकी पुस्तकसे मालूम हो सक्ती है, जो "दिगम्बर जैन पुस्तकालय–सूरत" से प्राप्त होती है। अन्य आवश्यक संस्कार यथा अवसर कथन किये जाँयगे।

—⊙—

अध्याय ५ वां।

अजैनको श्रावककी पात्रता।

श्री आदिपुराण ३९ वें पर्वमें अजैनको जैनी बनानेका जो विधान लिखा है उसका संक्षेप भावार्थ हम यहां इसलिये देते हैं कि हमारे पाठकोंको इसकी रीति मालूम हो। अजैनको शुद्ध करनेकी जो क्रियाएं हैं वे दीक्षान्वय क्रियाएं कहलाती हैं। इनकी संख्या ४८ है, परन्तु जो मुख्य ९ क्रियाएं हैं वे यहां बयान की जाती हैं।

१. अवतार क्रिया।

तत्रावतारसंज्ञास्यादाद्यादीक्षान्वय क्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे॥ ७॥
स तु संयत्य योगीन्द्रं युक्ताचारं महाधियम्।
गृहस्थाचार्यमथवा प्रच्छतीति विचक्षणः॥ ८॥

ये श्लोक प्रमाणके अर्थ दे दिये गये हैं। इस क्रियाका मतलब यह है कि जो भव्य पहले अविधि याने मिथ्या मार्गसे

दूषित है वह सन्मार्गके ग्रहणकी इच्छा करके किसी मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके पास जाकर प्रार्थना करे कि मुझे निर्दोष धर्मका स्वरूप कहिये; विषय कषायके प्ररूपनहारे मार्ग मुझे दोषरूप भाष रहे हैं। तब आचार्य देव, गुरु और धर्मका उसे सच्चा स्वरूप समझावें। सुनकर वह भव्य दुर्मार्गसे बुद्धि हटाकर सच्चे मार्गमें अपना प्रेम प्रगट करता है और आचार्य्यको धर्मरूप जन्मका दाता पिता समझता है।

२. व्रतलाभ क्रिया।

पश्चात् यह शिष्य अपनी श्रद्धा करके व्रतको ग्रहण करे और अपने गुरुका उपकार माने। यद्यपि आदिपुराणमें व्रतोंका नाम नहीं लिखा है, परन्तु प्रारम्भमें पांच अणुव्रतका ग्रहण और तीन मकारका त्याग कराया जाता है अर्थात् संकल्प करके १. त्रस हिंसाका त्याग (आरम्भका नहीं), २. स्थूल असत्यका त्याग, ३ स्थूल चोरीका त्याग, ४. परस्त्रीका त्याग, ५. परिग्रहका प्रमाण तथा मदिरा (शराब) मांस और मधु याने शहद–इन तीन मकारोंका त्याग–इस प्रकार व्रतोंको पाले। इसका अभ्यास हो जानेके पीछे शिष्य तीसरी क्रियाका प्रारम्भ करता है।

नोट—इस व्रत-लाभ क्रियाकी प्राप्तिमें यह भव्य मोटे रूपसे अन्यायोंको छोड़ता है, जैसे मांस न खाना, शराब न पीना, शहद न खाना, जानबूझकर इच्छासे किसी जानवरको नहीं मारना, दूसरेको ठगनेवाली झूठको न कहना, किसीका माल न उठाना, वेश्या व परस्त्रीसे काम-सेवन न करना, और तृष्णाको घटानेके लिये द्रव्यका प्रमाण कर लेना कि अमुक रकम हो जानेपर व्यापार न करूंगा, जैसे १ लाख या २ लाख जैसी अपनी इच्छा हो।

३. स्थान-लाभ क्रिया ।

किसी शुभ नक्षत्रमें यह क्रिया की जावे । जिस दिन यह क्रिया हो उस दिनके पहले शिष्य उपवास करे । पारणाके दिन गृहस्थाचार्य्य श्री जिनमंदिरजीमें महा सूक्ष्म पीस्या चूनसे वा चंदनादि सुगंध द्रव्योंसे आठ दल कमलका व समवशरणका मांडला मंडवावे और विस्तार सहित श्री अरहंत और सिद्धकी पूजा करे, पंच परमेष्ठीका पाठ व समयके अनुसार अन्य कोई पाठकी पूजा करे । शिष्य भगवानकी प्रतिमाके सम्मुख बैठे, सर्व पूजा भावसे सुने । पूजाके पीछे गृहस्थाचार्य्य पंचमुष्टि-विधान अथवा पंचगुरुमुद्राके विधान कर शिष्यके मस्तकको हाथसे छुए अर्थात् उसके सिरपर अपना हाथ रक्खे और कहे 'पूतोसि दीक्षया' अर्थात् तू इस दीक्षाकरके पवित्र भया । ऐसा कह कर पूजनसे शेषा रहे आशिकारूप अक्षितोंको इसके मस्तकपर डाले और फिर पंच णमोकारमंत्रका इसको उपदेश करे और कहेः-

" मंत्रोऽयमखिलात् पापात् त्वां पुनीतात् "

अर्थात् यह मंत्र सर्व पापसे छुड़ाकर तुझे पवित्र करे । फिर गृहस्थाचार्य उसको पारणा करनेके लिये भेजे । वह शिष्य गुरुकी कृपासे संतोष मानता हुआ अपने घर जाकर पारणा करे । इसके पीछे चौथी क्रिया करे ।

४. गणग्रह क्रिया ।

इस क्रियाका मतलब यह है कि वह भव्य अपनी मिथ्यात्वकी अवस्थामें श्रीअरहंत सिवाय और देवताओंकी मूर्तियोंको, जिनको कि वह पूजता था, अपने घरसे विदा करे; याने किसी

गुप्त स्थानमें जहां उनको बाधा न हो और उनकी सेवा भी न हो ऐसी जगहमें धर आवे। जिस समय इन मुर्तियोंको अपने घरसे हटावे उस समय यह वचन कहेः—

इयन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्वकृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम्॥

अर्थात् अबतक मैंने अज्ञानसे तुम्हारी आदरपूर्वक पूजा की, मुझे अपने आगममें कहे देवताओंकी पूजा करना चाहिये, इसलिये, हे मिथ्या देवताओ! तुम मेरेपर कोप न करके अन्यत्र जहाँ इच्छा हो वहां बसो। फिर शांत स्वरूप जिनेन्द्र देवकी पूजा करे। संस्कृतमें शब्द हैं:-

विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः।

भाषा आदिपुराणमें यह वाक्य हैं:-

यह क्रिया जो रागी देवनिकूँ अपने घरतें बिदा करि वीत-राग देवको पधरावे।

इससे यह प्रगट है कि इस दिनसे वह भव्य श्रीजिनेन्द्रकी पूजा करे। इसके पश्चात् पांचवीं क्रिया करे।

५. पूजाराध्य क्रिया।

इस क्रियामें यह भव्य भगवानकी पूजा करके तथा उपवास करके द्वादशांगके संक्षेप अर्थ सुने, जिनवाणीका धारण करे। इसके पीछे छठवीं क्रिया करे।

६. पुण्य-यज्ञ क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव साधर्मियोंके साथमें १४ पूर्वका अर्थ सुने।

७. दृढ़चर्य्या क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव अपने शास्त्रोंको जानकर अन्य शास्त्रोंको सुने व जाने।

नोट—ये क्रियाएं किसी खास शुभ दिनमें प्रारंभ की जाती हैं। इसके पीछे ८ वीं क्रिया करे।

८. उपयोगिता क्रिया।

इस क्रियाको धारते हुए हरएक अष्टमी और चौदसको उपवास करे, रात्रिको कायोत्सर्ग करे व धर्म-ध्यानमें समय वितावे। इसके पीछे नवमी जनेऊ लेनेकी क्रिया करे।

९. उपनीति क्रिया।

जब यह भव्य जिन-भाषित क्रियाओंमें पक्का हो जाय और जैनागमके ज्ञानको प्राप्त कर ले तब गृहस्थाचार्य्य उसको चिन्होंका धारण करावे। इस क्रियामें इस भव्यको वेष, वृत्त व समय इन तीन बातोंको देवगुरुके समक्ष यथाविधि पालन करनेकी प्रतिज्ञा लेनी होती है। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीतका धारण कराना सो तो वेष है। जनेऊ लेनेकी जो विधि पहले लिखी जा चुकी है उसी तरह यह क्रिया भी होनी चाहिये। आर्योंके योग्य जो षट्कर्म करके आजीविका करना सो ही इसके व्रत है (आर्यषट्कर्मजीवित्वं व्रतमस्य प्रचक्षते ॥ ९५ ॥) षटकर्म ये हैं—असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या। जैनोपासककी दीक्षाका होना सो ही इसके समय है। इस समय उसका गोत्र, नाम और जाति आदि नियत करे। (दधतो गोत्रजात्यादिनामान्तरमतः परम् ॥ ९६ ॥

नोट-इस लेखसे ऐसा विदित होता है कि अब इसका जैनपने का नाम रक्खा जावे और किस जाति व गोत्रसे इसके गृहस्थीका व्यवहार चले सो ठीक कर दिया जावे। क्योंकि अब यह उपासकोंकी संज्ञामें आ जाता है।

भाषा आदिपुराणमें लिखा है कि "जब यह जिनमार्गी होय तब गोत्र जात्यादि नाम धारण करे।"

इस उपनीति संस्कारके होनेके पश्चात् कुछ दिन तक यह उपासक ब्रह्मचारीके रूपमें रहे और फिर दसवीं व्रतचर्या क्रिया करे।

१०. व्रतचर्य्या क्रिया।

गुरु मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके निकट उपासकाध्ययन भलीप्रकार पढ़नेके लिये रहे। संस्कृतमें तो इस क्रियाके संबंधमें एक यही श्लोक है:-

ततोऽयमुपनीतः सन् व्रतचर्य्यां समाश्रयेत्।
सूत्रमौपासकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोऽर्थतः॥ ५७॥

अर्थ-तब यह उपनीत होकर व्रतचर्य्याका आश्रय करै और ग्रन्थसे उपासकाध्ययन सूत्रको भली प्रकार पढ़े।

भाषामें इस भांति और है:-"जब तक उपासकाध्ययन पाठ करे ब्रह्मचारीके रूपमें रहे। चोटीके गांठ, सिर नंगे, गलेमें जनेऊ, कमरमें त्रिगुणरूप मूंजके डोरेका बंधन तथा पवित्र उज्वल धोती पहरे, पैरोंमें पादत्राण नहीं अर्थात् नंगे पैर रहे और धोती डुपट्टे सिवाय अन्य वस्त्र आभूषण नहीं पहरे।"

नोट-प्रयोजन यह है कि यह नवीन जैनी कुछ दिन खास गुरुकी संगतिमें ब्रह्मचारी होकर रहे और श्रावकाचार भली प्रकार सीख लेवे। जब पढ़ चुके तब गुरुकी आज्ञासे ग्यारहवी क्रियाको धारण करे।

११. व्रतावतरण क्रिया।

जब उपासकाध्ययन पढ़ चुके तब गृहस्थाचार्य्यके निकट ब्रह्मचारीका भेष उतारि आभूषणादि अंगीकार करे, पीछे बारहवीं विवाह क्रिया करे।

१२. विवाह क्रिया।

जिनधर्मके अंगीकार करनेके पहले जो स्त्री परनी थी उसको गृहस्थाचार्य्यके निकट ले जाय, श्राविकाके व्रत ग्रहण करावे। फिर किसी शुभ दिनमें सिद्धयंत्रका पूजन, होम पहिले लिखी विधिके अनुसार करके उस स्त्रीको स्वीकार करे।

इसके पीछे तेरहवीं वर्णलाभ क्रिया है, जिसका प्रयोजन यह है कि वह भव्य अपने समान आजीविका करनेवाले उपासकोंके साथ वर्णपनेके व्यवहारको कर सके अर्थात् कन्या प्रदानादि काम कर सके। यदि किसी अजैनके पहले परणी हुई स्त्री न हो तो उसके लिये यहां ऐसा भाव प्रतीत होता है कि वह भव्य पहले वर्णलाभ क्रिया करके फिर अपना विवाह पंचोंकी सम्मतिके अनुसार नियत किये हुए वर्णमें करे।

१३. वर्णलाभ क्रिया।

इस क्रियाके प्रारंभमें श्रीजिनसेनजी यह श्लोक कहते हैं:—

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात्संम्बन्धं संविधित्सतः।
समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः॥ ६१॥

इसका भावार्थ ऊपर आगया। इस क्रियाके लिये शुभ दिनमें श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करके वह भव्य चार बड़े मुख्य श्रावकोंको बुलाकर कहे "जो मोहि तुम आप समान किया।

तुम संसारके तारक देव ब्राह्मण हो, लोक विषैं पूज्य अर मैं श्रावकके व्रतका धारक भया, अंगीकार करी है अणुव्रत दीक्षा मैं। जो श्रावकका आचार था सो मैं आचरया, देव गुरुकी पूजा की, दान दिये; गुरुके अनुगृह करि अयोनीसंभव जन्म मैंने पाया। चिरकालके अज्ञानरूपी अव्रतको तजकर जे पूर्वे नहीं अंगीकार किये थे सम्यक्तसहित श्रावकके व्रत ते आदरे। व्रतकी शुद्धताके अर्थ मैं जनेऊका धारण किया और उपासकाध्ययन सूत्र मैंने भली भांति पढ़ा। पढ़नेके समय ब्रह्मचारीके रूपमें रहा। बहुरि व्रतावतरणके अंत आभरणादि अंगीकार किये और मेरी पहली अव्रत अवस्थाकी स्त्री ताहि श्राविकाके व्रत दिलाये ताका ग्रहण किया। या भांति किया है श्रावकके व्रतका अंगीकार मैं, सो अब तुम सारिखे साधर्मीनिकी कृपासे मोहि वर्णलाभ क्रिया योग्य है" इस तरह उन पंचोंसे कहे। तब वे श्रावक उत्तरमें कहें, "तुम सत्य हो, तुम्हारे कोई क्रिया जिनधर्मसे विपरीत नाहीं, तिहारे वचन प्रशंसा योग्य हैं, तुम सारिखा और उत्तम द्विज कौन, तुम सारिखे सम्यग्दृष्टीनिके अलाभ विषै मिथ्यादृष्टीनिसों सम्बन्ध होय है" इस तरह कहें। और फिर वे श्रावक इसको वर्णलाभ क्रियासे युक्त करें अर्थात् णमोकारमंत्र पढ़कर आज्ञा करें कि पुत्र पुत्रीनिका सम्बन्ध यासुं किया जाय। उनकी आज्ञातें वर्णलाभ क्रियाको पायकर उनके समान होय। संस्कृतमें श्लोक है।

इत्युक्त्वैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्यते।
विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षताम् ॥७१॥

नोटः- इस क्रियासे यह विदित होता है कि जब अजैनका संस्कार हो जाय तब उसको अपनी जातिमें मिलाकर उसके साथ सम्बन्ध करनेका नियम जैनधर्ममें पाया जाता है। यह भी प्रगट होता है कि वह जैसी आजीविका करता हो उस प्रमाणे वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीन प्रकारके द्विजोंमेंसे एकमें शामिल हो सकता है। इसके पीछे कुलचर्य्या और गृहीचिता आदि कियाएं हैं, जिनसे प्रगट है कि वह अपने कुलके योग्य वृत्ति करे, गृहस्थधर्म पाले फिर क्रमसे गृह त्यागे। क्षुल्लक हो तथा फिर दिगम्बर मुनि हो जावे।

(यदि वह स्पर्श शूद्र है तो जैनी हो क्षुल्लक तक होसक्ता है, परन्तु इसको यज्ञोपवीत संस्कार नहीं है।)

इस प्रकार अजैनको श्रावककी पात्रता कैसे हो और वह कैसे वर्णमें शामिल हो इसका विधान कहा गया है।

अध्याय छठा।

श्रावक-श्रेणीमें प्रवेशार्थ प्रारंभिक श्रेणी।

यज्ञोपवीत आदि संस्कारसे संस्कृत किया हुआ गृहस्थ गृहमें रहता हुआ परम्परा मोक्षरूपी सर्वोत्तम पुरुषार्थकी सिद्धिको अपने अंतरंगसे चाहता हुआ धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थको यथासंभव पालन करता है। चूंकि मोक्षकी सिद्धि साक्षात् मुनिलिङ्गके धारने ही से हो सक्ती है। इसलिये उस अवस्थाके धारनेका अनुरागी होकर पहले उसके नीचेके जो श्रावकके दरजे हैं उनमें प्रवीण होनेका यत्न सोचता है। श्रावकके दरजे क्रमसे ग्यारह हैं, जो इन ग्यारह श्रेणियोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है, वह मुनिधर्म सुगमतासे पाल सकता है। हरएक कार्य्य नियमानुसार किये जाने पर ही यथार्थ फलकी सिद्धि होती है, जैसे किसीको हाईकोर्टकी

सालिसिटरी प्राप्त करनी है तो वह पहले इंग्रेजी भाषाके प्रथम दरजेसे योग्यता प्राप्त करना शुरू करता है और क्रम क्रमसे आगे बढ़ता हुआ एन्ट्रेन्स क्लासको तयकर फिर कालेजकी क्लासोंको पासकर सालिसिटरीमें प्रवेश करता है। इसी प्रकार मुनि–मार्गका इच्छुक पहले श्रावकके दरजे तये करता हैं, तब सुगमतासे मुनि-धर्मको पाल सकता है–राजमार्ग यही है। परन्तु कोई शक्तिशाली साहसी पुरुष यदि साधारण गृहस्थसे एकदम मुनि हो जाय तो उसके लिये निषेध नहीं है, क्योंकि पुराणोंमें प्रायः ऐसे बहुतसे दृष्टान्त मिलते हैं। किसी किसीकी ऐसी धारणा है कि इस कालमें मुनिधर्म पाला नहीं जासक्ता–यह बात ठीक नहीं है। श्रीसर्वज्ञ भगवानकी आज्ञानुसार पंचम कालके अंत तक मुनिधर्म रहेगा तथा सप्तम गुणस्थानके धारी होंगे। इसलिये मुनिलिंगका अभाव नहीं हो सकता किन्तु जो श्रावककी ११ श्रेणियोंको क्रमशः तय करता जायगा उसको मुनिधर्म धारनेमें कुछ भी कठिनता नहीं हो सकती है। इस कालमें मुनिधर्मका निर्वाह कैसे हो, इसका हम दूसरे अध्यायमें वर्णन करेंगे।

इस अध्यायमें हमको यह कहना है कि गृहस्थी श्रावककी श्रेणियोंमें प्रवेश होने योग्य किस तरह होवे।

पहली प्रतिमाका नाम 'दर्शन प्रतिमा' है। इस प्रतिमामें भरती होनेके लिये तय्यारी करनेवाले गृहस्थको पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

पाक्षिकश्रावक–सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्रकी दृढ़ श्रद्धा रखता है तथा सात तत्त्वोंका स्वरूप जानकर उसका श्रद्धान

करता है। (इन सात तत्त्वोंका स्वरूप इस दर्पणके द्वितीय भाग अर्थात् तत्त्वमालामें भले प्रकार बतलाया गया है।) वह पाक्षिक श्रावक व्यवहार सम्यक्तको पालता है, परन्तु सम्यक्तके २५ दोषोंको बिलकुल बचा नहीं सक्ता है। पाक्षिकश्रावकका आचरण श्रीसमन्तभद्राचार्य्यजीके कथनानुसार नीचे लिखे आठ मूल गुणोंको पाले।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः॥६६॥

अर्थात्-मद्य याने शराब, मांस और मधु याने शहद इन तीनोंको त्यागे और स्थूलपने पांच अणुव्रतोंके पालनेका अभ्यास करे, जैसे संकल्प अर्थात् इरादा करके त्रस-हिंसा न करे, स्थूल असत्य न बोले, स्थूल चोरी न करे, स्थूल अब्रह्म त्यागे अर्थात् पर स्त्री व वेश्याका सेवन न करे और स्थूलपने तृष्णाको घटावे।

स्थूलका अर्थ यह समझना चाहिये कि जिस कार्य्यमें राजा दंड देवे और पंच भंडे (दंड देवे), उस कार्य्यको न करे। पाक्षिक-श्रावक इन आठ मूलगुणोंमें अतीचार नहीं बचा सकता है, मूल२ धारता है। श्रीजिनसेनाचार्य्यजीने आठ मूलगुण इस भांति कहे हैं।

हिंसाऽसत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च वादरभेदात्।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः

अर्थात् स्थूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, जूआ, मांस और मदिरा इन आठको छोड़े।

सागारधर्मामृतमें पंडित आशाधरजीने आठ मूलगुण किसी अन्य आचार्य्यके प्रमाणसे इस भांति कहे हैं:—

मद्यपलमधुनिशासनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुती।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः॥

अर्थात् शराब, मांस, शहद, रात्रिभोजन, पांच उदम्बरफल (याने बड़फल, पीपलफल, पाकरफल, गूलर और अंजीर) इनको त्यागे; पंच परमेष्ठीकी भक्ति करे, जीवदया पाले और जल छान-कर वर्ते।

अन्य कई ग्रन्थकर्ताओंने पाक्षिकके लिये कहा है कि सात व्यसन त्यागे और ८ मूलगुण धारे। व्यसन नाम शौक करनेका है। इन सात बातोंका शौक छोडे-१. जुआ (बदके खेलना), २ मांस खाना, ३ शराब पीना, ४ वेश्यासेवन, ५ शिकार करना, ६ चोरी करना और ७ परस्त्रीसेवन करना। जिस किसीको इनके करनेका शौक होता है वह इनसे रुक नहीं सकता है। इन सातोंका शौक छोड़े तथा ८ मूलगुणोंको धारे। अर्थात् मदिरा, मांस और मधु तथा ५ उदम्बरफल इनको नियम रूपसे कभी न खावे।

ऊपर लिखे हुएका सारांश यह है कि पाक्षिकश्रावकको नीचे लिखे अनुसार आचरण करनेका अभ्यास रखना चाहिये।

१. मांसकी डलीको हर्गिज न खावे, न दवाईमें लेवे; क्योंकि मांस जीव-वधसे प्राप्त होता है तथा मरे हुए जीवके मांसमें भी हर वक्त त्रसजीव होते हैं और मरते हैं।

२. शराबको हरगिज न पीवे, न दवाइके वास्ते लेवे; क्योंकि इसके बननेमें अनगिनते त्रसजीव मरते हैं।

३. मधु याने मधुमक्खियोंसे इकट्ठा किया हुआ शहद न खावे; क्योंकि उसके लिये मधुमक्खियोंको कष्ट दिया जाता है तथा उनके प्राणघात किये जाते हैं और उसमें उनके मांसका सत भी मिल जाता है।

४. पांच उदम्बरफल या ऐसे अन्य फल जिनमें त्रस जीव चलते, उड़ते हों हर्गिज न खावे।

५. बद करके जुआ न खेले, क्योंकि इसकी हार और जीत दोनों मनुष्योंको नीच मार्गी बनाती है।

६. चोरी डाकाजनी, लूट न करे, जिससे राज्यमें दंडित हो।

७. शिकार न खेले, क्योंकि केवल अपने मजेके वास्ते पशुओंको कष्ट देना उचित नहीं। क्षत्रियोंका भी शिकार खेलना कर्तव्य नहीं है। वे धनुष-विद्याका अभ्यास वृक्ष आदिकोंपर व अचित्त द्रव्योंपर करते थे, हिरण आदि पशुओंपर नहीं।

८. वेश्याका सेवन न करे; क्योंकि वेश्या-धर्म, धन, बल, कुटुम्ब-प्रेमको लूटनेवाली और रोगी बनाकर जीवनको निर्फल करानेवाली है।

९. परस्त्रीका सेवन न करे; क्योंकि पर-स्त्री दूसरेकी स्त्री है, उसपर इसका कोई हक नहीं। झूठनको खाना नीच अधम पुरुषोंका काम है। क्या कोई किसीकी झूठनको खाता है?

पाक्षिकश्रावक इन ऊपर लिखी बातोंके अतीचारोंको नहीं बचा सक्ता है तथापि अतीचारोंको चलाकर व्यर्थ करता भी नहीं है। जीवदयाके पालनेके अभिप्रायसे तथा रोगादिसे बचनेकी इच्छासे तथा अन्यायसे बचनेके लिये नीचे लिखा आचरण भी पालता है:—

१—रात्रिको रसोई नहीं जीमता है।

२—बिना छना पानी, दूध, घी व कोई पतली चीज नहीं ग्रहण करता है।

इन दोनोंकि विषयमें पंडित आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें यह श्लोक कहा है:—

रागजीववधापायभूयस्त्वात् तद्वदुत्सृजेत् ।
रात्रिभुक्तं तथा युंज्यान्न पानीयमगालितम् ।१४॥

टीकामें 'रात्रिभुक्तं'का अर्थ—रात्रौ अन्नप्राशनं याने रात्रिको अन्न खाना ऐसा किया है। तथापि फलाहार आदि खाना भी नहीं चाहिये, क्योंकि दोनोंमें समानता है।

३—अन्यायसे विश्वासघात करके द्रव्य नहीं पैदा करता अर्थात् झूठ बोलकर दूसरेको नहीं ठगता है।

४—षट्कर्मका अभ्यास करता है जैसे देवपूजा, गुरुकी भक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

५—जीवदया पालनेमें उत्साही रहता है। इरादा करके किसी त्रसजीवके प्राण नहीं लेता है। जैसे खटमलोंको मारना आदि ऐसी हिंसा नहीं करता है।

६—अपने आधीन स्त्री पुत्रोंको विद्याभ्यास कराता है।

७—संघमें वात्सल्यके अर्थ जैनसंघको जिमाता, तीर्थयात्रा करता, प्रभावनार्थ मंदिर धर्मशाला पाठशाला बनवाता है।

८—अपने २ वर्णके अनुसार ६ प्रकारकी आजीविका करता है।

क्षत्रीके लिये असिकर्म याने देश-रक्षार्थ शस्त्रकर्म, वैश्यके लिये मसि याने हिसाबादि लिखना, कृषि याने खेती, व्यापार याने एक देशकी चीज दूसरेमें ले जाकर वेचना। शूद्रके लिये शिल्प याने कारीगरीकी मिहनत तथा विद्याकर्म याने गाना बजाना आदि। ब्राह्मणके लिये आजीविका नहीं, जो तीन वर्णवाले सन्मानसे देवें उसपर बसर करता है।

पाक्षिक श्रावककी दिनचर्य्या।

प्रातःकाल सूर्य्योदयके पहले उठे, शय्यापर बैठे हुए णमोकारमंत्रका स्मरण करे तथा विचारे कि मैं वास्तवमें औदारिक, तैजस, कार्माण-इन तीन शरीरोंके भीतर बंद-स्वभावसे परम शुद्धताका धारी चैतन्यात्मा हूं, मेरे जन्म मरणका दुःख कब दूर होवे। आज दिनमें मैं श्रीजिनेद्रदेवकी कृपासे अन्यायसे बचूं और धर्ममें प्रवर्तूं-ऐसा विचार कर दाहना पग पहले रखकर उठे। यदि रात्रिको स्त्रीसंसर्गसे मलीन नहीं हुआ है और दीर्घबाधा (पाखाने) की इच्छा नहीं है तो लघुशंका (पेशाव) कर हाथ पैर धो अंगोछेसे बदन पोंछ दूसरी धोती पहन एकान्त स्थानमें जाकर बैठे और पंचपरमेष्ठीके मंत्रकी जाप देवे तथा बारहभावना आदि वैराग्यके पाठ व स्तोत्र पढ़े। कमसे कम १५ व २० मिनट तो अवश्य ही यह धर्म-ध्यान करे। और २४ घटेके लिये कुछ संयम धारण करले याने आज इतनी दफे भोजन तथा पान करूंगा, इतनी तरकारी खाऊंगा, इतनी सवारीपर चढूंगा, कामसेवन करूंगा व नहीं, गाना बजाना सुनूंगा व नहीं,

आज इतनी दूर जाऊंगा। आदि बातोंका नियम अपने मनको रोकनेके लिये जिसमें अपने परिणाम निराकुल रहें उस प्रमाणे करे। यदि विस्तरसे उठते वक्त दीर्घशंकाकी बाधा हो व स्त्री-संसर्गसे अशुद्ध हो तो स्नान करके जाप करे। फिर बहिर्भूमिमें पाखानेके लिये जावे। गांवके बाहर मैदानमें दीर्घशंका करनेसे एक तो तबियत बहुत साफ होती है, दूसरे घरमें जो मलके ऊपर मल पड़के जीवोंकी अधिक उत्पत्ति होती है वह न होवे। यदि गांवके बाहर जगह बहुत दूर हो तो ऐसा किया जावे कि पाखानेके लिए एक किनारे कई टट्टियां हों, जिनमें अलग २ पक्के कूंडे व टीनके कूंडे रहें, उनमें एक एकका ही मल पड़े अथवा जहां जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल मिले वैसा बर्ता जावे। दीर्घशंका करके छने पानीसे स्नान करे। स्नान जहां तक संभव हो थोड़े जलसे करे, क्योंकि स्नान केवल शरीरके ऊपरसे मैले परमाणुओंको हटानेके लिये किया जाता है। शरीरको गाढ़े अंगोछेसे अच्छी तरह पोंछे। यदि नदी व जलाशयमें स्नान करना चाहे तो केवल स्नान मात्रमें उसके जलको व्यवहार कर सकता है। जैसा कि यशस्तिलकचम्पूमें कहा है :-

वातातपादिसंस्पृष्टे भूरितोये जलाशये।
अवगाह्याचरेत्स्नानमतोऽन्यद्गालितं भजेत्॥

अर्थात्-हवा और धूपसे छुए हुए तथा बहुत पानीसे भरे हुए तालावमें डुबकी लगाकर स्नान कर सकता है, परन्तु इसके सिवाय हर मौकेपर पानीको छान करके काममें लेवे। यद्यपि यहां

ऐसी आज्ञा है; परन्तु अन्य स्थानमें यह भी कथन है कि इस प्रकार डुबकी लगाकर नहानेकी रस्मको जारी नहीं करनां चाहिये, नदी किनारे लोटे आदिसे पानीले नाहना अच्छा है, कम हिंसाका कारण है।

पाक्षिकश्रावकको नित्य देवपूजा भी करनी चाहिये। यदि अपने घरमें चैत्यालय हो तब तो स्नान करके शुद्ध धोए वस्त्र याने धोती दुपट्टा पहन श्रीजिनेन्द्रभगवानका प्रक्षाल, पूजन भावसहित करे, नहीं तो अपने नगरके मंदिरजीमें मंदिरके वास्ते अलग रक्खे हुए कपड़े पहन नंगे पैर अथवा कपड़ेका जूता पहनकर जावे। मंदिरजीके लिये कपड़े अलग ही रखने चाहिये। ऊन व चमड़ेके वस्त्र व हड्डीके संसर्गके वस्त्र व हड्डीके बटन आदि मंदिरजीमें कभी न लेजावे। यदि मंदिरजीमें अष्ट द्रव्यसे पूजन करनी हो तो घरके तय्यार किये हुए आठ द्रव्य ले जावे और मंदिरजीमें थोड़े प्राशुक जलसे स्नान कर के पूजाके वस्त्र पहन प्राशुक जलसे सामग्री तय्यार करे और प्रक्षाल पूजन करे। यदि विशेष कारणवश अष्ट द्रव्यसे पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो कोई भी एक द्रव्य याने अक्षत या फल लेकर श्रीमंदिरजीमें जावे। रास्तेमें दूसरा कोई विचार न करे, भगवत्की भक्ति करूं यही भावना मनमें रक्खे।

दर्शनविधि।

श्रीजिनमंदिरजीको दूरसे देखते ही तीन आवर्त करके दोनों हाथ जोड मस्तकको लगाकर नमस्कार करे।

आवर्त दोनों हाथ जोड़ अपने मुखके सामने बाईं तरफसे दाहनी तरफको घुमाकर लानेको कहते हैं। तीन आवर्तका अर्थ मन, वचन, कायसे नमन करना है। फिर मंदिरके द्वारपर आते ही कपड़ेका जूता निकले। द्वारपर जो पग धोनेके लिये प्राशुक जल रक्खा हो उससे पग धोवे। बहुत पानी न मुंधावे। फिर झुकता हुआ भीतर जावे। भीतर जाते २ ऐसा कहे, "जय जय जय नःसहि नःसहि नःसहि" इसका मतलब यह मालूम होता है कि यदि कोई देव आदि दर्शन करता हो तो वह आगेसे हटकर किनारे हो जावे; यह बात जैसी सुनी है वैसी लिखी गई है। इसके पश्चात् श्रीजिनेन्द्रकी बिम्बके सामने जाकर आंखभरके प्रभूको देख ले। देखनेका प्रयोजन यह है कि श्रीजिनेन्द्रकी मुद्रा श्रीअरहंतके समान वीतरागभावको प्रगट करनेवाली है कि नहीं, कोई श्वेताम्बरादिका चिन्ह तो नहीं है? क्योंकि स्थापना तदाकार तिस ही वीतरागरूपकी दिखलानेवाली होनी चाहिये। फिर जो द्रव्य हाथमें लाया है उसको उसका श्लोक व मंत्र बोलकर चढ़ावे। जैसे यदि अक्षत लाया है तो यह कहकर चढ़ावे।

क्षण क्षण जनम जो धारते, भया बहुत अपमान।
उज्जल अक्षत तुम चरण, पूज लहों शिव-थान॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्र गुरुभ्यो नमः अक्षयगुणप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। अर्थात् आत्माके अविनाशी गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं अक्षतोंको चढ़ाता हूं। द्रव्य चढ़ानेके बाद दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त कर नमस्कार करे। जहां वेदीके चारों

ओर परिक्रमा हो वहां हाथ जोड़े हुए तीन प्रदक्षिणा देवे। प्रदक्षिणा देते समय हर दिशामें तीन आवर्तके साथ हाथोंको मस्तकपर लगाकर नमस्कार करता जावे। ऐसा करनेमें १२ आवर्त और ४ नमस्कार होवेंगे। प्रदक्षिणा देता हुआ णमोकारमंत्र पढ़े भगवानके स्वरूपको विचारे। फिर भगवानके सन्मुख आके संस्कृत व भाषामें कोई दर्शन पढ़े। तदनन्तर कायोत्सर्ग करे अर्थात् खड़ा हो तीन व नौ वार णमोकारके साथ श्रीजिनेन्द्रके ध्यानमई रूपका ध्यान करे; फिर दंडवत करे। बाद गंधोदक अर्थात् भगवानके चरणोंके प्रक्षालका जल अपने मस्तक और नेत्रोंको लगावे। उस समय यह कहे:—

निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनं।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकं॥

फिर शास्त्र-भंडार-गृहमें जाकर विनयपूर्वक रोजके नियत किये हुए किसी शास्त्रको थिरताके साथ बांचे। यदि सभाका शास्त्र होता हो तो आप स्वाध्याय करके उसको सुने अथवा सभाका शास्त्र सुननेके बाद आप स्वाध्याय करे। बाद घरमें आके श्रीमंदिरजीके कपड़े अलग रख देवे, दूसरे कपड़े पहने। फिर जलपानकी इच्छा हो तो जलपान करे, चिट्ठीपत्री आदिका काम देखे। १० बजेके पहले पहले घरमें रसोई तय्यार कराके पहले किसी पात्रको या किसी भूखेको जिमावे अथवा एक दो रोटी किसी गरीबको व पशुको देनेके लिये अलग निकालके भोजन करे। दानके लिये यह भी प्रथा अच्छी है जो प्रत्येक जीमने वाला एक

ग्रास अवश्य अलग करदे फिर जीमें। यदि घरमें छोटे बच्चे व बुड्ढे व बुड्ढी हों तो उनको अपने साथ व अपनेसे पहले जिमावे; क्योंकि उनको भूखकी बाधा शीघ्र सताती है। यदि अभाग्यवश अपने गांवमें श्रीजिनमन्दिरजी न हो व इतनी दूर हो कि आप जा नहीं सकता हो तो अपने घरमें स्नान करके किसी एकान्त स्थानपर जाकर आसन बिछाकर बैठे और किसी मंदिरजी व प्रतिमाका परोक्ष विचारकर हाथ जोड़ तीन आवर्त सहित नमस्कार करे और वहां उसी तरह विचार करके कोई द्रव्य चढ़ावे और उसी तरह स्तुति पढ़के दंडवत करे, जिस तरह कि मंदिरजीमें किया जाता है। फिर स्वाध्याय करके उपर्युक्त प्रकार जलपानादि करे। १० बजेसे ४ बजे तकका समय न्यायपूर्वक आजिविकाके लिये बितावे। ४ बजे लौटकर शुचि हो भोजन करे। संध्याके पहले २ सुंदर ताजी हवामें टहल आवे। संध्याको श्रीजिन मंदिरजीमें जा एकान्तमें थोड़ी देरके लिये तप करे याने जाप जपे, पाठ पढे व विचार करे। फिर स्वाध्याय करे। यह काम घरपर भी कर सकता है। स्वाध्याय सर्व कुटुम्बियोंको सुनावे। फिर अपने पुत्र पुत्रियोंका विद्याभ्यास देखे। पश्चात् उपयोगी पुस्तकोंको देखता व वार्तालाप करता १० बजे पहले २ शयन कर जावे ६ व ७ घंटेके करीब सोकर सूर्योदयके पहले २ उठे। यदि आजीविकाका कार्य्य अधिक हो तो उसे संध्याके पीछे भी कर सक्ता है, परन्तु १० बजेसे अधिक जागना उचित नहीं है। पाक्षिक श्रावकको उचित है कि हरएक कार्य्य ठीक समयपर करे। ठीक समयपर आहार

करे, ठीक समयपर विहार करे और ठीक समयपर निद्रा लेवे। समयकी पाबन्दीका अवश्य खयाल रखे।

पाक्षिक श्रावकके लिये लौकिक उन्नतिका यत्न।

पाक्षिक श्रावक नीतिका उल्लंघन न करता हुआ अपने २ वर्णके अनुसार अपने २ व्यापारमें कुशलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। राजा हो तो राज्य–कार्य्य व प्रजाकी रक्षामें, वैश्य हो तो अधिक धन धान्यके लाभमें व परदेशोंमें जाकर विद्याभ्यास करने आदिमें। समुद्रोंकी यात्रा करनेकी मनाही जैन शास्त्रोंमें ही कही नहीं है। अनेक राजपुत्र व सेठपुत्र व्यापारार्थ जहाजोंपर चढ़कर परदेश जाया करते थे, किन्तु यहांतक भी प्रचार था कि जब राजपुत्र व सेठपुत्र अपने विद्याभ्यासमें प्रवीण हो जाता था तो उसका विवाह करनेके पहले उसके मातापिता इस बातको देखते थे कि हमारा पुत्र परदेशमें जाकर धनकी उन्नति करके आता है कि अवनति, इसके परीक्षार्थ अपने देशका माल जहाजोंपर विक्रयार्थ दिया जाता था। चतुर सन्तान बड़े २ द्वीपोंमें जाकर उस मालको बेंचते थे और अपने देशमें बिक्री होनेके लायक माल खरीद कर लाते थे। शास्त्रकारोंका यह मत है कि अपने न्याययुक्त कार्य्यके लिये गृहस्थी हर जगह जा सकता है। केवल उसको यह अवश्य देखना चाहिये कि मेरा श्रद्धान न बिगड़े और मेरे व्रतोंका खंडन नहो, जैसा कि कहा हैः–

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधि. ।
यत्र सम्यक्तहानिर्न यत्र न व्रतदूषणं ॥

अर्थात् जैनियोंको वे सर्व ही लौकिक व्यवहार मान्य हैं जहां व जिनमें सम्यक्तको हानि न हो और जहां व्रतको दूषण न हो, समुद्र यात्रामें भी खानपानकी शुद्धताका विचार रक्खे निरर्गल न हो जावे।

पाक्षिकश्रावक नीतिके ऊपर ध्यान देता हुआ चलता है तथा धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धि इस प्रकारसे करता है कि जिसमें एकके बदले दूसरेकी हानि न हो। द्रव्यका उपार्जन करके यह चाहता है कि इसको न्याय सम्बन्धी भोगोंमें लगाऊं तथा धर्म कार्योंमें खर्च करूं यद्यपि यह पाक्षिक बहुधन्धी होता है तथापि धर्मकी पूरी २ पक्ष रखता है और यही चाहता है कि मैं धार्मिक उन्नतिमें तरक्की करता चला जाऊं। यह अन्यायसे बहुत डरता है और जीवदयाकी पक्ष रखकर यथासंभव दूसरोंको कष्ट नहीं होने देता है।

अध्याय सातवां।

दर्शनप्रतिमा–श्रावककी प्रथम श्रेणी।

पाक्षिकश्रावक अपने श्रद्धानमें दोषोंको बचानेके अभिप्रायसे और अपने आचरणकी शुद्धताके प्रयोजनसे दर्शनप्रतिमाके नियमोंको पालने लगता है। जब वह इस श्रेणीमें भरती होता है तब अपने श्रद्धानमें नीचे लिखे १५ दोषोंको बचानेकी पूरी २ चेष्टा करता है। यदि कोई दोष हो जावे तो अपनी निन्दा गर्हा करता है तथा उसका दंड लेता है। यह दर्शन प्रतिमाधारी अपने श्रद्धा-

नमें निश्चय सम्यक्तकी भावना रखता है, अपने आत्माको शुद्ध परमात्मा सिद्धके समान निश्चयसे मानता है, मोक्षके अतीन्द्रिय सुखको ही सुख मानता है और इन्द्रिय सुखोंको क्षणिक आकुलताकारी तथा दुःखका बीज जानता है। दार्शनिकश्रावककी अवस्था 'श्रीसमन्तभद्राचार्य्यजी'के कथनानुसार इस भांति है:-

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पंचपरमगुरुशरणः दार्शनिकः तत्त्वपथगृह्यः॥(र० श्रा०)

अर्थात्-जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, जो संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्यवान है, जो पंचपरमगुरुकी शरणमें रहता है तथा जो धार्मिक तात्विक मार्गको ग्रहण किये है वह दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक है।

तथा श्रीअमितिगतिजी इस भांति लिखते हैं:-

शङ्कादिदोषनिर्मुक्तं संवेगादिगुणान्वितम् ।
यो धत्ते दर्शनं सोऽत्र दर्शनी कथितो जिनैः॥८३३॥

(सु० र० संदोह ।)

अर्थ-जो शंका आदि दोषोंसे रहित हो तथा संवेगादि गुणोंसे विभूषित हो सम्यग्दर्शनको धारण करता है वह दर्शनिक श्रावक है-ऐसा जिनेद्रभगवानने कहा है।

श्रीस्वामिकीर्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीका श्रीशुभचंद कृतमें इस भांति वर्णन है कि, "सम्यग्दृष्टी श्रीवीतराग अरहंत देवके सिवाय अन्य किसी रागी, द्वेषी देवकी आराधना नहीं करता हैं, क्षेत्रपालादिको व यक्षादिको व किसी ज्योतिषीदेवको लक्ष्मी आदि

देखनेमें सहाई व सुख दुख देनेमें उपकारी, श्रद्धान नहीं करता है।"

गाथा ३१९ में कथन है:—

कोऽपि एवं वदंति हरि हरादयोः देवाः।
लक्ष्मीं ददाति उपकारं च कुर्वंते, तदपि असत्॥

अर्थ—कोई ऐसा कहे कि हरहरादिकदेव लक्ष्मी देते हैं व उपकार करते हैं सो असत यानें ठीक नहीं है।

" हरिहरादयः " की व्याख्या इस प्रकार है:—

हरिहरहिरण्यगर्भगजसुंडमूषकवाहनगणपत्या-दिलक्षणो देवः व्यंतरचंडिकाशाक्तिकालीशक्तियक्ष-क्षेत्रपालादिको वा ज्योतिष्कसूर्यचंद्रग्रहादिको वा........

स्वामिकार्तिकेय ३२६ सूत्रकी व्याख्याकेअनुसार सम्यक्तीके ४८ मूलगुण और १५ उत्तरगुण हैं।

मूलगुण—४८.—२५ मलदोष रहितपना, ८ संवेगादि लक्षण, ५ अतीचार रहितपणा, ७ भय रहितपना और ३ शल्य रहितपना।

उत्तरगुण—१५.—५ उदम्बरत्याग, ३ मकारत्याग और ७ व्यसनत्याग।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाके अनुसार दर्शनप्रतिमाके पहले पाक्षिकश्रावकका दरजा नहीं कह कर सम्यग्दर्शन शुद्ध ऐसा दरजा रक्खा है और उसका यह लक्षण है कि ४८ मूलगुण, १५ उत्तर गुणसहित सम्यक्त पाले।

पाक्षिकश्रावकमें और सम्यग्दर्शनशुद्धमें इतना ही फ़र्क है कि पाक्षिकश्रावक सम्यक्तके दोषोंको सर्वथा नहीं बचा सक्ता है और सम्यक्दर्शनशुद्धवाला उन्हें भी सर्वथा बचाता है। श्रीसमन्तभद्रजीके अनुसार हमको यही निश्चय रखना चाहिये कि दर्शनप्रतिमाधारी ही शुद्ध सम्यक्दृष्टी होता है। यह १५ उत्तरगुणोंके अतीचारोंको भी बचाता है।

२५ दोषोंके नाम और स्वरूपः—

१. शंका—जैनधर्म व तत्वादिमें शंका करना। यदि कोई बात समझमें न आवे तो सम्यक्ती उसको सत्यरूपमें ही निश्चय रखता है, परन्तु निर्णयकरनेका प्रयत्न करता है।

२. कांक्षा—संसारिक सुखोंकी रुचि करना।

३. विचिकित्सा—धर्मात्मा पुरुषोंको रोगादिसहित व दीन अवस्थामें देखकर घृणा करनी अथवा मैले पुद्गलोंको देखकर उनका सच्चा स्वरूप न विचार ग्लानि करनी।

४. मूढ़दृष्टि—मूढ़ताईसे किसी चमत्कारको देख किसी कुदेव, कुगुरु व कुधर्मकी श्रद्धा कर लेना।

५. अनुपगूहन—धर्मात्माके दोषोंको इस इच्छासे प्रकाश करना कि उसकी निन्दा हो। परके दोषोंको छुड़ानेका उपाय करना सो दोष नहीं है। अथवा अपने आत्माकी शक्तिको मार्दव आदि भावोंके लिये नहीं बढ़ाना प्रमाद रूप रखना।

६. अस्थितिकरण—अपने या दूसरेको धर्म–मार्गमें शिथिल होते हुए स्थिर न करना।

७. अवात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रीति भाव न रखना।

८. अप्रभावना—धर्मकी प्रभावना नहीं चाहना व धर्म-वृद्धि करनेका यत्न न करना।

नोट—इन आठ दोषोंके उल्टे आठ गुण सम्यक्तरूप अंगीके आठ अंग कहलाते हैं।

९. जातिका मद—अपने मामा नानाके बड़प्पनका घमंड करना।

१०. कुलका मद—अपने पिता दादा आदिके बड़प्पनका अभिमान करना।

११. लाभका मद—अपनेको धन ऐश्वर्यका अधिक लाभ देखकर मद करना।

१२. रूपका मद—अपने सुन्दर शरीरको देखकर घमंड करना।

१३. बलका मद—अपने शरीरमें ताक़ात देखकर उसका अभिमान करना।

१४. विद्याका मद—अपनेमें विद्वत्ताकी बड़ाई जानकर घमंड करना।

१५. अधिकारका मद-अपनी आज्ञा बहुत चलती है ऐसा जान मद करना।

१६. तपका मद—आप तप, व्रत, उपवास विशेष कर सक्ता है—इसका घमंड करना।

नोट—ये आठ मद कहलाते हैं। सम्यक्ती आत्माके सच्चे स्वरूपका श्रद्धान करता हुआ इन संसारिक बातोंको तुच्छ समझता है।

१७. देव मूढ़ता—वीतरागदेव सिवाय लोगोंकी देखादेखी अन्य रागी, द्वेषी देवोंकी मानता करनी।

१८. गुरु मूढ़ता—लोगोंकी देखादेखी परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ गुरुके सिवाय अन्य परिग्रहधारी साधुओंको धर्म गुरु मान विनय करनी।

१९. लोक मूढ़ता—लोगोंकी देखादेखी जो धर्मकी क्रिया नहीं है उनको धर्मक्रिया मान प्रवर्तने लगना, जैसे सूर्यग्रहणमें स्नान, संक्रान्तिमें दान, कार्तिक पूनोको गंगास्नान, कागज, कलम, दावात, मिट्टी, शस्त्र, जुता आदिकी पूजा।

नोट—ये तीन मूढ़ता है।

२०. कुदेव अनायतन संगति—जहां धर्म प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे रागी, द्वेषी देवोंकी संगती करनी।

२१. कुगुरु अयानत संगति—जिसमें धर्म प्राप्ति नहीं है, ऐसे कुगुरुओंकी संगति करनी।

२१. कुधर्म अनायतन संगती—धर्म जिसमें नहीं पाइये ऐसे ऐसे कुधर्म व कुधर्म—प्रतिपादित शास्त्रोंकी संगति करनी।

२३. कुदेव पूजक अनायतन संगति—कुदेवके पूजनेवालोंमें धर्मका स्थान नहीं, ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२४. कुगुरु पूजक अनायतन संगति—कुगुरुके पूजनेवालोंमें धर्मका स्थान नहीं है, ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२५. कुधर्म पूजक अनायतन संगति-कुधर्मके पूजनेवाले जिनमें धर्म नहीं हैं ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

संगतिका अर्थ यह है कि मित्रके समान रात्रि दिन व्यवहार करते हुए सम्मति रखना। इसका प्रयोजन यह है कि जिसमें श्रद्धान विचलित हो जावे ऐसी संगति न करनी; व्यापारादि

व्यवहारमें व्यवहार सम्बन्धी कार्य्यादि रखनेमें कोई हर्ज नहीं है। जिस जीवको अभ्यास करना होता है उसके सम्हालके लिये यह उपाय है। जो कोई अपने तत्वज्ञानमें परिपक्क होकर अन्य धर्मों-की पुस्तकोंको उनके तत्त्वोंके ज्ञान करनेके हेतु देखता है उसके लिये यह बात हर्जकी नहीं है।

संवेगादि आठ गुण-इनको सम्यग्दृष्टीके बाह्य लक्षण कहते हैं। इन गुणोंके द्वारा सम्यक्तीकी पहिचान होती है।

संवेग--धर्मके कार्य्योंमें परम रुचि रखना।

निर्वेद-संसार शरीर भोगोंमे वैराग्यका होना।

उपशम-क्रोधादि कषायोंकी मदता रखनी अर्थात् शांति भाव रूप रहना।

निन्दा-अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा दूसरेसे करते रहना।

गर्हा-अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा अपने मनमें करते रहना।

अनुकम्पा-जीवदयाके भावको प्रगट करना।

आस्तिक्य-नास्तिकपनेका भाव नहीं करना, धर्ममें पक्की श्रद्धा रखनी।

वात्सल्य-धर्मात्मा जीवोंमें प्रीति प्रगट करना।

अब ५ अतीचार कहते हैं:—

शंका-तत्त्वादिकोंमें शंका करनी।

कांक्षा-धर्म सेवामे भोगादिकी इच्छा करनी।

विचिकित्सा-धर्मात्माओंसे ग्लानि भाव रखना।

अन्यदृष्टि प्रशंसा—मनमें मिथ्यादर्शन व मिथ्यादृष्टिको अच्छा समझना।

अन्यदृष्टि संस्तव—वचनसे मिथ्यादर्शन व मिथ्यादृष्टिकी तारीफ करना।

ये पांच अतीचार २५ मलोंमें गर्भित हैं। श्रीदशाध्याय सूत्रजीमें, ५ अतीचारको ही सम्यक्तके दोषोंमें गिनाया है।

७ भय इस प्रकार हैं:—

इस लोक भय—सम्यग्दृष्टि लौकिक भय न रखकर न्याय पूर्वक योग्य आचरण व व्यवहार करता है।

परलोक भय—सम्यक्तीको यह भय नहीं होता कि मैं नरक आदिमें चला जाऊंगा तो क्या होगा? वह निर्भय रहकर अपना कर्तव्य साहसके साथ पालन करता है।

वेदनाभय—सम्यक्ती रोगकी तकलीफका भय नहीं करता, किन्तु रोगोंसे बचनेका यत्न करता है। यदि रोग होवेगा तो योग्य उपचार करता है।

मरणभय—सम्यक्ती मरनेसे नहीं डरता, वह मरणको केवल मकान बदलना समझता है; परन्तु अपनी आत्माको बंधनोंसे रक्षित रखनेका उद्यम करता है।

अनरक्षाभय—मेरा कोई रक्षक नहीं, मैं अकेला हूं—ऐसा जानकर भय नहीं करता है, किन्तु अपने पुरुषार्थमें दृढ़ रहता है।

अगुप्तभय—मेरा माल असबाब कहीं चोरी न चला जाय क्या करूं, ऐसा समझकर सम्यक्ती कम्पित नहीं होता है; किन्तु माल असबाबके सुरक्षित रहनेका योग्य यत्न करता है।

अकस्मात् भय—कहीं अकस्मात् न हो जाय, मकान न गिर पड़े आदि कारणोंकी शंका करके भयभीत नहीं होता है; किन्तु अपनी व अपने परिवारादिकी रक्षा सदा बनी रहे ऐसा उचित यत्न करता है।

३ शल्य ये हैं:—

मायाशल्य—मायाचारका कांटा दिलमें चुभा करना अर्थात् शुद्ध श्रद्धानमें मायाचारके कुछ विकल्प उठते रहना।

मिथ्याशल्य—शुद्ध श्रद्धानमें मिथ्याशल्यका कांटा चुभा करना।

निदान—आगामी भोगोंकी इच्छाका कांटा चुभा करना।

नोट—जो गृहस्थी सात तत्त्वोंको भलीप्रकार श्रद्धान करके आत्माके स्वरूपको पहचानकर भेदविज्ञानरूपी मंत्रका स्मरण करता है तथा केवल निजस्वरूपकी शुद्धताको चाहता हुआ मोक्षकी इच्छा करके गृहस्थ-धर्मको पालता है तथा सांसारिक सुखोंको क्षणभगुर समझता है। परंतु कषायकी बर्जोरीसे छोड़ नहीं सकता है। उस विवेकी मनुष्यकी बुद्धि स्वय इस तरहकी हो जाती है कि उसके ऊपर लिखे हुए कोई दोष नहीं लगते। जो सच्चा श्रद्धालु होता है वह शंका कांक्षा आदि और मद न करके अपने धर्मकी वृद्धि करता हुआ जैन धर्मकी उन्नति चाहता है और अपने आप धर्मात्माओंकी सगतिको ही पसन्द करता है।

सम्यक्तीका ज्ञान स्वयं सम्यग्ज्ञानमय हो जाता है तथा आचरण भी मिथ्यारूप नहीं होता। उसकी बुद्धिकी आपसे आप ऐसी सफाई होती है कि उसके आचरणमें ऊपर लिखे हुए दोष नहीं लगते। दर्शनप्रतिमावाले श्रावकको उचित है कि अपने विश्वासको दर्पणके समान साफ और सुथरा रक्खे तथा उसमें मैल अथवा अन्य कोई दोष न लगने देवे। शुद्धनयसे अपने

आत्माको शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायक, वीतराग, आनन्दमई, असंख्यात प्रदेशवान, अपने परिणामका आप कर्त्ता और भोक्ता, निरंजन; पुरुषाकार अनुभव करे। इस अनुभवके स्वाद लेनेका सदा उत्साही रहे। आत्माकी चर्चामें परमसुख माने। तत्त्वोंकी चरचामें परम हर्ष माने। अनुभव जगानेवाली श्रीजिनेन्द्रकी पूजामें बड़ी ही रुचि रक्खे। दूसरोंको उपकारके योग्य समझकर अपनी शक्तिके अनुसार उनका भला करनेका यत्न करे तथा आपत्ति पड़नेपर भी किसी शासन देवताको न पूजे जैसा कि आशाधरजीने कहा है:—

आपदाकुलितोऽपि दर्शनिकस्तन्निवृत्त्यर्थं शासन-देवतान् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तु भजत्यपि।

अर्थात् आपदासे आकुलित होनेपर भी दर्शनिक उससे छूटनेके लिये शासन देवताओंको कभी न भजे पाक्षिकश्रावक कभी भज भी ले। ऐसी शुद्ध श्रद्धाका रखनेवाला श्रावक पाक्षिकश्रावकके धर्माचरणोंको तो करता ही है, किन्तु अपने आचरणके दोषोंको भी बचाता है। पाक्षिकश्रावकका खास आचरण पांच उदुम्बरत्याग, मधु त्याग, मांस व्यसन त्याग इस भांति कहा गया था। यह दर्शनिक इन्हीं क्रियाओंमें दोषोंको भी बचाता है। श्रीस्वामिकार्तिकेयकी संस्कृत टीकाके अनुसार दर्शनिकको नीचे लिखी बातें भी छोडनी चाहिये।

१. चर्मके पात्रमें रक्खा हुआ घी, तेल, जल, हींग अथवा ऐसी ही कोई और बहनेवाली चीज जिसके सम्बन्धसे चमड़ेकी दुर्गन्ध वस्तुमें हो जाय, २ मक्खन, ३ कांजीके बड़े आदि ४ आचार (८ पहरके अंदरका खाया जा सक्ता है, उससे आगेका

नहीं।) ५ घुना हुआ अनाज, ६ कंदमूल (जिनमें अनंतकाय जीव होते हैं) और ७ पत्ती शाखा (पत्र शाखासंन)।

श्री आशाधरकृत सागरधर्मामृतके अनुसार पांच उदम्बर, तीन मकार और सात व्यसनके अतीचारोंको नीचे लिखे भांति टालना चाहिये।

१. मांसके अतीचारः—

चर्मके वर्तनमें रक्खा घी, जल, तेल, हींग तथा चमड़ेसे ढका हुआ निमक, चमड़ेकी चालनीसे छाना हुआ आटा व चमड़ेके सूपसे फटका हुआ धान्यादि।

२. मद्यके अतीचारः—

आठ पहरसे बाहरका अचार (संघान) व मुरब्बा व दही छाछ न खावे, फूई लगी चीज व कांजी (सड़ा हुआ मांड) न लेवे तथा मदिरा पीनेवालेके हाथका भोजन पान न करे, न उसके वर्तनोंसे काम लेवे।

३. मधुके अतीचारः—

जिन फूलोंसे त्रसजीव अलग नहीं किये जा सके उन फूलोंको न खावे जैसे गोभी, कचनार तथा शहदको नेत्रांजनादिमें भी न लगावे।

४. पांच उदम्बरके अतीचारः—

अजाना याने उसके गुण दोष हम नहीं जानते ऐसा कोई फल न खावे, विना फोड़े याने भीतर बीचमें देखे विना सुपारी आदि फल न ले और न ऐसे दूसरे फल खावे जिनमें त्रसजीव पैदा हों जैसे जीवसहित बेर, जामन, सेंगफल, वायभडिंग आदि।

५. द्यूतके अतीचारः—

जुआ देखना नहीं, परस्पर दौड़ करके व कराके व मनके विनोदके लिये तास गंजीफा आदि खेलके द्वारा हार जीत मानना नहीं।

६. वेश्याके अतीचारः—

वेश्याओंके गीत, वादित्र, नाच देखे सुने नहीं, उनके स्थानोंमें घूमें नहीं और न वेश्यासक्त पुरुषोंकी संगति करे।

७. चोरीके अतीचारः—

राजदर्बारका जोर दिखाके अपने दाइयादारोंसे अन्याय करके हिस्सा न लेवे (न्यायसे लेनेमें दोष नहीं है) और न अपने भाई बहिनोंका हिस्सा छिपावे, जो कुछ उनका हक हो वह उनको दे देवे।

८. शिकारके अतीचारः—

कपड़े, पुस्तक, कागज आदिपर जो मनुष्य व पशुओंकी तसवीरे हों उनके मस्तक छेदादि न करे, न आटा, पिट्टी सक्कर व मिट्टी आदिके पुतले व पशु बना कर उनका बलिदान व घात करे। दिवालीमें शक्करके खिलौने बनाना, लेना, खाना व खिलाना पाप बंधका कारण है।

९. परस्त्रीके अतीचारः—

कुमारीके साथ रमण न करे, हठसे किसी कन्याको न हरे, अपनी मरजीसे किसी स्त्रीके साथ गंधर्व विवाह न करे।

आशाधरजीकी सम्मतिके अनुसार रात्रि होनेसे दो घड़ी पहले व सबेरे २ घड़ी दिन चढ़े भोजन करे, रात्रिको आम्र,

घी, दूध आदि रसोंका सेवन न करे तथा पानी २ घड़ीके अन्दरका छना पीवे तथा पानी छाननेके बाद उसका विलछन उसी पानीके स्थानमें पहुचा देवे।

नोट-रात्रि भोजन व पानी सम्बन्धी चर्चा अलग अध्यायमें पढ़नी चाहिये।

दर्शनिक श्रावकको क्या २ आचरण पालना चाहिये ?

जो आचरण पाक्षिकश्रावकके लिये वर्णन किया गया है, दर्शनिकश्रावक उस सर्वको पाले तथा सम्यक्तसे आचरणमें ऊपर लिखित दोषोंको बचावे और सात व्यसन, ३ मकार तथा पांच उदम्बरके जो दोष ऊपर कहे हैं उनसे भी बचे। इसके सिवाय उसको नीचे लिखी बातें और भी छोड़ना तथा ग्रहण करना चाहिये।

१. मद्य, मांस, मधु और अचारका व्यापार न करे।

२. मद्य मांसवाले स्त्री पुरुषोंके साथ शयन व भोजन न करे, न उनके वर्तनोंमें खावे।

३. किसी भी प्रकारका नशा न खावे; जैसे गांजा, भांग, तम्बाकू, चुरुट आदि।

४. देह व मनके आताप-हरणके लिये व सत्पुत्रके लाभके लिये मर्यादारूप अपनी स्त्रीके साथ मैथुन सेवन करे।

५. अपनी स्त्री और पुत्रोंको धर्म-मार्गमें दृढ़ करनेका पूरा उद्यम करे।

ज्ञानानंदश्रावकाचारके अनुसार इस प्रतिमावालेको नीचे लिखे २२ अभक्ष्य नहीं खाना चाहिये। इनका बहुतसा वर्णन ऊपर आ गया है।

२२ अभक्ष्यके नाम ।

ओरा, घोरवड़ा, निशिभोजन, बहुबीजा, बैंगन, संधान ।
बड़, पीपल, ऊंबर, कठूम्बर, पाकरफल, जो होय अजान ॥
कंदमूल, माटी, विष, आमिष, मधु, माखन, अरु मदिरापान ।
फल अति तुच्छ, तुषार, चलितरस, जिनमत ये बाईस बखान ॥

ओरा—ओला या बर्फ नहीं खाना चाहिये; क्योंकि अनछना पानी जमाया हुआ बहुत देरका होनेसे भीतर त्रस जीवोंको पैदा करता है ।

घोरबड़ा—कांजी व दहीके बड़े यह भी हानिकारक वस्तु है। दही, उरद, राई, नमक आदिके सम्बन्धसे त्रस जीव पैदा होते हैं।

बहुबीजा—जिन फलोंके अन्दर बीज गूदेसे अलग २ हों, गूदेके अन्दर अपना घर न करें और फलोंके तोड़नेपर अलग २ गिर पड़ें—उन्हें बहुबीजा कहते हैं ।

ऐसा ही कथन दिलारामविलासमें कहा है:—"अरंड काकड़ी घीया तेल, अवर तिजारा द.ना मेल । इत्यादिक बहु बीजा नाम, खाय नहीं श्रावक अभिराम—ऐसा ही किसनसिंहकृत क्रियाकोषमें है:—"बहु बीजा जामें कणघना, कहिये प्रगट तिजारा तना । जिह फल बीजनके घर नाहि, सो फल बहुबीजा कहवाय । ऐसे फल अरंडकाकड़ी, तिजारा आदि हैं । संस्कृतमें प्रमाण नहीं मिला।

तुषार—ओसका पानी नहीं पीना चाहिये ।

चलितरस—जिन वस्तुओंका स्वाद बिगड़ जावे वे सब

चीजें चलितरसमें ली जाती हैं। किस चीजका स्वाद कब विगडता है इस बातकी चरचाका कोई संस्कृत ग्रथ देखनेमें नहीं आया, परन्तु दौलतरामजीकृत क्रियाकोश भाषाके अनुसार वस्तुओंकी मर्यादा इस भांति हैः—

पक्की रसोई—लाडू, घेवर, बाबर, मर्मरी, बुंदी आदि जिसमें जलका अंश कम हो उनकी ८ पहर याने २४ घटेकी मर्यादा है। पुआ; पूरी, भजियां वगैरह जिनमें जलका अंश अधिक हो उनकी मर्यादा ४ पहर याने १२ घंटेकी है याने उसी दिन बनाकर खा लेने चाहिये।

जिस चीजमें पानी न पडा हो, जैसे घी, शक्कर, आटेका मगद व लड्डू-इनकी मर्यादा आटा या किसी भी पिसे हुए चूनके बराबर है। चूनकी मर्यादा शीतऋतुमें ७ दिन, गर्मीमें ५ दिन तथा वर्षामें ३ दिनकी है।

कढ़ी, खिचड़ी, दाल, भात आदिकी मर्यादा दो पहर याने ६ घंटेकी है।

औटे हुए दूधकी मर्यादा ८ पहर याने २४ घंटेकी है। गर्म जल डालकर तयार की हुई छाछकी मर्यादा ४ पहर याने १२ घंटे व कच्चे जलसे करी हुई छाछकी मर्यादा जलके बराबर २ घड़ीकी है। दहीकी मर्यादा औटे हुए दूधमें जामन देनेसे ८ पहरकी है। कच्चे पानीकी मर्यादा २ घड़ी याने ४८ मिनटकी है। लौंग. इलायची, चंदन, राख आदि पानीमें मिलानेसे पानीका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदल जानेसे उस पानीकी मर्यादा २ पहर

याने १ घंटेकी है। मामूली गरम जलकी मर्यादा ४ पहर तथा औंटे हुए जलकी मर्यादा ८ पहरकी है।

नोट–जैनधर्ममें परिणामोंकी उज्वलता ही बहुत जरूरी चीज है। इस दार्शनिक श्रावकके परिणामोंकी उज्वलता पाक्षिकसे अधिक हो जाती है। चरणानुयोगकी अपेक्षासे तो यही कथन है कि यह श्रावक सम्यक्तमें कोई दोष नहीं लगाता है, परन्तु करणानुयोगकी अपेक्षासे विचार किया जाय तो सम्यग्दृष्टी ३ प्रकारके होते हैं:–१. उपशम सम्यक्ती, २. क्षायोपशम सम्यक्ती, ३. क्षायक सम्यग्दृष्टी। इनमें उपशम सम्यग्दृष्टीकी मर्यादा अंतर्मुहूर्तकी है तथा क्षायककी ३३ सागरसे अधिक है, परन्तु क्षयोपशमकी सर्वसे अधिक ६६ सागरकी है।

इस पंचम कालमें यहां क्षायकसम्यक्त तो होता नहीं, केवल उपशम और क्षयोपशमसम्यक्त होता है। सो जब उपशमकी मर्यादा केवल ४८ मिनटके भीतर की है तो अधिक कालतक ठहरनेवाला केवल क्षयोपशम सम्यक्त ही है। इस सम्यक्तके होते हुए चल, मल, अगाढ़ ऐसे तीन प्रकारके दोष लगते हैं। मलके भीतर वे ही २५ मलदोष अथवा ५ अतीचार गर्भित हैं। परन्तु चरणानुयोगकी अपेक्षासे इस श्रेणीका श्रावक इस बातका पूरा २ यत्न करता है कि कोई दोष न लग जावे। यदि चारित्रमें कोई दोष लग जावे तो उस दोषको दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त याने दंड लेता रहता है तथा चारित्रकी उज्वलताके लिये श्रावक सात व्यसन, पांच उदम्बर तथा मधु इनके दोषोंको अवश्य बचाता है।

अध्याय आठवां ।

व्रत प्रतिमा ।

दर्शनप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास जब अच्छी तरह होजावे तब मोक्षका इच्छुक श्रावक व्रतप्रतिमाके दरजेमें दाखल होकर इसके नियमोंको पालने लगता है, किन्तु पहलेके नियमोंको त्यागता नहीं है। वास्तवमें अंतरंगमें आत्माके परिणामोंकी उज्वलता और बाह्यमें चारित्रकी निर्मलता ये दोनों एक दूसरेके आश्रय हैं, इसलिये चारित्रकी अधिक उज्ज्वलता इस दरजेमें की जाती है। स्वामी समन्तभद्राचार्य्यके कथनानुसार इस प्रतिमाका यह स्वरूप हैः—

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः॥१३८

(र० श्रा०)

अर्थ—जो माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्य याने मनके कांटोंको छोड़कर पांच अणुव्रतोंको अतीचाररहित पालता है तथा सात प्रकार शीलको भी धारता है—वह व्रतियोंमें व्रतप्रतिमावाला श्रावक है।

शल्य—जैसे पैरमें कांटा लग जावे तो यद्यपि पैरमें घाव नहीं होता, परन्तु पीड़ा ऐसी होती है जिससे पैरको चैन नहीं पड़ती। इस तरह माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य हैं इनमेंसे व्रतीके कोई भी होगी तो उसके परिणामोंको निराकुल सुखका लाभ अर्थात् आत्मानुभव बाहर चारित्र पालते हुए भी नहीं होगा।

इसीलिये व्रतीको योग्य है कि खूब विचार करके ये तीन कांटे अपने मनसे निकालकर फेंक देवे।

माया—अपने परिणामोंकी विशुद्धता होवे इस अभिप्रायसे तो व्रत न करे, किंतु किसी अतरंग लज्जा-भावसे व किसी सांसारिक प्रयोजनसे मान बड़ाईकी इच्छासे बाहर ठीक चारित्र भी पाले तो यह मायाका भाव है। इस भावको दूर किया जायगा तब ही व्रत पालनेके भावमें निर्मलता आयगी।

मिथ्या—व्रत पालते हुए चित्तमें पूरा श्रद्धान नहीं होता कि यह व्रत मेरे आत्मोद्धारके कारणभूत हैं। बाहर तो चारित्र ठीक पालना, परन्तु अंतरंगमें यह संशय होना कि मालूम नहीं कि इससे अपना कल्याण होगा या नहीं अथवा अनध्यवसायका भाव करे कि हमें व्रत तो पालना ही चाहिये जो कुछ फल होगा सो होगा। इसमें यह दृढ़ निश्चय नहीं होता है कि ये व्रत मेरे मोक्ष-साधनमें उपायरूप हैं।

निदान-परलोकमें मैं नर्क, निगोद व पशुगतिसे बचकर स्वर्गादिक व राजादिकोंके मनोहर सुख प्राप्त करूं अथवा इन्द्र हो जाऊं और अनेक देव देवियोंपर अपनी आज्ञा चलाऊं-इस तरहके भोगोंकी इच्छा रखता हुआ बाहरमें ठीक २ व्रतोंको पाले सो निदान शल्य है।

जो शुद्ध आत्मीक आनन्दका रसिक है वह कभी भी इन तीन शल्यरूप भावोंको अपनेमें नहीं लाता और केवल वीतराग भावकी वृद्धिके लिये ही व्रतादिकोंको आचरण करता है।

पांच अणुव्रत और उनके २५ अतीचार।

१. अहिंसा अणुव्रत।

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

(र० श्रा०)

अर्थ-संकल्प करके (इरादा करके) जो त्रसजीवोंकी हिंसा मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे नहीं करनी सो स्थूल वधसे विरमणरूप अहिंसा अणुव्रत है। इस व्रतमें अपने भोजन, औषधिके उपचार व पूजाके अर्थ किसी भी द्वेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक त्रस जीवोंको घात करनेका इरादा नहीं करता है, न इसलिये वचन बोलता है, न कायसे चेष्टा करता है, न दूसरेसे कराता है। और न किसीके ऐसे हिंसामई कार्यकी प्रशंसा करता है।

यहां स्थूल शब्द किस अर्थमें है ? इस विषयमें पंडित आशाधरजी अपने ग्रंथ सागारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रका नामकी टीकामें लिखते हैं:-

स्थूलग्रहणमुपलक्षणं तेन निरपराधसंकल्पपूर्वकहिंसादीनामपि ग्रहणं। अपराधकारिषु यथाविधिदंडप्रणेतॄणां चक्रवर्त्यादीनाम् अणुव्रतादि धारणं पुराणादिषु बहुशः श्रूयमाणं न विरुद्ध्यते।

स्थूल शब्दसे यहां निरपराधियोंपर संकल्प करके हिंसादि करना ग्रहण किया गया है, क्योंकि अपराध करनेवालोंको यथायोग्य दंड देना यह बात चक्रवर्ती आदिकोंके सम्बन्धमें पुराणोंमें

बहुधा सुननेमें आई है और वे अणुव्रतके धारी थे। इससे दंडादि देनेमें न्यायपूर्वक जो प्रवृत्ति करना है उसका विरोध अणुव्रतधारीके नहीं है। तथा इस व्रतका धारी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या ऐसे षट् कर्मोंका न्यायपूर्वक करनेवाला आरंभी गृहस्थी श्रावक होता है; इसलिये आरंभी हिंसाको यह बचा नहीं सक्ता। जैसा पंडित आशाधरजी कहते हैं:-

गृहवासो विनाऽरंभान्न चारम्भो विना वधात्।
त्याज्यः स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषङ्गिकः॥१२॥

अर्थ-विना आरम्भके गृहस्थीमें रहना नहीं हो सक्ता और आरम्भ विना वधके नहीं होसक्ता, इसलिये अणुव्रती श्रावकको यत्न करके मुख्य कहिये संकल्पी हिंसाको तो छोड़ना ही चाहिये; क्योंकि व्यापारिक हिंसाका त्यागना तो कठिनतासे होने योग्य है।

मुख्य—इमं जंतुम् आसाद्य अर्थित्वेन हन्मि इति संकल्पप्रभवः।

अर्थात् इस जीवको प्राप्त होकर अपने अर्थके कारणसे मार डालूं, इस संकल्पसे होनेवाली हिंसा।

अनुषङ्गिकः कृष्यादि अनुषंगे जातः-

अर्थात् कृषि आदि कार्य्योंके प्रयोगमें होनेवाली हिंसा।

श्रीसुभाषितरत्नसंदोहमें श्रीअमितिगति लिखते हैं:-

भेषजातिथिमन्त्रादिनिमित्तेनापि नाङ्गिनः।
प्रथमाणुव्रताशक्तैर्हिंसनीयाः कदाचन॥ ७६७॥

अर्थात्–प्रथम अणुव्रतके पालनेवालोंको उचित है कि दवाई, अतिथि–सत्कार (मिहमानोंकी दावत) तथा मंत्र वगैरहके लिये भी त्रस प्राणियोंका घात कभी न करे।

श्री भरत चक्रवर्ती देशव्रती थे–यह बात नीचेके श्रीआदि-पुराणजीके श्लोकसे प्रगट होगी।

त्रिज्ञाननेत्रसम्यक्त्वशुद्धिभाग्देशसंयतः।
स्रष्टारमभिवन्द्यायात् कैलासात् नगरोत्तमम् ॥३२१

॥ पर्व ४७ ॥

अर्थ–तीन ज्ञान रूपी नेत्र करके तथा सम्यक्त्वकी शुद्धता करके सहित देशसंयमी श्रीभरतजी, श्रीआदिनाथस्वामी ब्रह्माको नमस्कार करके कैलाससे अपने उत्तम नगरको आये।

सारांश यह है कि प्रथम अणुव्रतीके हृदयमें तो करुणा बुद्धि ऐसी होनी चाहिये कि वह थावर एकेन्द्री जीव और त्रस द्वेंद्रियादि सर्वकी रक्षा चाहे तथा प्रवृत्तिमें खानपानादि व्यवहारके लिये जितनी जरूरत हो उतनी ही थावर कायकी विराधना करे। जरूरतसे ज्यादा व्यर्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पती कायिककी हिंसा न करे और त्रस जीवोंकी हिसा खानपानादि व्यवहार व औषधि मंत्र तंत्र, पूजा अर्चा, अतिथिका आदर आदि कार्योंके निमित्त जान बूझकर कदापि न करे। एकेंद्रीकी भी जरूरतसे अधिक हिंसा न करे ऐसा उपदेश श्री अमृतचंद सूरिने पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें दिया है:–

**स्तोकैकेन्द्रियघाताद् गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणाम्।
शेषस्थावरमारण विरमणमपि भवति करणीयम्॥७७॥**

व्यापारादि आरम्भ कार्योंमें प्रवर्तन करते हुए यह त्रस हिंसाका बचाव नहीं कर सक्ता है, यद्यपि व्यर्थ और अन्यायपूर्वक त्रस हिंसा कदापि नहीं करता। तीन वर्णके श्रावकोंको अपनी २ पदवीके योग्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प तथा विद्या* इन छह कर्मोंके द्वारा आजीविका जबतक आरम्भ त्याग नाम श्रावकके आठवें दरजेमें न पहुंचे तबतक थोड़ी या बहुत अपनी २ स्थितिके अनुसार करनी पड़ती है। तो भी दयावान् श्रावक जहांतक बने बहुत विचार पूर्वक वर्तन करता है। उसके अंतरंगमें तो यही श्रद्धा रहती है कि मुझे जीव हिंसा न करनी पड़े तो ठीक है, परन्तु प्रत्याख्यानावरणी कषायके उदय करके गृह कार्य्य आजीविका आदि त्यागनेको असमर्थ होता है। इससे लाचारीवश आरम्भ-जनित हिंसा छोड़ नहीं सक्ता परंतु यथासंभव ऐसी हिंसासे बचनेकी चेष्टा करता रहता है तथा यथासंभव ऐसे आरम्भ बचाता है, जिनमें बहुत त्रस जीवोंका घात हो। क्षत्री वैश्य और शूद्र हरएक वर्णवाला इस व्रतको पाल सक्ता है।

अहिंसा अणुव्रतके ५ अतीचारः-

इस अहिंसा व्रतको निर्दोष पालनेके अर्थ इसके ५ अतीचारोंको भी त्यागना चाहिये।

---

*नोट-इनमेंसे असि कहिये शस्त्रद्वारा रक्षाके कर्मद्वारा क्षत्री, मसि, कृषि, वाणिज्यसे वैश्य और शेष दो से शूद्र आजीविका करता है।

बंधवधछेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥२५-७अ.

(उमास्वामी)

मुंचन् बंधं वधच्छेदमतिभारोधिरोपणं।
रोधं च दुर्भावाद् भावनाभिस्तदा विशेत् ॥ १५ ॥

(आशाधर)

१. रस्सी आदिसे बांधना, २. लाठी, चाबुक आदिसे मारना, ३. अंग व उपंग छेदना, ४. पशु व मनुष्योंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझेका लादना, ५. अपने आधीन स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर, पशु आदिकोंका अन्नपान रोक देना, समय टालकर देना व कम देना—ये पांच अतीचार प्रथम अणुव्रतके हैं।

प्रश्न—ग्रहस्थी जब प्रजाकी व पुत्रोंकी रक्षा करता है अथवा पुत्रोंको शिक्षाके अर्थ दंड देता है तथा अपने काम योग्य पशुओंकी परिग्रहको रखता है तब ऊपर लिखित दोषोंसे कैसे बच सक्ता है?

उत्तर—इसी शंकाके निवारणके लिये पंडित आशाधरजीने दुर्भावात् हेतु दिया है, जिसका खुलासा नीचे लिखे अनुसार संस्कृतमें पंडितजीने किया है:—

दुर्भावात्—दुर्भावं दुष्परिणामं प्रबलकषायोदयलक्षणम् आश्रित्य श्रियमाणो यो बंधस्तद्वर्जनम्। अयं विधिः बंधो द्विपदानां चतुष्पदानां वा स्यात्। सोऽपि सार्थकोऽनर्थको वा? तत्र अनर्थकस्तावत् श्रावकस्य कर्तुं न युज्यते। सार्थकः पुनः द्वेध—सापेक्षो निरपेक्षः। तत्र सापेक्षो यो दामग्रन्थादिना शिथिलेन चतुष्पदानां विधीयते यश्च प्रदीपनादिषु

मोचयितुं छेत्तुं वा शक्यते। निरपेक्षो यन्निश्चलम् अत्यर्थम् अमी वध्यंते। द्विपदानां दासदासीचोरपाठादिप्रमत्तपुत्रादीनां यदि बंधो विधीयते तदा स विक्रमणा एव अमी बंधनीया रक्षणीयाश्च यथा अग्निभयादिषु एव न विनश्यन्ते।

अर्थ—दुर्भाव याने खोटे परिणाम जो प्रबल कषायके उदयसे होते हैं ऐसे परिणामोंके द्वारा किया हुआ बंधन सो नहीं करना योग्य है। उसकी विधि यह है:—

द्विपद कहिये मनुष्य और चतुष्पद कहिये गाय, घोड़ा, पशु इनका बंधन जो होता है सो दो प्रकारसे होता है। पहला सार्थक याने मतलबसे, दूसरा निरर्थक याने वे मतलब। सो अनर्थक बंधन तो श्रावकको करना उचित नहीं है और सार्थक बंधन दो प्रकारका है। पहला सापेक्ष दूसरा निरपेक्ष।

सापेक्षसे मतलब यह है कि (उनकी रक्षाकी अपेक्षा करके) चार पैरवाले पशुओंको ढीला रस्सी आदिसे इस तरह बांधना कि वे अग्नि आदि भय व उपद्रवके पड़नेपर उस बंधनको खुद छुड़ा सकें व उसको छेद सकें।

निरपेक्ष बंधन यह है कि (रक्षाकी गरज न रखके) अत्यन्त दृढ़ बांध देना, सो न करना चाहिये। तैसे ही दास, दासी, चोर व पढ़ने आदिके आलसी पुत्र शिष्यादिको यदि शिक्षा देनेकी गरजसे बंधन किया जावे तो इस तरह होना चाहिये कि वे चल फिर सकें तथा उनकी रक्षा करनी चाहिये, ताकि अग्नि आदिके भयोंसे उनको हानि न पहुंचे। इसके सिवाय यदि तीव्र क्रोधादि

करके अर्थात् अंतरंग हिंसा–भाव करके किसीको बांधा जायगा तो अतीचार होगा, क्योंकि बाह्यमें वह उसका प्राण लेना नहीं चाहता है।

अतीचार एक देशव्रतके भंगको कहते हैं। इसी विषयमें पंडित आशाधरजी कहते हैं:–

व्रतं द्विविधं अन्तर्वृत्त्या बहिर्वृत्त्या च। तत्र मारयामि इति विकल्पाऽभावेन यदा कोपाद्यावेशात् परप्राणप्रहरणम् अवगणयन् बंधादौ प्रवर्तते न च हिंसा भवति तदा निर्दयता विरत्यनपेक्षतया प्रवृत्तत्वेन अंतर्वृत्त्या व्रतस्य भंगो हिंसायाः अभावात् बहिर्वृत्या च पालनम्। देशस्य भंजनात् देशस्यैव पालनात् अतिचारः व्यपदिश्यते.”

अर्थ–व्रत दो तरहसे होता है। एक अंतरंग और दूसरा बाह्य। जब मैं मार डालूं, इस विकल्पके विना केवल क्रोधादि कषायोंके वेगसे दूसरेके प्राणोंकी पीड़ाको गिनता हुआ दूसरोंके साथ बधादिकी प्रवृत्ति करता है, तब उसकी हिंसा तो नहीं होती है, परन्तु उसके परिणाम निर्दयतासे अछूते नहीं हैं। इसलिये अंतरंगके भंगसे तो व्रतका भंग हुआ, परन्तु बाह्यमें हिंसा नहीं हुई, इससे बाह्य व्रतका पालन हुआ। इसलिये एकदेश व्रतका त्याग और एकदेश व्रतका पालना इसीको अतीचार कहते हैं।

ऊपर लिखी चरचाके अनुसार तीव्र कषायसहित हो करके जब किसीको लाठी चाबुक आदिसे मारा जायगा व अंग उपंगादि

छेदे जांयगे व अति बोझा लादा जायगा व अन्नपान रोका जांयगा, तव हिंसामें अतीचार लगेगा। परन्तु जो प्रयोजनार्थ शिक्षाके अर्थ किसीको ताड़ना की जाय व छेदन किया जाय (जैसे डाक्टर चीरा देता है) व अति बोझा लादा जाय व अन्नपान कुछ कालके लिये रोका जाय, तो अतीचार नहीं लगेगा। क्योंकि वह अंतरंगमें उसकी ओर दया भाव ही रखता है। जैसे शिष्योंको साधारण थप्पड़ मारना व उनके ऊपर तख्ती लादनी व एक किसी खास भोजनकी मनाई कर देनी आदि।

नोट–आजकल यह देखा जाता है कि तीव्र लोभ कषायके वश व्यापारीगण पशुओंके अंगोपांग छेदते, अधिक बोझा लादते व खानपान रोक रखते व जब चलनेमें ढील करते तव जोरसे लाठी चाबुक मारते व कसकर बांध देते हैं इत्यादि। यह प्रवृत्ति पशुओंको दुखदाई है। इसलिये इनकी बन्दी होनी चाहिये तथा अध्यापक लोग बहुधा बड़ी निर्दयताके साथ शिष्योंको बेत मार देते हैं जिससे उनको बड़ी वेदना हो जाती है। इससे यह उचित है कि स्कूलों और पाठशालाओंसे बेतकी मारको बन्द कर दिया जावे। दयापूर्वक योग्य दंड देनेमें कोई हर्ज नहीं है।

बैल, घोड़े आदिकोंकी इंद्री छेदनेकी जो प्रवृत्ति है क्या इसको बंदकर उनसे काम नहीं लिया जा सक्ता? इस वातपर पाठक गणोंको ध्यान देना चाहिये। यदि कोई वीर पुरुष उद्यम करके इस प्रवृत्तिको बन्द करा देंगे तो कोटानुकोटपशुओंके दया पात्र होंगे।

हमको ध्यान रखना योग्य है कि इक्का, वग्घी, बैलगाड़ी आदि पर उतने ही आदमी बैठें जितनी कि सरकारी आज्ञा है। बिचारे मूक पशु कुछ मुखसे कह नहीं सकते और हमारी बेखवरीसे उनको अधिक बोझा घसीटना पड़ता है, जिससे उनके अंतरगं परिणाम संक्लेशित होते हैं और वृथा हाकने वालेके द्वारा मार सहनी पड़ती है।

२. सत्य अणुव्रत ।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥

र० श्रा०

अर्थ—जो स्थूल झूठ नहीं बोलता है, न दूसरेसे बुलवाता है तथा जिससे किसीपर विपत्ति आजाय ऐसे सत्यको भी नहीं बोलता है—उसका नाम स्थूल मृषावादवैरमण—नाम व्रत है ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं।

क्रोध,—लोभमदरागद्वेषमोहादिकारणैः ।
असत्यस्य परित्यागः सत्याणुव्रतमुच्यते ॥ ७६९॥

(अमितिगति)

अर्थ—क्रोध, लोभ, मद, राग, द्वेष, मोह आदि कारणोंसे झूठ बोलनेका जो त्याग करना उसको सत्याणुव्रत कहते हैं।

श्रीउमास्वामीजीने कहा है।

प्रमत्तयोगादसदभिधानमनृतम् । १४-७ अ.

अर्थात् प्रमादसहित याने कषायसहित मन, वचन, काय योगोंके द्वारा जो असत्य कहना सो अनृत है।

यह अनृत वचन चार प्रकारका है। (अमृतचंद पुरु०)

१. जो चेतन व अचेतन पदार्थ हो उसको कहना कि नहीं है। जैसे किसीने पूछा कि क्या देवदत्त है ? उसको कहना कि नहीं है, यद्यपि देवदत्त मौजूद है।

२. जो चेतन व अचेतन पदार्थ न हो उसको कहना कि

है; जैसे किसीने पूछा कि क्या यहां घड़ा है ? तो इसको यह उत्तर देना कि 'है' यद्यपि वस्तु मौजूद नहीं है।

३. जो चेतन व अचेतन पदार्थ जैसा हो उसको वैसा न कहकर और रूप कहना। जैसे किसीने पूछा कि क्या यहां देवदत्त है ? तो देवदत्त होते हुए भी यह कहना कि यहां देवदत्त नहीं है, किन्तु रामसिंह है अथवा धर्मका स्वरूप हिंसामई कहना।

४. गर्हित, सावद्य और अप्रिय वचन कहना, दुष्टता हंसी करनेवाले वचन, कठोर वचन तथा अमर्यादीक वचन व बहुत प्रलाप याने बकवादरूप वचन कहना सो गर्हित है; छेदन, भेदन, ताड़न, मारण, कर्षण, वाणिज्य तथा चोरी आदिके पापरूप वचन कहना सो गर्हित है; छेदन, भेदन, ताड़न, मारण, कर्षण, वाणिज्य तथा चोरी आदिके पापरूप वचन कहना सो सावद्य वचन है। अरति पैदा करनेवाले, भय देनेवाले, खेद करनेवाले, वैर,शोक तथा कलह कहिये लड़ाई करानेवाले तथा संताप पैदा करनेवाले वचनोंको कहना सो अप्रिय वचन है।

इन ४ प्रकारके असत्योंमेंसे केवल भोग और उपभोगकी सामग्रीकी प्राप्ति व उसके उपायोंके लिये सावद्य कहिये पापरूप वचनोंके सिवाय और समस्त असत्यको त्यागना योग्य है। आरंभ कार्य्योंके लिये जो वचन कहा जाता है वह भी सावद्य नामका असत्य है, परन्तु आरंभी गृहस्थी इस तरहके असत्यको त्यागनेसे लाचार है। सत्य अणुव्रतीको योग्य है कि वचन बहुत सम्हालके बोले; कड़वे, कठोर, मर्म छेदनेवाले आदि अविनय करनेवाले तथा अभिमान बढ़ानेवाले वचनोंको यद्यपि वे सत्य भी हों तब भी न कहे।

जिन सत्य वचनोंसे दूसरेपर भारी आपत्ति आ जाय व प्राण चले जाय ऐसे सत्य वचनको भी नहीं बोले। व्यापारादिमें वस्तुकी लागत झूठ न बतावे, उचित नफा जोड़कर दाम लेवे, खोटी वस्तुको खरी न कहे। सत्य बोलनेवाला गृहस्थी अपना विश्वास जमाता है तथा थोड़ीसी बातचीतमें अपना मतलब सिद्ध कर सकता है।

यह अवश्य याद रखना चाहिये कि जिस वचनके कहनेमें अंतरंगमें प्रमत्तभाव अर्थात् कषाय भाव हों उसीको असत्य भाव कहते हैं। प्रमत्तयोगरहित जो वचन हैं सो असत्य नहीं हैं।

सत्य वचन बोलनेवाले अणुव्रतीको ५ अतीचार याने दोष बचाने चाहिये।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः॥ (उमास्वामी—तत्त्वार्थसूत्र)

अर्थ—१. प्रमादसे सत्य धर्मसे विरुद्ध मिथ्या धर्मका उपदेश देना अथवा प्रमादसे परको पीड़ा पहुंचे ऐसा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश है—इसमें अपना कोई अर्थ नहीं है।

२. 'स्त्री पुरुषाभ्यां रहसि एकान्ते यः क्रियाविशेषः अनुष्ठितः वाच क्रियाविशेषः गुप्त्यावृत्या गृहीत्वा अन्येषां प्रकाश्यते।'

अर्थात् स्त्री पुरुष जो एकान्तमें क्रिया कर रहे हों उसको छिप करके जान लेना और फिर दूसरोंको प्रगट कर देना हास्य व क्रीड़ाके अभिप्रायसे कहना, सो अतीचार है।

३ झूठा लेख पत्रादि व वहीखाता लिखना व झूठी गवाही दे देना (व्यापारादि कार्य्यमें कभी ऐसा करना सो अतीचार है) सो कूटलेख क्रिया है।

४. अपने पास कोई अनामत रुपया पैसा व चीज़ रख गया और पीछे उसने भूलकर कम मांगी तो आप यह कह देना कि इतनी ही आपकी थी-सो ले जाइये—यह न्यासापहार अतीचार है। याने न्यास कहिये अमानतका हर लेना।

५. कहीं दो आदमी व अधिक गुप्त रीतिसे कोई मंत्र याने सलाह कर रहे हों उसको इशारोंसे जानकर उनकी मरजी विना दूसरोंको प्रगट कर देना, अभिप्राय प्रमादका अवश्य है तो यह साकारमंत्रभेद नामका अतीचार है। इन पांचों दोषोंको अवश्य बचाना चाहिये और व्यवहारमें सत्यताका झंडा गाड़ना चाहिये। जो जीव सत्यतासे व्यापारादि करते व जगत्‌के लोगोंसे व्यवहार करते हैं उनको कभी किसी झगड़ेमें नहीं फंसना पड़ता और न कचहरियोंमें जानेकी नौवत आती है। सत्य वचनसे ही मनुष्यकी शोभा है। वचनको बोलनेकी शक्ति बड़ी कठिनतासे प्राप्त होती है। इसलिये सत्य वचन कहकर अपने परिणामोंको उज्ज्वल रखना चाहिये। प्रमाद व कषायके वशमें पड़ असत्यवादी नहीं होना चाहिये।

३. अचौर्य्य अणुव्रत।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपा रमणम् ॥५७॥
(र० श्रा०)

अर्थ—रक्खा हुआ, गिरा हुआ, भूला हुआ व विना दिया हुआ दूसरेका धन जो नहीं लेता है न किसीको देता है, सो स्थूल अचौर्य्यव्रत है।

येऽप्यहिंसादयो धर्मास्तेऽपि नश्यन्ति चौर्यतः ।
मत्वेति न त्रिधा ग्राह्यं परद्रव्यं विचक्षणैः ॥७७॥
अर्थाः बहिश्चराः प्राणाः प्राणिनां येन सर्वथा ।
परद्रव्यं ततः सन्तः पश्यन्ति सदृशं मृदा ॥७७८॥
(अमितिगति)

अर्थ—चोरी करनेसे अहिंसा आदिक धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसा जानकर, मन, वचन, कायसे चतुर पुरुषोंको दूसरोंके द्रव्यको नहीं चुराना चाहिये। प्राणियोंके बाह्य प्राण धन हैं, इसलिये दूसरेका द्रव्य सर्वथा मिट्टीके समान है—ऐसा सन्त पुरुष देखते हैं।

यह अणुव्रती उन चीजोंको बिना दी भी ले सक्ता है जिन चीजोंकी राजा व पंचायत व किसी समाजकी तरफसे लिये जानेकी आम इजाज़त है। जैसे हाथ धोनेके लिये मिट्टी व नहाने व पीनेके लिये नदी,तालाब,कुएका जल व इसी किस्मकी और कोई छोटी चीज, जैसे पत्ती, फूल, फल, तिनका, घास वगैरह। अगर इन चीजोंके लिये कहीं मनाई हो तो इनका लेना भी चोरी है। जिस चीज़को लेनेपर कोई पकड़ नहीं सक्ता, न मना कर सक्ता है ऐसी सर्व साधारणके लेने योग्य चीजको लेना सो स्थूल चोरी नहीं है।

इसके पांच अतीचार हैं:—

सूत्र—स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम हीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥
(उमास्वामी)

१. स्तेनप्रयोग—चोरीके लिये प्रेरणा करनी। जिसको मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे स्थूल चोरीका त्याग है, उसके लिये तो चोरसे चोरी कराना व्रतका भंग करना ही होगा, परन्तु यहां अतीचार इसलिये कहा है कि जैसे किसीके पास खानेको नहीं है व गरीब है और उससे कहना कि जो वस्तु तुम लाओगे हम ले लेंगे व बेंच देंगे—इसमें एकदेश भंग होनेसे अतीचार है। (सागारधर्मा०)

२. तदाहृतादान—चोरीका लाया हुआ पदार्थ लेना। चोरीका पदार्थ गुप्त रीतिसे ले लेना वह तो चोरी ही है, परन्तु व्यापारार्थ कुछ अल्प—मूल्यमें लेना सो तदाहृतादान अतीचार है।

३. विरुद्धराज्यातिक्रम—विरुद्धं विनष्टं विग्रहीतं वा राज्यं छत्रभंगः तत्र अतिक्रमः उचितन्यायात् अन्येन प्रकारेण अर्थस्य दानं ग्रहणम्। (सा०)

अर्थ—कहीं राज्य भ्रष्ट हो गया है व छत्र भंग हो गया है वहां जाय करके अमर्यादासे व्यापार करना याने उचित न्यायको छोड़कर द्रव्यादिका देना लेना सो विरुद्ध राज्यातिक्रम अतीचार है। कोई २ ऐसा अर्थ भी करते हैं कि राजाकी आज्ञाके विरुद्ध महसूल कमती देना।

४. हीनाधिक मानोन्मान—प्रमादसे व्यापारमें कमती बांटोंसे तौलकर देना व बढ़ती बांटोंसे लेना सो अतीचार है।

५. प्रतिरूपक व्यवहार—खरीमें खोटी चीज मिलाकर व्यापार बुद्धिसे खरी कहकर बेंचना सो चोरीका अतीचार है। जैसे दूधमें पानी, घीमें तेल, सोनेमें तांबा आदि मिलाकर दूध, घी, सोना कहकर बेंचना सो अतीचार है।

इसी कार्य्यमें यदि लोभकी अति आशक्तता होगी तो साक्षात् चोरी ही हो जायगी अथवा खोटे रुपये बनाकर उनसे लेन देन करना जैसा स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें कहा है:—

"ताम्रेण घटिता रूप्येण च सुवर्णेन न घटितास्ताम्ररूप्याभाव घटिता द्रम्माः (greek) तत् हिरण्यम् उच्यते तत्सदृशाः केनचिन् लोक वंचनार्थं घटिता द्रम्माः प्रतिरूपकाः उच्यते तैः प्रतिरूपकैः असत्यनाणकैः (coins) व्यवहारः क्रयविक्रयः प्रतिरूपक व्यवहारः ॥"

तांबे चांदीके बने हुए दिरमको हिरण्य कहते हैं। किसीने लोगोंको ठगनेके लिये उसीके समान दूसरे रुपये बना लिये याने झूठे रुपये बनाकर लेन देन करना सो प्रतिरूपक व्यवहार है।

तीसरे अणुव्रतके धारीको उचित है कि ऊपर लिखे हुए पांचों अतीचार याने दोषोंसे बचे। क्योंकि निर्दोष व्रत पालनेसे इस लोकमें विश्वास व व्यापारको बढ़ायेगा, यशको पायेगा और ऐसा पाप नहीं बांधेगा जिससे अशुभगतिका वंध हो और परलोकमें दुःख उठावे।

४. ब्रह्मचर्य्य अणुव्रत।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोष नामापि ॥५९॥
(रत्न०)

अर्थ—जो न तो पर स्त्रियोंसे काम भोग करता है और न दूसरोंको कराता है उसके परदारानिवृत्ति अथवा स्वस्त्रीसंतोषव्रत होता है।

मातृ स्वसृ सुता तुल्या निरीक्ष्य परयोषितः।
स्वकलत्रेण यतस्तोषश्चतुर्थं तदणुव्रतम् ॥ ७७८ ॥

यार्गला स्वर्ग मार्गस्य सरणिः श्वभ्रसद्मनि ।
कृष्णाहि दृष्टि वद्‌द्रोही दुःस्पर्शाग्नि शिखेव या॥७७९

(अमितिगति)

अर्थ-पर स्त्रियोंको माता, वहन व पुत्रीके समान देखके अपनी स्त्रीसे ही संतोषित रहना सो चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

यह परस्त्री स्वर्गके मार्गमें आड़ है, नर्क महलमें लेजानेको सखी है, काले सांपकी दृष्टिके समान बुरा करने वाली है तथा नहीं छूने योग्य अग्गिकी शिखा है। पुरुषको अपनी विवाहिता स्त्रीमें और स्त्रीको अपने विवाहित पतिमें ही सन्तोष रखना चाहिये।

गाथा-पव्वेसु इच्छिसेवा अणंगक्रीड़ा सदा विवज्जंतो।
थूलपड़ ब्रह्मचारी जिणेहिं भणिदो पवयणम्हि ॥

(स्वा० टीका)

पर्वमें स्वस्त्रीकी सेवा तथा अनंगक्रीड़ा भूलकर भी ब्रह्मचारी नहीं करता है-ऐसा जिनेन्द्रने प्रवचनमें कहा है। १ मासमें २ अष्टमी और २ चौदस पर्वी हैं। इसके सिवाय तीन अष्टान्हिका और दशलाक्षणीके १० दिन भी पर्वीमें गिनकर शीलव्रत पालना चाहिये। इस व्रतके भी पांच अतीचार बचाना चाहिये।

सूत्र-परविवाहकरणेत्वरिकापरिग्रहीतापरिग्रहीता-गमनानङ्गक्रीड़ा कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ (उमा०)

१. "परविवाहकरणं स्वपुत्र पुत्र्यादीन् वर्जयित्वा अन्येषां गोत्रिणां मित्रस्वजनपरजनानां विवाहकरणं ॥" स्वा०

अर्थ—अपने पुत्र पुत्री आदि (घरके भीतरके लडके लड़की) के सिवाय अन्य गोत्रवाले-मित्र रिश्तेदार आदिकोंके विवाहोंका करना।

२. इत्वरिकापरिग्रहीता गमन—अन्यकी परणी हुई स्त्री जो व्यभिचारिणी हो उससे सम्बन्ध रखना याने लेनदेन बोलने. बैठने आदि व्यवहार करना।

३. इत्वरिका अपरिग्रहीता गमन—विना परणी हुई स्त्री जैसे कन्या, दासी, वेश्या आदिसे सम्बन्ध रखना।

गमनं-जघन्य स्तन व दतादि निरीक्षणं सभाषण हस्तभ्रू कटाक्षादि संज्ञाविधानं इत्येवमादिक निखिल रांगित्त्वेन दुश्चेष्टितं गमन इत्युच्यते (स्वा०टीका)

अर्थ—परस्त्री व वेश्यादिके जघन्य, स्तन व दांत आदि अंगोंका देखना, प्रेम पूर्वक बातचीत करना, हाथ, भौंके कटाक्ष वगैरहसे करना उसको गमन कहते हैं।

४. अनङ्गक्रीड़ा—अपनी स्त्रीहीके साथ व अन्य किसी पुरुष व नपुंसकको स्त्रीके समान मानके काम सेवनके अंगोंको छोड़कर अन्य अंगोंसे काम चेष्टा करनी।

५. कामतीव्राभिनिवेश—कामकी तीव्रता रखना अर्थात् अपनी स्त्रीके साथ भी अत्यन्त तृष्णामें होकर काम सेवन करना, तृप्तता न पानी।

नोट-वास्तवमें जब स्त्री रजस्वला हो उसके पीछे ही पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे गर्भाधानादि क्रिया करनी चाहिये। शेष दिनोंमें सतोषित रहना चाहिये।

ब्रह्मचर्य्यव्रत शरीरकी रक्षा व आत्मिक उन्नतिका साधक

है, क्योंकि शरीरमें वीर्य अपूर्व रत्न है। इसकी यथासंभव रक्षा करनी अत्यंत आवश्यक है। स्त्री–सेवनके भाव करने ही से वीर्य-रूपी रत्न मलीन हो जाता है।

५. परिग्रह प्रमाण।

धनधान्यादि ग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु नि-स्पृहता। परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छा परिमाण नामापि॥ ६१॥ (रत्न०)

अर्थ–धन धान्यादि ग्रन्थोंका प्रमाण करके उससे अधिकमें अपनी इच्छाको रोकना उसको परिमित परिग्रह अथवा इच्छा परिमाण नाम पांचवां अणुव्रत कहते हैं।

परिग्रह १० प्रकारका होता है:

१. क्षेत्र- धान्योत्पत्तिस्थानं–धान्यके पैदा होनेकी जगह।

२. वास्तु–गृहहट्टऽपवरादिकं–घर, दूकान, कोठी व धान्य भरनेकी जगह।

३. हिरण्यं–रूप्य ताम्रादि घटित द्रव्य व्यवहार प्रवर्तितं। चांदी, तांबे, सोने आदिके बने हुए सिक्के जिनका व्यवहार होता है।

४. सुवर्ण–कनकं–सोना।

५. धन–गोमहिषी गजवाजि बड़वोऽष्ट्राऽनादिकं–गाय, भैंस, हाथी, घोड़े, ऊंट, बकरे आदि।

६. धान्य–अष्टादस भेदं–अनाज १८ प्रकार है। १ गोधूम (गेहूं) २. शालि (चाँवल) ३. यव, ४. सर्षप (सरसों) ५. माष (उरद) ६. मुद्ग (मूंग) ७. श्यामाक, ८. कंगु,

९. तिल, १०. कोद्रव, ११. राजमाषा, १२. कीनाश, १३. ताल, १४. मथवैणव, १५. माढ़कीच, १६. सिंबा, १७ कुलथ, १८. चणकादि सुबीज धान।

७. दासी–स्त्री सेविकाएं।

८. दास–पुरुष सेवक।

९. भांड–गृहस्थीमें वर्तने योग्य वर्तन।

१०. कुप्य–वस्त्र नाना प्रकारके।

गृहस्थीको योग्य है कि इन १० प्रकारके परिग्रहोंका जन्मभरके लिये प्रमाण कर लेवे। छोटा व बड़ा, राजा व रंक अपनी २ हैसियत व आवश्यक्ताके अनुसार प्रमाण करे कि अपने पास किसी भी काल इतनी वस्तुओंसे अधिक न रक्खूंगा। जैसे प्रमाण करना कि ९ खेत इतने बीघेके व इतने मकान व इतना रुपया व इतना सोना रत्न व इतनी गाय, भैंसे, घोड़े आदि व इतना अनाज घरमें खाने योग्य जैसे १ मासके खर्चसे अधिक नहीं) व इतनी दासी व दास व इतने गिन्तीके व इतने तौलके वर्तन व अपने पहननेके इतने कपड़े।

एक कुटुम्बी जब कई मनुष्योंके साथ रहता है और उसीका पूरा अधिकार है तब वह कुटुम्बभरकी वस्तुओंका आप प्रमाण करता है फिर उससे अधिक कुटुंबमें नहीं आने देता। यदि कुटुम्बमें भाई व पुत्र ऐसे हैं कि जो अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्तने वाले नहीं हैं और शामिल रहते हैं तो उनसे सलाह करके प्रमाण करे। यदि परस्पर सम्मति न हो सके तब अपनी इच्छा-

नुसार प्रमाण करे और यह विचार कर ले कि जब इतना धन आदि परिग्रह हो जायगा तब यह भाई पुत्र और अधिक बढ़ानेकी इच्छा करेंगे तो मैं अपने सम्बन्धी खास परिग्रहको जुदा कर लूंगा और शेषसे ममत्व त्याग दूंगा। अथवा यों भी प्रमाण कर सक्ता है कि मैं अपने खास काममें इतनी २ परिग्रहको ही लेऊंगा ऐसा प्रमाण करनेसे शेषसे उसका ममत्व भी न रहेगा और न वह उनका प्रबन्ध कर अपने काममें ले सक्ता है। ऐसी हालतमें संतोष वृत्ति रखनेको अपने हककी परिग्रहको जुदी ही कर लेनी मुनासिब है।

यह व्रत अधिक तृष्णा व लोभके त्यागके लिये किया जाता है, ताकि ऐसा न हो कि तृष्णाके पीछे धनके बढ़ानेमें ही अपना जन्म बिता देवे और संतोष करके कभी पारमार्थिक सुखके भोगका विशेष उद्यम न करे। इस व्रतका यह मतलब भी नहीं है कि किसी जीवको निरुद्यमी किया जावे। यहां यह प्रयोजन है कि जहां तक उसकी इच्छा रुके वहांतकका प्रमाण करले, आगेकी तृष्णा न करे। विना संतोषके जीवको साता नहीं आती। जो केवल अप्रमाण धन बढ़ाते ही जाते हैं और कभी संतोष नहीं करते उनको जीवनभरमे सुख नहीं होता, वरन वे अन्तकाल मरणके समय अत्यन्त तृष्णासे मर पशु व नरक गतिके भागी होते हैं; उन्हें संकटकी मृत्यु मरना पड़ता है न कि शांतिकी। क्योंकि यह हमारा जीवन इस मनुष्य पर्यायमें थोड़े कालके लिये है और धनादि परिग्रह केवल इस पर्याय ही को सहाई है। अतएव उनका प्रमाण कर लिया जावे तो तृष्णा अपने वशमें

रहे और जब इच्छानुसार धन हो जावे फिर निश्चिन्त हो संतोष पूर्वक रहे, धर्म ध्यान ही में शेष जीवन वितावे। कोई २ ऐसा प्रमाण करते हैं कि अमुक धनसे अधिक जितना पैदा करेंगे सर्व धर्मकार्य्यमें लगावेंगे। जैसे किसीने ५ लाखका प्रमाण किया और जब अधिक पैदा होने लगा तो धर्मकार्यमें लगाने लगा—यह भी एक प्रकारसे कुछ तृष्णाका प्रमाण है, परन्तु यह व्रत इसको कमानेकी तृष्णासे कभी छुट्टी नहीं लेने देगा। इसलिये पंचमव्रतीको ऊपर लिखे अनुसार प्रमाण करना उचित है, क्योंकि प्रयोजन संतोष प्राप्त करनेका है।

संतोषाश्लिष्टचित्तस्य यत्सुखं शाश्वतं शुभम्।
कुतस्तृष्णागृहीतस्य तस्य लेशोऽपि विद्यते ॥७८९॥
यावत्परिग्रहं लाति तावद्धिंसोपजायते।
विज्ञायेति विधातव्यं सङ्गः परिमितो बुधैः ॥७९०॥

(अमितिगति)

अर्थ—संतोषसे भीगे हुए चित्तको जो शुभ और अविनाशी सुख प्राप्त होता है उसका लेशमात्र भी सुख तृष्णासे जकड़े हुए जीवको कहांसे हो सक्ता है? जबतक परिग्रहको रक्खेगा तब तक हिंसा उत्पन्न होगी ऐसा जानकर बुद्धिवानोंको परिग्रहका परिमाण करना योग्य है।

इस व्रतके भी ५ अतीचार हैं:—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः। (उ० स्वामी)

इन १० प्रकारकी परिग्रहमें दो दो का एक जोड़ करके परस्पर एकके प्रमाणको घटाकर दूसरा बढ़ा लेना सो अतीचार हैं। जैसे क्षेत्र था १० बीघा और मकान थे ४, अब जरूरत देखके १ बीघा क्षेत्र कम करके मकानको बढ़ा ले व क्षेत्रकी पैदावार ज्यादा जानके एक मकान तुड़वाके क्षेत्रमें जमीन मिला दे। अथवा रुपये १०००० रक्खा, सोना १०० तोला रक्खा और तब सोनेका भाव घटता देखकर रुपयोंसे सोना खरीदकर बढ़ा लेवे व सोनेका भाव बढ़ा जानकर सोना बेंचकर रुपये बढ़ा ले अथवा गाय भैंसादिमें कमीकर बदलेमें धान्य विशेष जमा करले कि फिर मँहगा हो जायगा अथवा धान्यके स्थानमें एक व दो गाय भैंस बढ़ा ले व गायका बच्चा हुआ उसको न गिने व कुप्य भांडमें कपड़ोंको बेचकर वर्तन बढ़ालेना व वर्तनोंकी सख्या कम कर कपड़ोंकी संख्या बढ़ा लेना—इस तरह ये पांच अतीचार हैं।

देशव्रतीको उचित है कि अपने परिणामोंकी उज्ज्वलताके लिये इस व्रतको निर्दोष पालकर अपनी आत्मोन्नतिमें पद पद पर बढ़ता जावे।

व्रतप्रतिमावाला इन उपर्युक्त व्रतोंको अतीचार रहित पालता है। प्रयत्न अतीचार रहित ही का करता है। यदि कोई अतीचार लगे तो प्रतिक्रमण करता है व प्रायश्चित्त लेता है। इनके सिवाय नीचे लिखे सात शील भी पालता है। इनमें ३ गुणव्रत शिक्षारूप अभ्यास करने योग्य हैं।

प्रथम गुणव्रत दिग्व्रत ।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि ।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत मा मृत्यणु पापविनिवृत्त्यै ॥६८॥
(र० क०)

अर्थ—दशों दिशाओंमें प्रमाण करके यह प्रतिज्ञा करे कि इसके बाहर मैं नहीं जाऊंगा—इस प्रकारका संकल्प करना उसे दिग्व्रत कहते हैं । यह व्रत मरण पर्यंत उस क्षेत्रके बाहर पापोंको छोड़नेके अर्थ है ।

सांसारिक, व्यापारिक व व्यवहारिक कार्य्यके लिये जन्म पर्यंत दशों दिशाओंमें जानेकी व ऐसे ही अन्य रीतिसे पत्रादि-द्वारा व्यवहार करनेकी जो प्रतिज्ञा लेनी उसे दिग्व्रत कहते हैं । तीर्थयात्रा व धर्म सम्बन्धी कार्यके लिये मर्यादा नहीं होती है जैसा ज्ञानानन्दश्रावकाचारमें कहा है "क्षेत्रका प्रमाण सावद्य योगके अर्थ करै धर्मके अर्थ नहीं करे । धर्मके अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाहीं ।" गृहस्थीको अपनी तृष्णाको रोकनेके लिये यह व्रत करना चाहिये । जहांतक उसको व्यापारादि करना हो वहां तककी अपनी इच्छानुसार हद्द बांध ले । फिर उस हद्दके बाहरके लिये चाह न करे । जैसे किसीको भारतवर्षके सिवाय अन्य यूरोपीय आदि देशोंसे भी व्यवहार करना है तो जहां तक आवश्यक्ता हो वहां तक रख ले शेषका त्याग करे । चार दिशा चार विदिशामें व ऊपर व नीचे १० दिशाओंमें कोस व मीलोंके प्रमाणसे व प्रसिद्ध स्थान जैसे नदी पर्वत आदिकी हद्द कायम करता हुआ प्रतिज्ञा लेले । जैसे यह प्रतिज्ञा लेवे कि ८ दिशा-

ओंमें हरएकमें १००० कोसकी तथा ऊपर नीचे पांच पांच कोसकी हद्द रक्खी अथवा यों प्रमाण करे कि पूर्वमें अमुक नदी, पश्चिममें अमुक पहाड़, दक्षिणमें अमुक नगर, उत्तरमें अमुक पहाड़ी—ऐसे ही विदिशा व ऊपर नीचेका प्रमाण करे। जिस जगह जो जमीनकी सतह हो उससे यदि किसी पर्वतपर चढ़े तो यदि पांच कोसकी मर्यादा है तो उतना ही जावे। वैसे ही उससे नीचे किसी खान व खंदकमें जितनी मर्यादा हो उससे अधिक न जावे।

इस दिग्व्रतसे बड़ाभारी लाभ यह होता है कि जहां तक हद रख ली है उसके आगे जाने आने लेनदेन करनेका त्याग होनेसे इच्छा रुक जाती है, लोभादि कषाय घटते हैं। कषाय घटानेसे ही इस जीवका भला है।

इस व्रतके भी पांच अतीचार हैं:—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि।

(उमास्वामी)

१. ऊर्धव्यतिक्रम—ऊपर जानेका जो प्रमाण किया होय उसको विना विचार भूलसे उल्लंघन कर जाय याने हद्दसे ज्यादा चला जाय।

(अनाभोग व्यतिक्रमादिभिः अतीचाराः) (सा० धर्मा०)

२. अधः व्यतिक्रम—नीचे जानेका जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर ज्यादा चला जाय। (ऊपरके समान)।

३. तिर्यक् व्यतिक्रम–८ दिशाओंमें जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर अधिक चला जाय।

(ऊपरके समान)

४. क्षेत्र-वृद्धि "व्यासग मोह प्रमादादिवशेन लोभावेशात् योजनादि परिच्छन्न दिक् संख्यायाः अधिकाक्षणं क्षेत्रवृद्धिरुच्यते यथा मान्याखेटा-वस्थितेन केनचित् श्रावकेन क्षेत्रपरिमाणं यत् धारापुरी लंघन मया न कर्तव्यं इति पश्चात् उज्जयिन्यां अनेन भांडेन् महान लाभो भवति तत्र गमनाकांक्षा गमनं च क्षेत्र वृद्धिः। दक्षिणा पथा गतस्य धाराया उज्जयिनी पंचविंशतिगव्यूतिभिः किंचिन्न्यूनाधिकाभिः परतो वर्तते।

(स्वा० सं० टीका)

भावार्थ–मोह प्रमादादिके वशसे व लोभके वशमें आकर जितने योजनका प्रमाण जिस दिशाका किया हो उसको बढ़ा लेना सो क्षेत्रवृद्धि है। जैसे मान्यखेट निवासी किसी श्रावकने यह परिमाण किया कि मैं धारापुरीको लांघ कर नहीं जाऊंगा, परन्तु पीछे उज्जैनीमें महान लाभ होता जान वहां जानेकी इच्छा करनी व चला जाना सो क्षेत्रवृद्धि है। दक्षिण मार्गसे जाने वालेके लिये धारापुरीसे उज्जैनी २५ कोससे कुछ कम व अधिक आगे है।

नोट–ऐसे बढ़ाने वालेके यह अभिप्राय रहता है कि एक तरफ बढ़ा लो दूसरी तरफ घटा देंगे–सो यह अतीचार है।

५. स्मृत्यन्तराधान–जो मर्यादा ली हो उसको स्मरण न रखना। इसका अतीचार इस तरह होगा कि जैसे किसीने १०० कोसकी मर्यादा ली थी अब वह उस ओर गया और जाते २ याद न रहनेसे शंका आ गई कि मर्यादा १०० कोसकी थी कि ५० की। ऐसी दशामें यदि ५० से आगे गया तो अतीचार हो जायगा।

व्रती श्रावकको उचित है कि इस व्रतको भली प्रकार पाले।

दूसरा गुणव्रत अनर्थदण्ड-त्याग।

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं च विदुर्व्रतधराग्रण्यः॥ ७४ ॥

(र० क०)

अर्थ—जो दिशाओंकी मर्यादा की होय उसके भीतर बेमतलब पापरूप मन, वचन, कायकी क्रियाओंसे विरक्त रहना सो अनर्थ-दंड त्यागव्रत है—ऐसा महामुनियोंने कहा है।

जिसमें अपना कोई भी कार्य्य न सधै ऐसे पापोंका करना सो अनर्थदंड है।

यह पांच प्रकारका होता है:—

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः॥ ७५ ॥

(र० क०)

अर्थ—पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति तथा प्रमाद-चर्य्या—ऐसे ये पांच भेद मुनियोंने कहे हैं।

१. पापोपदेश—दूसरोंको पापमें प्रवर्तनेका उपदेश देना। जैसे वनके दाह करनेका, पशुओंके वाणिज्यका, शस्त्रादिके व्यापारका इत्यादि अन्य जीवोंको कष्ट पहुंचे ऐसे कार्य्योंके करनेका अथवा हिंसामई व्यापारोंका उपदेश दूसरोंको देना। जैसे किसी शिकारीसे कहना कि "अरे तू क्यों सुस्त बैठा है, देख इधरसे हिरण भागते गये हैं अथवा अमुक देशसे घोड़े आदिकोंको पक-

ड़कर अमुक देशमें वेचा जाय तो बहुत धनकी प्राप्ति हो इत्यादि।" यदि यह न कहता तो यह हिंसामई कार्य्यमें न प्रवर्तता और कुछ भी काम करता, परन्तु इसके कहनेसे वह अधिक हिंसाके कामोंमें प्रवर्तन करने लगा और इसका इस कार्यके करनेमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। जैसा कहा है:-

तिर्यक्क्लेशवाणिज्याहिंसारम्भ प्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसङ्ग प्रसवः स्मर्तव्यः पापउपदेशः॥ ७६॥
(र० क०)

२. हिंसादान।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गशृंखलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः॥ ७७॥
(र० क०)

अर्थ-फरसी, तलवार, कुदाड़ी, अग्नि, हथियार, सांकल (जंजीर) शृङ्ग (सींग) आदि पदार्थ जिनसे दूसरे जीवोंका वध हो ऐसी चीजोंको दान करना उसे हिंसादान अनर्थदंड कहते हैं। जैसे अपना कोई मतलब नहीं है और किसीने हमसे हिंसाकारी चीजें मांगी तो दे देनेमें मालूम नहीं वह कितनी व कैसी हिंसा करे-इससे अनर्थ पापका बंध होता है। इस कारण हथियार, जाल आदि पदार्थोंके दान करनेमें अपनी महंतता समझना पाप है। पंडित आशाधरका कथन है:-कि आग, मूसल आदि भोजन पकानेके पदार्थ "परस्परं व्यवहारविषयात अन्यत्र न दद्यात्।" आपसमें व्यवहार हो उसके सिवाय और किसीको न देवे। यहां प्रयोजन यह मालूम होता है कि जैसे ४ गृहस्थी श्रावक एक

मकानमें व अड़ौस पड़ौसमें रहते हैं उनके आपसमें किसी कमती बढ़ती चीजके लेनदेनका व्यवहार है तो उस हालतमें जब कि यह जानता हो कि यह इन चीजोंसे यत्नपूर्वक काम लेगा तो आग व खरल मूसलादि भोजन पकानेकी चीजें परस्पर दी ली जांय तो हिंसादानअनर्थदंड नहीं है। प्रत्येक कार्य्यमें विचारकी जरूरत है।

अपध्यान।

बन्धवधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः॥७८

(र० क०)

अर्थ—राग और द्वेषके वशमें होकर किसीके बंधनमें पड़नेका व मारे जानेका व छेदन किये जानेका तथा परस्त्री आदिके हरनेका जो वारंवार विचार करना व सोच करना सो अपध्यान है—ऐसा जिनशासनमें महान् पुरुषोंने कहा है। अर्थात् बैठे २ किसीकी बुराई विचारनी, जीत हार विचारनी इत्यादि विना मतलब खोटा ध्यान करना सो अपध्यान अनर्थदंड है।

४. दुःश्रुति।

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।
चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति॥७९॥

(र० क०)

अर्थ—जिन कथाओंके पढ़ने सुननेसे मनमें कलुषता याने मलीनपना हो जाय जैसे आरंभपरिग्रह बढ़ानेवाली, पापकर्मोंमें हिम्मत करनेवाली तथा मिथ्याभाव, राग, द्वेष, अभिमान अथवा कामदेवको प्रगट करनेवाली कथाओंका पढ़ना सुनना दुःश्रुति है।

बहुधा लोक कहानी किस्से उपन्यास पढ़नेमें अपना समय लगाते हैं सो सब अनर्थदंड है ।

नोट–कोई पुस्तक विचारवानोंके द्वारा गुण औगुणकी परीक्षाके अर्थ व कर्त्ताकी बुद्धिकी जाचके अर्थ पढ़े जाना व मिथ्यामार्गको दूर करनेके अर्थ पढ़े जाना सो दुःश्रुति नहीं होगी, क्योंकि वहां अभिप्राय एक खास उपकारी प्रयोजनका है ।

५. प्रमादचर्य्या ।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम् ।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्य्या प्रभाषन्ते ॥ ८० ॥

(र० क०)

अर्थ—बेमतलब जमीन खोदना, पानी गिराना, आग जलाना, हवा करना व वृक्षादि छेदना व चलना, चलाना सो सब प्रमादचर्य्या है–ऐसा कहते हैं । विना किसी अर्थके प्रमादसे एकेन्द्री आदि जीवोंको तकलीफ देना सो प्रमादचर्य्या है । जैसे रास्तेमें चलते चलते झाड़के पत्ते नोच लेना, थोड़े पानीसे काम चले तौभी ज्यादा पानी गुंधाना आदि ।

इस अनर्थदंडव्रतके पांच अतीचार हैं:—

सूत्र–कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्य्यासमीक्ष्याधिकरणोप-भोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ (उमास्वा०)

१. कंदर्प–नीच पुरुषोंके योग्य हंसी मशकरीके भांडरूप वचन बोलना ।

२. कौत्कुच्य–भांड वचनोंके साथ २ कायसे खोटी चेष्टा भी करनी, जैसे मुंह चिढ़ाना ।

३. मौखर्य्य—बहुत बकवाद करनी अर्थात् जो बात थोड़ेमें कही जाय उसके लिये बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी बात बनाकर बेमतलब व्यवहार करना।

४. असमीक्ष्याधिकरण—बिना बिचारे आरंभी वस्तुओंको इकट्ठा करना व अधिक मकानादि बनाकर जैसे सकट, ऊंट, घोड़े बहुतसे जमा करना इस अभिप्रायसे कि जो मुझे जरूरत न होगी तो दूसरे लोग मुझसे ले लेंगे अथवा प्रयोजन विना मन, वचन, कायको अधिकतासे प्रवर्तन करना।

५. भोगोपभोगानर्थक्य—भोग जो एक दफे काममें आसके जैसे भोजन व फूलमाला। उपभोग—जो बारंबार काममें आसके जैसे कपड़ा—इनका अनर्थ व्यवहार करना अर्थात चाहिये थोड़ा और बहुत लेकर खराब करना जैसे कोई आदमी नदी किनारे स्नानको गया और जितना चाहिये उससे अधिक तेल ले गया, वहां जो बचा सो औरोंको दिया, सर्व जनोंने तेल लगा नदीमें स्नान किया जिससे अधिक हिंसा हुई। इसका दूसरा नाम सेव्यार्थाधिकता है यानें सेवने योग्य पदार्थ अधिक रखना। इसी प्रकार थालीमें ज्यादा भोजन पुरसा लेना जो आप खा न सके और वृथा फेकना पड़े। विवेकबुद्धि रखनेसे व समय और अपनी शक्तियोंकी कदर करनेसे ये सर्व दोष सहजमें टल सकते हैं।

तीसरा गुणव्रत भोगोपभोगपरिमाण।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये॥ ८२॥

(र० क०)

अर्थ–जो प्रयोजनभूत इन्द्रियोंके विषय हैं उनकी गिनती किसी काल तकके लिये राग, रति आदि कषायोंके कम करनेके लिये करना सो भोगोपभोगपरिणाम है।

बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जिनमें फल याने लाभ तो थोड़ा और पाप बहुत है। इनको जन्म भरके लिये छोड़ना चाहिये।

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीत निम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ ८५ ॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धि कृताविरतिर्विषयाद्योग्याद् व्रतं भवति

(र० क०)

नालिसूरण कालिंद द्रोणपुष्पादिवर्जयेत्।
आजन्मतद्भुजां ह्यल्पफलं घातश्च भूयसाम् ॥ १६ ॥
अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदाहेयादयापरैः।
यदेकमपितं हन्तुं प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥ १७ ॥

(सा० ध०)

भावार्थ–थोड़ा लाभ और बहुत हिंसाको उत्पन्न करनेवाली जो चीजें हैं उनको आजन्म छोड़ना चाहिये। जैसे आर्द्राणि कहिये सचित्त मूलक (याने जो तरकारी जड़रूप काममें आवे) जैसे मूली, अदरक, शृंगवेर, नवनीत याने मक्खन, नीमके फूल, केतकी, नालि सूरण कमलकी जड व डंडी, कालिद (तरबूज) द्रोणफूल आदि। जैसे गोभी, कचनार अथवा सर्व अनन्त काय यानें जिस एकके नाश करनेसे बहुतोंकी हिंसा हो ऐसी साधारण वनस्पति। जैसे कन्दमूल, आलू, घुइयां यानें वे सब फल जो

जमीनके नीचे फले तथा और अन्य भी अनन्त काय जैसा श्रीगोमट्टसार अभयचंद्र संस्कृत टीकामें कहा है:—

यत् प्रत्येक शरीरं गूढ़सिरं अदृश्य बहि:स्नायुकं, गूढ़संधि अदृश्यसंधिरेखाबंधं, गूढ़पर्वं अदृश्य गृन्थिकं, समभंगत्वक् रहितत्वेन सदृशछेदं, अहीरुहं अंतर्गतसूत्र रहितं, छिंन्न रोहतीति छिन्नरुहं, च तत्शरीरसाधारणं साधारण जीवाश्रितत्वेन साधारणम् इति उपचारेण प्रतिष्ठितशरीरं इत्यर्थः तद् विपरीतं गूढ़ शिरत्वादि पूर्वोक्त लक्षण रहितं तालनालकेरादि शरीरं अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरं ॥

भावार्थ—जिन वनस्पतियोंका सिर गूढ़ हो याने वाहेरका सिरा मालूम न पड़े, संधिगूढ़ हो याने संधिकी लकीरोंका बंधन न दीख पड़े (परमाणु मिलते हुए लकीरें बन जाती हैं) गूढ़ पर्व हों यानें उनकी गांठ न मालूम पड़े (जैसे गन्नेमें पर्व होती है) समभंग हों याने बराबर २ टुकड़े हो जांय, त्वचा छालका सम्बन्ध न रहे, अहीरुह हों यानें जिनके भीतर सूत्र याने तार न हो, छिन्नरुह यानें जिनको तोड़कर बोनेसे जम जावें—ये सर्व वनस्पति साधारण हैं याने उनमें साधारण जीव अनन्त हैं। इन्हींको प्रतिष्ठितप्रत्येक कहते हैं। इन लक्षणोंसे जो रहित हों जैसे नारियल, ताड़ आदि वे सब अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं याने अनन्त कायसे आश्रित नहीं हैं।

नोट—मालूम होता है इन ६ लक्षणोंमें कोई किसी कोई किसी वनस्पतिके पाया जायगा, सब एकके संभव नहीं होता मालूम होते हैं। यह विषय जांच करने योग्य है।

गाथा-मूले कंदे छल्ली पवाले साले दले सुकुम फले बीजे ।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ।

याने—जड़ें, घड़ें, छालें (त्वचा,) नये पैंत्ते याने कोंपल, छोटी शाखें, पैंत्ते, फूलें, फलें, बीजें धान्यादि—ये ९ चीजें यदि बराबर छालरहित भग हो जांय तब तो साधारण हैं नहीं तो प्रत्येक है । इसके सिवाय जिन वस्तुओंके खानेसे रोग आदिकी संभावना माद्धम पड़े व ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न करता हो वे सर्व अनिष्ट हैं, उनको भी त्यागना चाहिये । तथा जो उत्तम कुलके ग्रहण योग्य नहीं—ऐसी सर्व वस्तु अनुपसेव्य हैं उनको भी छोड़ना चाहिये । जैसे ऊंटका दूध, गायका मूत्र, संख, हाथीके दांत, हड्डीके बटन, झूठा भोजन आदि ।

नीचे लिखे पदार्थ भी आजन्म त्यागने योग्य हैं:—

आमं गोरस सम्पृक्त द्विदल प्राय सोऽनवम् ।
वर्षास्वदलितं चात्र पत्र शाके च नाहरेत् ॥ १८ ॥ (सा० ध०)

अर्थ—मुद्र माषादिधान्यं आमेन अनग्निपक्वेन गोरसेन, क्षीरेण दध्ना अक्कथित क्षीरोद्भव संभूतेन तक्रेन च संपृक्तं मिलितं तत् हि सूक्ष्म बहु जन्तु आश्रितम् द्विदल अन्नं अनवम् पुराणं-प्रायः (शब्द) ग्रहणात् पुराणस्यापि चिरकाल कृष्णीभूत कुलछादेः अदृष्ट जंतुसंमूर्छस्य ।
अदलितं-प्रावृषि मुद्गादीना अन्तः प्ररोहस्य आयुर्वेदे प्रसिद्धत्वात् ।

भावार्थ—१. जिनकी दो दालें हो जाती हैं उन अन्नोंको द्विदल कहते हैं । जैसे मूंग, उरद, चने आदि । धान्यको बिना अग्निमें पके हुए याने कच्चे दूध या कच्चे दहीसे मिलाकर या बिना गर्म किये हुए दूधसे उत्पन्न छांछके साथमें मिलाकर जो चीज बनती है उसको द्विदल कहते हैं । ऐसी चीजोंको नहीं

खानी चाहिये, क्योंकि उसमें मुखकी रालके सम्बन्धसे बहुतसे त्रस जीव पैदा हो जाते हैं।

२. पुराना द्विदल अनाज न खावे। खासकर वह जिनके ऊपर कालापन आ जावे, क्योंकि उसमें संमूर्छन जीव पैदा होते हैं।

३. वर्षाऋतुमें विना दले हुए मूंग, मटर, चने आदि अनाजको न खाएं, क्योंकि भीतर वर्षाके कारण ऊग आया करते हैं—ऐसा आयुर्वेदमें भी कहा है।

४. पत्ते व शाकको भी नहीं खावे तथा जो वस्तु खाने योग्य है उनको २४ घंटेके लिये रोज सवेरे प्रमाण कर लेवे। ऐसी चीजें १७ हैं:—

भोजने षट्रसे पाने कुंकुमादि विलेपने, पुष्पे ताम्बूलगीतेषु नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके। स्नानं भूषणे वस्त्रादौ वाहने शयनाशने, सचित्तवस्तु संख्यादौ प्रमाणतः प्रकीर्तिता।

अथवा।

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्राङ्ग रागकुसुमेषु।
ताम्बूल वसन भूषण मन्मथ संगीतगीतेषु॥ ८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्त्तुरयणं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः॥८९॥

(र० क०)

नीचे लिखी १७ बातोंका प्रमाण करे:—

१. आज भोजन कै दफै करूंगा।

१. आज दूध, दही, घी, तेल, नमक, मीठा—इन छहमें से कौनसा रस छोड़ता हूं।

२. आज भोजनके सिवाय खाली पानी इतनी दफे पीऊंगा।

४. आज चंदन, उबटन, तेल लगाऊंगा या नहीं, यदि लगाऊंगा तो इतनी दफे।

५. आज फूल सूंघूंगा कि नहीं, यदि सूंघूंगा तो इतनी दफे।

६. आज ताम्बूल नहीं खाऊंगा, यदि खाऊंगा तो इतनी दफे।

७. आज गीत बाजा नहीं सुनूंगा, यदि सुनूंगा, तो इतनी दफे।

८. आज नाच नाटकादि नहीं देखूंगा, यदि देखूंगा तो इतनी दफे।

९. आज ब्रह्मचर्य पालूंगा, यदि न पालूं तो इतनी बार स्वस्त्रीसे खंडित करूंगा।

१०. आज स्नान नहीं करूंगा, यदि करूंगा तो इतनी दफे।

११. आज आभूषण नहीं पहनूंगा, यदि पहनूंगा तो इतने।

१२. आज वस्त्र इतने जोड़से अधिक न पहनूंगा।

१३. आज वाहनपर न चढूंगा, यदि चढूंगा तो इतने वाहनों-पर इतनी दफे चढूंगा।

१४. आज इतने प्रकारके शय्यादिकोंपर शयन करूंगा।

१५. आज इतने प्रकारके आसनोंपर सोऊंगा।

१६. आज हरी तरकारी इतनी खाऊंगा। आज कच्चा पानी नहीं पीऊंगा।

१७. आज भोजनमें कुल इतनी वस्तुएं लूंगा।

इस तरह १७ बातोंका नियम रोज करे। एक तख्तेपर व १ कापीमें १७ बातोंके खानें बना लेवे उसीको रोज देख लेवे तथा पेन्सलसे संख्या लिख देवे। दूसरे दिन रबरसे बिगाड़ उस स्थानपर अन्य संख्या लिख देवे, यदि बदलना होवे तो। इन नियमादिके करनेके लिये नियमपोथी नामकी पुस्तक संकलित की गई है जिससे नियम करनेका बहुत सुभीता है। इस व्रतके ५ अतीचारोंको बचावें।

सूत्र-

सचित्त सचित्तसंबंध सन्मिश्राभिषव दुःपक्वाहाराः।

(उमास्वा०)

१. सचित्त—जो हरी तरकारी त्यागकर चुका है उसको भूलसे खाजाना अथवा कच्चा पानी त्यागा होय और भूलसे कच्चा पानी पी लेना।

२. सचित्तसंबंध—सचित्तसंबंध मात्रेण दूषित आहारः-जैसे त्यागे हुए हरे पत्तेपर रक्खा हुआ भोजन अथवा सचित्त संबध गोदादिकं पक्व फलादिकं वा सचित्त अतर्बीज खर्जूराम्रादि च, तद् भक्षणं हि सचित्त वर्जकस्य प्रमादादिना सावद्याहारप्रवृत्तिरूपत्वात् अतीचारः अथवा बीजं त्यक्ष्यामि तस्यैव सचेतनत्वात्। कटाहं तु भक्षयिष्यामि तस्य अचेतनत्व त् इति बुद्धया पक्व खर्जूरादि फलं मुखे प्रक्षिपतः सचित्त वर्जकस्य सचित्त प्रतिबद्धाहारो ॥

(सा० ध०)

अर्थात्–गोदादिक पके फल व आम खजूर आदि फल जिनके अन्दर बीज हो उनको खा लेना सो सचित्त त्यागीके अतीचार हैं, क्योंकि प्रमाद करके सचित्त बीजको उसने अलग नहीं किया है। अथवा यह विचार करके पका आम खजूर आदि फल मुंहमें डाल दे कि मैं इनके बीजोंको तो थूंक दूंगा, क्योंकि वह सचित्त हैं और उसके गूदेको खा जाऊंगा, क्योंकि वह अचित्त हैं–ऐसा करना सचित्तत्यागीके लिये सचित्तसम्बन्ध अतीचार है।

३–सचित्तसन्मिश्र–सचित्तद्रव्य सूक्ष्मप्राण्यतिमिश्रः। अशक्यभेदकरणः अर्थात् सचित्त द्रव्य आहारसे इस कदर मिल गया हो कि उस सचित्तको अलग न किया जा सके उसे खाना अथवा आर्द्रक दाडिम चिर्भटादि मिश्रं पूरणादिकं तिलमिश्रं च यवदानादिकं।

अर्थात् अदरक, अनार, खीरा, ककड़ी आदि द्रव्योंसे मिला हुआ पूरण यानें लप्सी आदिकी बनी रोटी व तिलसे मिले हुए जवके दाने आदि।

४. अभिषव–अत्यन्त पुष्ट व कठिनतासे हजम होने लायक आहार।

रात्रिचतुः प्रहरैः क्लिन्न उदनोद्रवः इन्द्रियबलवर्द्धनो माषादि विकारादिः वृष्यः द्रव्यवृष्यस्य आहारः।

अर्थात् चार पहर रातका वासी उदनोद्रव या इन्द्रिय बलको बढ़ानेवाले उरदसे बने हुए पदार्थ वृष्य हैं, ऐसा भोजन सो द्रव्यवृष्यका आहार है।

दुष्पक्व–जो खराब व कम पका हुआ हो व अधपका हो

सांतस्तंदूलभावेन अति क्लेदनेन वा दुष्टपक्वं मंद पक्वं। तच्चा-र्द्धपक्वं पृथुक तंदुल यव गोधूम स्थूल मंडकं (मांड) फलादिकं आम-दोषवहत्त्वेन ऐहिक प्रत्यवाय कारणं तथा यावतांशेन तत्सचेतनं तावता-परलोकमपि उपहंति ॥ (सा० ध०)

अर्थात् भीतर चांवल अत्यंत ही पक गया हो या खराब पका जैसे जल गया हो या कम पका हो तथा अधपका हो जैसे साली जौं, गेहूं, मंडक व अन्य फल आदि कच्चे रहनेसे शरीरको हानिकारक है तथा जितने अंशमें वह सचेतन हैं याने कच्चे हैं उतने अंशमें परलोकका भी बिगाड़ करते हैं।

वृष्यदुःपक्वयोः सेवनेसति इन्द्रिय मदवृद्धिः सचित्तोपयोगः वातादि प्रकोपोदर पीड़ादि प्रतीकारे अग्न्यादि प्रज्वालने महान् असयमः ॥
(स्वा० सं० टीका)

अर्थात्—पुष्ट और खराब पके भोजनके खानेसे इन्द्रिय मदकी वृद्धि होती है, सचित्तका उपयोग होता है तथा वात आदिका प्रकोप हो जाता है, पेटमें दर्द उठ आता है, अग्नि आदि जल उठती है जिससे बहुत असंयम हो जाता है।

नोट—व्रती प्रतिमावालेको बहुधा सचित भोजन त्यागका नियम रहता है इसीसे ऊपरके अतीचार इसी खयालसे लिखे गये हैं। यद्यपि इसके लिये यह जरूरी ही नहीं है कि यह सचितको त्यागे ही, परन्तु नियम करना जरूर है।

तथापि खास २ तिथियोंपर खास २ पर्वोंपर जैसे अष्टमी, चौदस, अष्टान्हिका आदिमे अवश्य सचित्तको त्यागता है तब कच्चा पानी व कोई सचित्त फल आदि नहीं खाता है, परन्तु अचित्त कहिये प्राशुक जल व उचित अन्नादि व्यवहार करता है।

प्रश्न–अन्न व फल अचित्त कैसे हो जाता है ?

उत्तर–तत्तं पक्कं सुक्कं अंबलि लवणेहिं मिस्सियं दव्वं।
अ जं तेण य छिन्नं तं सव्वं पासुकं भणिय। (स्वा० की सं० टीका)

जो वस्तु अग्निसे तप्त याने खूब गरम करली जाय व पक जाय, धूपमें या अग्निमें पक जावे, सूख जावे या आंवला कहिये कषायला पदार्थ और लोण अदिको मिला दिया जावे व जो वस्तु यंत्रसे छिन्न भिन्न कर दी जाय वह वस्तु प्राशुक हो जाती है। जैसे पानी गर्म किया हुआ व लौंग आदि द्रव्योंसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदला हुआ; अन्न पकाया हुआ, फल सुखा हुआ या छिन्न भिन्न कर दिया गया।

पंडित आशाधरके ऊपरके अतीचारोंके लेखसे ऐसा मालूम होता है कि जो आम्र या खजूर पका हुआ हो उसका ऊपरका गूदा अचित्त है, परन्तु उसके भीतरकी गुठली सचित्त है। इस अपेक्षासे जैसे हम सचित्त अन्नको पीस करके व भूज करके व अग्निमें पका करके अचित्त करते हैं–ऐसे ही सचित्त फलको पीस करके व आगमें पका करके व सुखा करके व उसको किसी यंत्रसे छिन्न भिन्न कर देनेसे या नोन मिर्च खटाई व दूसरी कषायली चीजको मिला देनेसे अचित्त कर सक्ते हैं अथवा पके फलकी गुठली निकाल गूदा खा सक्ते हैं। परन्तु यदि उसके गूदेके पके होनेमें सन्देह हो तो कषायला द्रव्यादि मिला लेवे। सचित्तका त्यागी अचित्तका व्यवहारकर सक्ता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रश्न–जब ऐसा है तब अष्टमी चतुर्दशीको हरी तरकारीको अग्निसे पकाने पर क्या दोष होगा ?

उत्तर—यद्यपि सचित्तका त्यागी अचित्त व्यवहारके हेतु ऐसा करे तो उसकी प्रतिज्ञा मात्रकी अपेक्षासे उसको कोई दोष न होगा। तथापि आजकल व्यवहारमें जो यह रीति है कि जिस हरी तरकारीका त्याग होता है उसको उस दिन नहीं पकाते हैं। यह इस कारण कि यदि रोजके समान ही वह तरकारी लाकर पकाता है तो उसके परिणामोंसे राग भावकी बहुत तुच्छ कमी होती है। इसके विरुद्ध यदि वह रोजके समान तरकारी न मंगावे तो उसको अपने परिणामोंमें यह विदित होता है कि मैंने कुछ त्याग किया है अर्थात् संयम धारण किया है। इससे परिणामोंमें रागकी विशेष कमी रहती है। अतएव यह प्रवृत्ति कषाय मंदताके कारणसे बुरी नहीं है। मात्र सचित अवस्थाके त्यागकी अपेक्षा यदि कोई उस सचित्त वस्तुको ग्रहण करके अचित्त करनेका भी त्याग करे तो उसके रागकी अत्यन्त मन्दता है। इस कारण इस प्रवृत्तिको उठाना योग्य नहीं है, क्योंकि इस आरम्भके त्यागसे एकेन्द्री जीवोंके घातसे भी वह वच गया। तथापि जो केवल सचित्त मात्र वस्तुका त्यागी है उसके लिये अचित्त वस्तु लेना सर्वथा निषेध नहीं है तथा वह सचित्तको अचित्त कर भी सक्ता है। परन्तु ऐसा करनेसे वह एकेन्द्री जीवोंकी हिंसा नहीं बचा सक्ता।

प्रश्न—२. यदि कोई उस दिन तरकारीको न पकावे, परन्तु कई दिन पहलेसे ही हरी तरकारीको मंगाकर सुखा लेवै तो इसमें क्या दोष है?

उत्तर—इसका भी उत्तर पहलेके समान है अर्थात् जो मात्र

सचित्त अवस्थाका त्यागी है वह अचित्त कर सक्ता है। परन्तु यदि वह उस दिन हरीको पकाना नहीं चाहता तो भीतर परिणामोंमें राग भावकी जांच करके देखा जाय तो उसको सुखाना भी नहीं चाहिये, क्योंकि राग भावकी कमी नहीं भई। परन्तु जो चीज आमतौरसे स्वयं हाटमें सूखी हुई मिलती है उसको लेकर व्यवहार कर सक्ता है। इसलिये अपने आप न सुखाकर आमतौरसे मिलनेवाली सूखी वस्तु लेनेकी जो प्रवृत्ति वर्तमानमें है उसको भी उठाना योग्य नहीं है। भोगोपभोगपरिमाणव्रतका करनेवाला यदि किसी दिन सर्व सचित्तको त्यागे तो उसको अचित्त ग्रहण करनेका त्याग नहीं है।

तौभी त्याग नौ प्रकारसे हो सक्ता है, मन बचन काय द्वारा करना, कराना व अनुमोदना नहीं करना जो इस नौ प्रकारसे खाने, खिलाने आदिका त्याग करते वे उसी बातके त्यागी हैं जो सचित्तको अचित्त न करनेका, न कराने आदिका त्याग करते वे उस बातके त्यागी हैं परिणामोंमें कषाय घटानेके लिये बाहर त्याग निमित्त मात्र है, जितनी कषाय घटे उतना त्यागे।

जिनमतमें मूल अभिप्राय कषायोंके मंद करनेका है। अतएव जिस तरह अपना रागभाव घटे उस तरह चलना चाहिये।

आगे चार शिक्षाव्रतोंको कहते हैं:—

१—प्रथम शिक्षाव्रत—देशावकाशिक शिक्षाव्रत है।

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य॥ ९५॥

(र० क०)

भावार्थ—जो परिमाण दशों दिशाओंका दिग्व्रतमें किया जा चुका हो उसमेंसे प्रतिदिन किसी नियमित कालके लिये थोड़ा परिमाण रखकर बाकीका त्याग करना सो देशावकाशिक या देशव्रत है।

दिग्व्रतमें जन्म पर्यंतके लिये दशों दिशाओंमें बहुत बड़ा क्षेत्र रखना होता है, परन्तु रोज इतने क्षेत्रसे किसीका प्रयोजन नहीं रहता। इसलिये अपने संतोषको व पापोंकी प्रवृत्तिके रोकनेको स्थिर करनेके लिये जितने क्षेत्रमें जाने आने, व्यापार लेनदेन, चिट्ठी पत्रीका सम्बन्ध जाने उतने क्षेत्रकी मर्यादा एक दिन, दो दिन, चार दिन, पक्ष, मास, चार मास, छह मास तथा एक वर्ष तकके लिये जैसा अपना निर्वाह समझे कर लेवे। जैसे किसीको ८ दिशाओंमें एक २ हजार कोसका व ऊपर नीचे २९ कोसका प्रमाण है, परन्तु आज उसकी इच्छा है कि मैं अपने नगरसे बाहर न जाऊं और न किसीको भेजूं तो वह अपने नगरकी आठों दिशाओंकी हदबन्दीके अन्दरका प्रमाण कर ले तथा ऊपर नीचे ५० गज व जितनी इच्छा हो रख ले। दूसरा दिन लगनेपर दूसरा प्रमाण करे।

देशव्रती ऐसा भी प्रमाण कर सक्ता है कि आज १२ घंटे तक मैं इस घरसे बाहर कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा, यहीं बैठा २ क्रिया करूंगा अथवा किसीको रोज़ अपने नगरसे बाहर जानेका तो काम नहीं पड़ता, परन्तु आदमी व पत्र व वस्तु भेजने व पत्रादि मंगानेका काम पड़ता है तो वह यह विचारे कि मैं कहां तक ऐसा सम्बन्ध आज करूंगा। ऐसा समझकर यह प्रमाण

कर सक्ता है कि मैं अपने नगरसे बाहर नहीं जाऊंगा तथा भेजना व मंगाना आठों दिशाओंमें सौ सौ कोस व ऊपर नीचे २० गज तक करूंगा अथवा १ बाजार व रास्ते व अमुक सड़क तक आज मेरे व्यवहार है शेषका त्याग है। इस तरह प्रमाण किया जा सक्ता है।

इस व्रतके धारीको ५ अतीचार बचाने चाहियेः—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः॥३१॥
(त० सू०)

भावार्थ—१. दशों दिशाओंमें जितने स्थानकी हद्द जितने काल तक बांध ली हो उतने काल तक उतने स्थानसे बाहरकी जगहसे किसीको बुलावे व कोई चीज मंगा लेवे सो आनयन नाम पहला अतीचार है। जैसे किसीने आठों दिशाओंमें पचास २ कोसकी मर्यादा की, लेकिन कोई माल बहुत बड़े लाभका पूर्व दिशाकी ओर अपनी मर्यादासे १ हाथ दूरपर आया हुआ है— ऐसा सुनकर यह विचार किया कि हम पश्चिमकी ओर २५ कोससे आगेकी कोई चीज न मंगावेंगे इसके बदलेमें इस मालको मंगा लेवें तो बड़ा लाभ हो—ऐसा सोचकर उसको मंगा लेना सो आनयन नामा अतीचार है। इसमें व्रत सर्वथा तो नहीं तोड़ा गया, किन्तु एक देश खंड किया गया, इससे यह अतीचार भया।

२. मर्यादा की हुई जगहसे बाहर वस्तुओंको भेजना सो प्रेष्यप्रयोग नामा अतीचार है। इसका स्वरूप भी ऊपरके समान जानना।

३. मर्यादाके बाहर कोई काम आ पड़ने पर आप तो न

जाना, किन्तु अपना शब्द ऐसा बोल देना जिससे मर्यादाके बाहरका आदमी सुन ले और कामका परस्पर भुगतान हो जावे,—सो शब्दानुपात नामा तीसरा अतीचार है।

४. मर्यादाके बाहर कोई काम आ पड़ने पर आप तो न जाना और न शब्द बोलना, परन्तु दूसरेको अपने रूपका इशारा बताकर समस्या कर देना—सो रूपानुपात नामा अतीचार है।

५. मर्यादाके बाहर कोई कार्य्य होने पर आप तो न जाना, न बोलना न इशारा दिखाना, परन्तु कंकड़ पत्थर व पत्र आदि पुद्गलोंको भेजकर अपना काम जंचा देना व कोई भी लौकिक प्रयोजन सिद्ध कर लेना सो पुद्गलक्षेप नामा पंच अतीचार है।

मर्यादा रखते समय यदि व्रतीका भाव न्यायरूप, सत्य श्रृद्धा रूप दृढ़ होगा तो विना यत्न ही कोई दोष नहीं लगने पावेगा।

२. दूसरा शिक्षाव्रत सामायिक है।

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाधानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७

(र० क०)

भावार्थ—मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना करके सर्व स्थानोंमें यहां व बाहर किसी नियत काल तक पांचों पापोंका त्याग करना अर्थात् धर्मकी भावनामें रह शुभ व अशुभ लौकिक पदार्थोंपर समभाव रखना सो सामायिक है—ऐसा गणधरादिकोंने कहा है।

सामायिककी व्याख्या इस प्रकार है:—

सम् एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्त्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयम् अहं ज्ञाता दृष्टा च इति आत्मविषयोपयोगः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकस्य संभवात्। अथवा समे रागद्वेषाभ्यां अनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनं अस्य इति सामायिकं ॥ (श्री गोमट्टसार स० टीका श्रुतज्ञान प्र० अभयचंद्र)

भावार्थ—अपने आत्माके विना सर्व पर द्रव्योंसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आत्मस्वरूपमें ही एक रूप होकर उपयोगको प्रवर्त करना अर्थात् यह अनुभव करना कि मैं ज्ञाता दृष्टा हूं (क्योंकि एक ही आत्मा जाननेवाला ज्ञायक भी है और जानने योग्य ज्ञेय भी है) सो समाय है। अथवा रागद्वेषोंको हटाकर माध्यस्थ भावरूप समतामें लीन ऐसा जो आत्मस्वरूप उसमें अपने उपयोगको चलाना सो समाय है। जिस क्रियाका समाय करना प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं।

सामायिकके छह भेद हैं:—

१. नामसामायिक—सामायिकमें लवलीन आत्माके ध्यानमें अच्छे या बुरे नाम आजांय तो उनसे रागद्वेष नहीं करके समभाव रखना, सर्व नामोंको व्यवहार मात्र जानना, निश्चय अपेक्षा हेय जानना, शुभ नामोंसे अनुराग अशुभ नामोंसे द्वेष न करना सो नामसामायिक है।

२. स्थापनासामायिक—सुहावने व असुहावने स्त्री पुरुषादिकोंकी मूर्ति व चित्र खयालमें आनेपर उनसे रागद्वेष न करके सर्वको पुद्गलमई एक रूप समझना सो स्थापनासामायिक है।

३. द्रव्यसामायिक–इष्ट व अनिष्ट, चेतन व अचेतन द्रव्योंमें रागद्वेष न करके अपने स्वरूपमें उपयोगको रखना सो द्रव्यसामायिक है।

४. क्षेत्रसामायिक–सुहावने व असुहावने ग्राम, नगर, वन, मकान व और किसी भी स्थानका खयाल होनेपर उसमें रागद्वेष न करके सर्व आकाशको एक रूप क्षेत्र जान स्वक्षेत्रमें तन्मय होना सो क्षेत्रसामायिक है।

५. कालसामायिक–अच्छी व बुरी ऋतु, शुक्ल कृष्णपक्ष, शुभ व अशुभ दिन, वार, नक्षत्र आदिका खयाल आनेपर किसीमें राग व द्वेष न करके सर्व कालको एक व्यवहार कालरूप मानकर अपने स्वरूपमें स्थिर रहना सो कालसामायिक है।

६. भावसामायिक–विषय कषायादि विभाव भावोंको पुद्गलकर्म जनित विकार समझ उनमें रागद्वेष न करना और अपने भावको निजानंदीसमतामें उपयुक्त रखना सो भाव सामायिक है।

सामायिक करनेवालेको ७ बातोंकी शुद्धि व योग्यता रखनी उचित है।

१. क्षेत्रशुद्धि–सामायिक करनेके लिये उपद्रवरहित स्थानमें बैठे जहां एकान्त हो जैसे कोई वन, चैत्यालय, धर्मशाला व अपने घरका ही कोई अलग स्थान हो। वह जगह अशुद्ध व अपवित्र न हो तथा जगह समतल हो ऊंची नीची विढंगी न हो कि जहां आसन न जम सके।

२. कालशुद्धि–सामायिक करनेका योग्य काल अत्यंत प्रातःकाल याने पौ फटनेका समय, सायंकाल याने संध्या समय व

दोपहर ऐसे ३ समय हैं। इन वक्तोंमें और कालोंकी अपेक्षा अधिक परिणाम लगते हैं। किसी २ विद्वान्का मत है कि तीनों समयोंमें छह छह घड़ी काल सामायिकका है अर्थात् ३ घड़ी रात शेषसे ले ३ घड़ी दिन चढ़े तक व ३ घड़ी १२ बजे दिनके पूर्वसे ले दोपहर बाद ३ घड़ी तक व ३ घड़ी सायंकालके पहलेसे ले ३ घड़ी रात तक है। १ घड़ी २४ मिनटकी होती है। ३ घड़ीके १ घंटा १२ मिनट हुए। इन ६ घड़ीके बीचमें सामायिक अवश्य कर लेनी उचित है। *

३. आसनशुद्धि—सामायिक करनेके लिये जहां बैठे व खड़ा हो वहां कोई दर्भासन व चटाई, पीला व सफेद व लाल कपड़ेका आसन बिछा लेवे। उसपर आप कायोत्सर्ग व पद्मासन व अर्द्ध पद्मासन रूप हो सामायिक करे। हाथोंको लटकाकर पैरोंको ४ अंगुलके अन्तरसे रखके सीधे खड़े होकर आंखोंको नाककी तरफ रखके विचार करनेको कायोत्सर्ग कहते हैं। दाहनी जांघपर बांयां पैर रखना, फिर दाहने पैरको बाईं जांघपर चढ़ाना, गोदपर बाईं हथेली खुली रख ऊपर दाहनी हथेली रखना और सीधा श्रीपद्मासन प्रतिमाकी तरह बैठना सो पद्मासन है। बांयां पैर जांघके नीचे तथा दाहना बाईं जांघपर रखना तथा हाथोंको पद्मासनकी तरह रख सीधा बैठना सो अर्धपद्मासन है।

४. मनशुद्धि—मनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान न करके मुक्तिकी रुचिसे धर्मध्यानमें आशक्त रखना सो मनशुद्धि है।

* सम्मति स्याद्वाद वादिगजकेशरी पं० गोपालदासजी बरैया।

५. वचनशुद्धि—सामायिक करते समय चाहे कितना भी काम हो किसीसे बात नहीं करना तथा केवल पाठ पढ़ने व णमोकार मंत्र बोलनेमें ही वचनोंको चलाना और शुद्ध अर्थको विचारते हुए पढ़ना सो वचनशुद्धि है।

६. कायशुद्धि—शरीरमें मल मूत्रकी बाधा न रखना व स्त्री संसर्ग किया हुआ शरीर न होना, हाथ पग धो वस्त्र वैराग्य मई एक दो पहनकर सामायिक करना सो कायशुद्धि है।

७. विनयशुद्धि—सामायिक करते समय देव, गुरु, धर्मकी विनय रखके उनके गुणोंमें भक्ति करना, अपनेमें ध्यान व तप आदिका अहंकार न आने देना सो विनयशुद्धि है।

सामायिक करनेकी विधि।

सामायिक करनेवाला श्रावक ऊपर कही हुई सातों शुद्धियोंका विचार करके सामायिक शुरू करनेके पहले कालका प्रमाण करले और समयका नियम करके जो की जाय सो सामायिक है। जैसा कहा है:—

" केशबंधादि नियमितः कालः तत्र भवं सामायिकं।" (आशाधर)

कितने कालकी मर्यादा करना चाहिये इस विषयमें पण्डित आशाधर सागारधर्मामृतमें इस तरह कहते हैं:—

एकान्ते केशबन्धादि मोक्षं यावन्मुनेरिव।
स्वध्यातुः सर्वे हिंसादि त्यागः सामायिकव्रतम् ॥२८

व्याख्या—अंतर्मुहूर्तमात्रं धर्मध्याननिष्ठस्य कियत्कालं केशबन्धादि मोक्षं यावत् केशबंध आदिर्येषां मुष्टिबंधवस्त्रग्रन्थ्यादीनां गृहीत नियतकालावच्छेदहेतूना ते केशबंधादय पां मोक्षो मोचनं तम् अवधीकृत्य

स्थितस्य। सामायिकं हि चिकीर्षुः यावत् अयं केशबंधोवस्त्रग्रंथ्यादेर्वा मया न मुच्यते तावत्साम्यात् न चलिष्यामि इति प्रतिज्ञां करोति।

भावार्थ—अंतर्मुहूर्त काल तक धर्मध्यान करनेकी प्रतिज्ञा इस भांति करना कि अपने केशोंको व चोटीको बांध लेना या वस्त्रके गांठ लगा लेना और ऐसी प्रतिज्ञा करनी कि जब तक इसको न खोलूं तब तक मुझे सामायिक करनेका नियम है, मैं सामायिकको न छोडूंगा अथवा मुट्ठी बांधके उसके न खोलने तक सामायिक करे। यदि घड़ी पास हो तो उसके द्वारा नहीं तो गांठ आदि लगाकर अनुमान दो घड़ीके प्रमाण करना चाहिये। सामायिकके कालकी मर्यादा करके फिर यह भी प्रमाण कर ले कि इतने काल तक जहां मैं हूं इसके चहुंओर १ एक गज क्षेत्र रक्खा तथा इस क्षेत्रके अन्दर मेरे पास जो परिग्रह है उसके सिवाय अन्य परिग्रह इतने काल तकके लिये छोड़ दी। फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके आसनके ऊपर कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ दफे णमोकार मंत्र धीरेसे पढ़ भूमिमें मस्तक नमा नमस्कार यानें दंडवत करे फिर उसी तरह कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ या ३ दफे णमोकार मंत्र पढ़ हाथ जोड़ तीन आवर्त और १ शिरोनति करे। दोनों हाथ जोड़े हुए खड़े २ बाईं ओरसे दाहनीको ३ दफे फिरावे-यह आवर्त है। फिर मस्तक दोनों जोड़े हुए हाथोंपर रक्खे—यह शिरोनति है। फिर अपने दक्षिणकी ओर खड़े २ मुड़ जावे और पहलेकी भांति कायोत्सर्गसे णमोकार पढ़ आवर्त और शिरोनति करे। इसी तरह घूमते हुए और दोनों दिशाओंमें ऐसा ही करे। फिर पहली दिशामें आकर आसनसे बैठ जावे और

संस्कृत व भाषा किसी समायिकपाठको धीरे २ उसके अर्थोंको विचारता हुआ पढ़े। फिर णमोकार मंत्र व अन्य छोटे मंत्रकी माला फेरे। सूतकी मालाद्वारा या अपने हाथोंपरसे या हृदयमें कमलके विचारद्वारा थिरतासे जाप जपे। फिर पिंडस्थध्यान आदिका अभ्यास करे जैसा कि तत्वमाला पुस्तकके अंतमें कहा गया है। अंतमें कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ वार णमोकार मंत्र पढ़ नमस्कार याने दंडवत करे। यह गृहस्थी श्रावक श्राविकाओंके लिये सामान्य विधि है।

व्रती दो समय सामायिक कर सक्ता है। जैसा कहा है:-

परं तदेव मुक्त्यंगमिति नित्यमतंद्रितः।
नक्तं दिनान्तेऽवश्यं तद्भावयेत् शक्तितोऽन्यदा ॥२९

(आशाधर)

अर्थात्-नित्य निरालसी होकर अवश्य ही सामायिक प्रातः-काल और सायंकाल करनी योग्य है, शक्ति हो तो और समय भी कर शक्ता है।

सामायिक शिक्षाव्रतकी शुद्धताके लिये पांच अतीचार बचाने चाहिये:-

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥

(उ० स्वा०)

भावार्थ-१. मनःदुःप्रणिधान-मनको विषय कषायादि पाप बंधके कार्योंमें चलाना अर्थात् मनमें आर्त्तरौद्रध्यान करना, अपनी बुद्धि पूर्वक याने जानबूझकर ऐसे अशुभ भाव न होने दे जो कदाचित कर्मके उदयकी वरजोरीसे सांसारिक विचार उठ आवे तो भेदविज्ञान रूपी शस्त्रसे उसको काट देवे। जैसे किसीको

अपने पुत्रके वियोगकी चिन्ताका खयाल आया तो उसी वक्त यह विचार ले कि जगतमें कोई किसीके आधीन नहीं है, सब जीव अपने २ बद्ध कर्मके अनुसार सुख दुख आदि अवस्थाओंको भोगते हैं तथा प्रत्येक संयोग वियोगके आधिन है, जिसको कोई मेट नहीं सक्ता। यदि स्त्रीकी चिन्ता हो आवे तो स्त्रीके शरीरकी अपवित्रता विचारे व कामकी वेदना मोक्षमार्गकी घातक है—ऐसा अनुभव करके रागको वैराग्यमें परिणमन कर दे।

२. वचनदुःप्रणिधान—सामायिक करते समय अपने वचनोंको सांसारिक कर्योंमें चलायमान करना अथवा किसीसे बातें करना व किसीको उत्तर देना सो वचनदुःप्रणिधान है, सो नहीं करना। केवल पाठ पढ़नेमें व णमोकार मंत्रादिके लिये तो वचनोंको उचित रीतिसे चलावे जिससे दूसरोंका हर्ज न हो और अपना उपयोग लग जावे। इसके सिवाय मौनरूप रहे।

३. कायदुःप्रणिधान—शरीरसे सामायिक सम्बन्धी चेष्टाके सिवाय अन्य काम करने लगना। जैसे किसीको कोई चीज उठाके देना, इशारेसे कोई काम बता देना आदि कायचेष्टा सो कायदुःप्रणिधान है। सामायिकमें आसनरूप रहे। यदि एक आसनमें शरीरको कष्ट मालूम पड़े और सह न सके तो दूसरा आसन बदल लेवे। यदि शरीर बिलकुल अशक्त हो याने बैठ न सक्ता हो तो लेटे हुए आसनसे भी सामायिक की जा सक्ती है। हाथमें माला या पुस्तक लेना व धरना सामायिक सम्बन्धी क्रिया है, इस लिये सर्वथा निषेध नहीं है। यथासंभव शरीरको निश्चल रखनेका अभ्यास रक्खे।

४. अनादर–“ प्रतिनियतवेलायां सामायिकस्य अकरणं, यथा कथंचित् वा करणं ॥ ” (आशाधर)

भावार्थ–ठीक सामायिकके कालमें तो सामायिक न करना चाहे जब कर लेना, भीतरसे यह भाव शिथिल होना कि सामायिक करना अपना मुख्य कर्तव्य है। अतएव अन्य कार्य छोड़ इसमें प्रवर्तना योग्य है। प्रमाद और आलस्यसे सामायिक करनेमें उत्साहका कम होना अनादर है।

५. स्मृत्यनुपस्थान या अस्मरण–“सामायिक मया कृतं न कृतं इति प्रवलप्रमादात् अस्मरणं अतीचारः॥” (आशाधर)

भावार्थ–तीव्र प्रमादके वश हो इस बातको भूल जाना कि सामायिक मैंने की है व नहीं। जैसे सामायिकके समयमें व्यापारादिमें ऐसे युक्त हो जाना कि सामायिक करनेकी सुध न करना तथा जब अन्य वेला आवे तब शंकित होना कि गत वेलामें सामायिक की थी व नहीं अथवा सामायिक करते समय सामायिक सम्बन्धी क्रिया व पाठादि पढ़ना भूल जाना सो अस्मरण है।

इस प्रकार यह सामायिकशिक्षाव्रत मोक्षमार्गी आत्माका परम कल्याण करनेवाला है। इसीके अभ्याससे ध्यानकी सिद्धि होती है। ध्यान ही मुख्य तप है–इसी ही तपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। यही ध्यान मुक्ति रूप ललनाके मिलानेको परम सखाके समान है। सामायिकके प्रतापसे ही उपयोगकी परिणति जगतके आंगणमें नाचनेसे अटककर निज आत्मीकगुणोंके बागमें रमण करने लग जाती है, जिससे अपूर्व अनुभवानंदकी प्राप्ति होती है। सच्चे सुखको देनेवाली, मनके क्लेशोंको मिटाकर शांतता प्रदान करने-

वाली तथा अपने सर्व क्रियाकांडको सफल करनेवाली ज्ञान पूर्वक करीहुई यह सामायिककी क्रिया है। हितार्थीको इसके अभ्याससे चूकना न चाहिये।

३. तीसरा शिक्षाव्रत—प्रोषधोपवास।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६

(र० क०)

भावार्थ—अष्टमी और चौदस इन दो पर्वियोंमें धर्मध्यानकी इच्छासे चार प्रकारके आहारका त्यागना सो प्रोषधोपवास है। तथा-

सः प्रोषधोपवासो यश्चतुःपर्व्यां यथागमं।
साम्यसंस्कारदार्ढ्याय चतुर्भुक्त्युज्झनं सदा॥

(आशाधर)

अर्थात्—समताके संस्कारको बढ़ानेके लिये एक मासकी चारों पर्वियोंमें आगमके अनुसार चार भुक्तिको त्यागना सो प्रोषधोपवास है।

"एका हि भुक्तिक्रिया धारणा दिने द्वे उपवास दिने, चतुर्थी च पारणा दिने" (आशाधर) याने दिनमें दो दफे भोजन सामान्य तौरसे लिया जाता है सो पहले दिन एक दफेका भोजन, उपवासके दिन दोनों दफेका भोजन तथा पारणाके दिन एक दफेका भोजन ऐसे चार भुक्तिको त्यागना सो उत्कृष्ट प्रोषधोपवास है। तथा—

उपवासाक्षमैः कार्योऽनुपवासस्तदक्षमैः। आचाम्ल निर्विकृत्यादि शक्त्या हि श्रेयसे तपः॥ (आशाधर)

भावार्थ—उपवास करनेकी शक्ति न हो तो अनुपवास करे।

जलवर्जन चतुर्विधाहारत्यागः अनुपवासः, (आशाधर) जलके सिवाय और चार प्रकारके आहारका त्यागना सो अनुपवास है। यदि यह भी न कर सक्ता हो तो आचाम्लकांजिका आहार करे। शक्ति करके किया हुआ तप कल्याणकारी है।

"स्पर्श, रस, गंध वर्ण शब्द लक्षणेसु पंचसु विषयेसु परिहृतौ पंचापि इन्द्रियाणि उपेत्य आगत्य तस्मिन् उपवासे वसंति इति उपवासः। अशन, पान, खाद्य लेह्य, चतुर्विधाहारः उपवासशक्ति अभावे एकवार भोजन करोति तथा निर्विकृतिं शुद्ध तक्रैः शुद्धैकाऽन्न भोजनं करोति वा दुग्धादि पंच रसादि रहितं आहार भुंक्ते आचाम्लकांजिकाहारःक्षक्षाहारः। अन्नसः शुद्धोदनं जलेनं सह भोजनं कांजिकाहारं।

(स्वामीकार्तिकेय० स० टीका)

भावार्थ—पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर सर्व इन्द्रियोंको उपवासमें ही स्थिर करे सो उपवास है। उपवासके दिन निम्न चार प्रकारका भोजन न करे—

१. असन—भात दालादिक।

२. पान—पीने योग्य दूध, छांछादि।

३. खाद्य—मोदकादि (लाडू वगैरह मिठाई)

४. लेह्य चाटने योग्य (रबड़ी, लपसी, दवाई आदि) तथा अन्य ग्रंथमें ऐसे भी चार प्रकार भोजन कहा है खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय।"

इसमें खाद्यसे मतलब उन सर्व चीजोंसे है जो कि साधारण रीतिसे क्षुधा मेटनेके काममें लाई जाती हैं जैसे रोटी, पूरी,

मिठाई । स्वाद्यसे प्रयोजन इलायची लोंग सुपारी आदिसे है । शेष दो का स्वरूप ऊपरके समान है । तथा जो उपवास याने चार प्रकारके आहार त्यागने की शक्ति न हो तो एकवार भोजन करे अथवा विकाररहित शुद्ध छांछके साथ शुद्ध एक किसी अन्नको खावे (द्विदलके दोषको बचावे) व दूध, मीठा, नोन, तेल व घी ऐसे पांच रसरहित भोजन करे या छांछ मात्र लेवे सो आचाम्ल आहार है । त्रसरहित शुद्ध भातको जलके साथ खाना सो कांजिकाहार है ।

प्रोषधोपवास प्रतिमा याने चौथी प्रतिमाके स्वरूपको कहते हुए श्रीवसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तीने इसका स्वरूप नीचे लिखे भांति किया है ।

(वसुनंदिश्रावकाचार लिखित संवत् १९९९ प्रति ठोलियोंका मंदिर जयपुरमें)

उत्तम मज्झ जहण्णं, तिविहं पोसह विहाण उद्दिट्ठम् ।
सगसत्तिय मासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वम् ॥ ७८ ॥

सत्तमितेरसिदिवसम्मि, अतिहजण भोयणावसाणम्मि ।
मोत्तूण भुंजणिज्जं, तच्छविकाऊण मुहसुद्धिं ॥ ७९ ॥

परकालिऊण वयणं, कर चरणे णियमिऊण तच्छेव ।
पच्छाजिणिंदभवणं, गत्तूण जिणं णमंसित्ता ॥ ८० ॥

गुरुपुरऊ किरियम्मं, वंदण पुव्वंकमेण काऊण ।
गुरुसारिकयमुववासं गहिऊण चउव्विहं विहिणा ॥ ८१ ॥

वायणकहाऽणुपेहण, सिरकावय चिंतणो वऊ गेहं ।
णेऊण दिवससेसं, अवरण्हिय वंदणं किच्चा ॥ ८२ ॥
रयण समयम्मि ठिच्चा, काऊसग्गेण णियसत्तीए ।
पडिलेहिऊण भूमिं, अप्प पमाणेण संचारं ॥ ८३ ॥
नाऊण किंचिरत्तं—सइऊण जिणालये णियघरे वा ।
अहवा सयलं रत्तिं, काऊसग्गेण णेऊणा ॥ ८४ ॥
पच्चूसे उट्ठित्ता, वंदण विहिणा जिणं णमंसित्ता ।
तहं दव्वभाव पुज्जं, जिण सुय साहूण काऊण ॥ ८५ ॥
उत्तविहाणेण तहा, दियहं रत्तिं पुणोविगमिऊण ।
पारण दिवसम्मि पुणो पूयं काऊण पुव्वं च ॥ ८६ ॥
गंतूण णियय गेहं, अतिह विभागं च तच्छ काऊण ।
जो भुंजइ तस्स फुडं पोसह विहि उत्तमं होइ ॥ ८७ ॥
जहंउक्कस्सं तहं मज्झिमंपि, पोसह विहाण मुद्दिट्ठं ।
णवर विसेसो सलिलं । छड्डित्तावज्जए सेसं ॥ ८८ ॥
मुणिऊग गुरुवकज्जं, सावज्ज विवज्जियानियारंभं ।
जइ कुणइ तंपिकुज्जा, सेसं पुव्वं वणायव्वं ॥ ८९ ॥
आयं विल निव्वियड़ी पयट्ठाणं च एयभत्तं वा ।
जं कीरइतं णेयं; जहण्णंयं पोसह विहाणं ॥ ९० ॥
सिर राहालुवट्टणं, गंधमल्लकेसाइंदेह संकप्पं ।
अण्णंपि रागहेउं, विवज्जिए पोसह दिणम्मि ॥ ९१ ॥

संक्षेप भावार्थ इस भांति जानना:—

प्रोषधका विधान तीन प्रकारसे कहा गया है अर्थात् उत्तम, मध्यम तथा जघन्य। जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार चारों पर्वियोंमें करे।

उत्तमकी विधि यह है—सप्तमी या] तेरसके दिन अतिथियोंको भोजन कराके आप भोजन करे, मुख शुद्धकर हाथ पैर धो श्री जिनेन्द्रके मंदिरमें जावे, जिनेन्द्रको नमस्कार कर श्रीगुरुको वंदन करके उपवासको ग्रहण करे, तबसे विकथादि त्याग शास्त्र स्वाध्याय व तत्त्वविचारमें शेष दिनको बितावे। शामको वंदना व सामायिक करे। रात्रिको अपनी शक्ति हो तो सर्व रात्रि कायोत्सर्गसे पूर्ण करे अथवा अपनी देहके समान संथारे पर कुछ रात्रि शयन करे, जिनालयमें वा घरमें रहे। सवेरे उठकर बंदनादि करके देव, शास्त्र, गुरुकी द्रव्य और भावसे पूजा करे। फिर स्वाध्याय सामायिकादि धर्म कार्य्योंमें सर्व दिवस व पहली रात्रिकी तरह यह रात्रि भी पूर्ण करे। सवेरे उठ वंदनादि करके पूजन करे और फिर अपने घर जाय, अतिथियोंको दान करके फिर आप भोजन करे—यह उत्तमप्रोषधकी विधि है।

मध्यम विधि—इसमें और उत्तम विधिमें केवल इतना ही फर्क है कि मध्यममें जलके सिवाय और सर्व पदार्थोंके भोजनका त्याग है याने जब प्यास लगे तब शुद्ध (प्राशुक) जल तो ले सक्ता है और कुछ नहीं ले सक्ता; किन्तु धर्म ध्यानादिक सर्व क्रियाएं उत्तमके समान करनी योग्य हैं।

जघन्य विधि—इसमें प्रोषधके दिन याने अष्टमी व चौदसको अंबिल कहिये इमली, भात अथवा नयड़ि कहिये लूण विना केवल

जलके साथ भात लेवे अथवा एक स्थानमें एकवार खाय सो एक स्थान करे या एक भुक्त करे वा एक ही वस्तु लेवे।

नोट—इस जघन्य विधिमें यह वाक्य गाथामें नहीं है कि शेष क्रिया पूर्ववत करनी तौ भी अर्थसे यही लेना योग्य है कि धर्मध्यान पहले ही के समान करे।

उपवासके दिन सिर मलके नहाना, उबटन लगाना, गंध सूंघना, माला पहनना तथा अन्य भी रागके बढ़ाने वाले कार्य्य करना मना हैं। केवल पूजाके निमित्त शुद्ध जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन सक्ता है।

उपवासके दिन अष्ट द्रव्यसे पूजा सर्वथा निषेध नहीं है। जो अपना मन सामायिक स्वाध्यायमें विशेष न लगे तौ द्रव्य पूजा भी करे। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें अमृतचंद्र स्वामीने कहा है:—

प्रातःप्रोत्थाय ततः कृत्वा तात्कालिकं क्रियाकल्पम्।
निर्वर्त्तयेद्यथोक्तं जिनपूजां प्राशुकैर्द्रव्यैः ॥१५५॥

भावार्थ—प्रातःकाल उठकर तथा नित्यक्रिया कर यथाविधि श्रीजिनेन्द्रकी पूजा प्राशुक अर्थात् अचित्त द्रव्योंसे करे।

उपवासके दिन और क्या क्या कार्य्य न करे?

उपवास कर्त्ता निषेधयतिः—

शीतोष्णजलेनमंजनं, तैलादि मर्दनं, बिलेपनं, भूषणंहारमुकुटकेयूरादि, स्त्रीसंसर्गं, युवतीनांमैथुनस्पर्शनपादसंवाहननिरीक्षण शयनोपवेशनवार्तादिभिः संसर्गः, गंधसुगंधप्रमुखधूपशरीरधूपनं, केशवस्त्रादि धूपनं च दीपस्यज्वलनंज्वालनं करणं, सचित्तजलकणलवणभू-

म्यग्नि वात करण वनस्पति तत्फल पुष्प कुंपल छेदादि व्यापारा-
न् परिहरति" (स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षा सं० टीका)

भावार्थ–उपवास करनेवाला इन बातोंको न करे "शीत व उष्ण जलसे मंजन करना, तेल आदि लगाना, विलेपन करना, हार, मुकुट, कड़े आदि गहने पिहनना, स्त्रियोंसे मैथुन व स्पर्श करना, पाद दबवाना व उनको देखना. उनकी शय्यापर बैठना व उनसे वार्तालाप आदि करना, सुगंधित धूपसे शरीर केश कपड़े आदिको धूआं करना, दीपकका जलाना व जलवाना, सचित्त जल-कण, लवण, भूमि, अग्नि, पवनसेवन, वनस्पति व उसके फल फूल कोपल छेदन आदि व्यापारोंको करना।"

यद्यपि ऊपर रात्रिको दीपक जलाना मना है, परन्तु स्वा-ध्यायके अर्थ दीपकसे काम लेना पड़े तो उस दीपकसे त्रस हिंसा न हो इस प्रकार रखकर काम लेना। क्योंकि श्रीपुरुषार्थसिद्ध्यु-पायमें यह कथन है कि "रात्रिको स्वाध्यायसे निद्राको जीते।

"शुचिसंस्तरे त्रियाणां गमयेत्स्वाध्याय जितनिद्राः ॥ १५४ ॥

प्रश्न–प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत जो व्रतप्रतिमावाला करता है तथा प्रोषधोपवास चौथी प्रतिमावाला करता है–इन दोनोंमें क्या

इस विषयमें स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा संस्कृत टीकामें इस प्रकार चतुर्थ प्रतिमाके प्रकरणमें कथन है:–

"सप्तमी त्रयोदश्यां च दिवसे मध्यान्हे भुक्त्वा उत्कृष्ट प्रोष-धव्रती चैत्यालये गत्वा प्रोषधं गृह्णाति, मध्यम प्रोषधव्रती तत् संध्यायां प्रोषधं गृह्णाति, जघन्य प्रोषधव्रती अष्टमी चतुर्दशी प्रभाते

प्रोषधं गृह्णाति प्रोषधे आरम्भं गृह हट्ट व्यापार क्रय, विक्रय, कृषि, मसि, वाणिज्यादि उत्थं आरम्भं न करोति । प्रोषधप्रतिमा-धारी अष्टम्यां चतुर्दश्यां च प्रोषधोपवासम् अंगीकरोति व्रते तु प्रोषधो-पवासस्य नियमो नास्ति । ”

भावार्थ—प्रोषधव्रती ३ प्रकारसे प्रोषधोपवास करे । उत्कृष्ट तो सप्तमी या त्रयोदशीको मध्यान्हमें भोजन करके चैत्यालयमें जाय प्रोषध धारण करे । मध्यम प्रोषधव्रती सप्तमी या तेरसकी संध्याको गृहण करे तथा जघन्य अष्टमी व चौदसके प्रभातकाल प्रोषध लेवे अर्थात् इस मतसे १६ पहर, १२ पहर, ८ पहर ऐसे ३ प्रकारका प्रोषध व्रत हुआ । ८ पहरका प्रोषधवाला भी पिछली रात्रिको जलादि ग्रहण नहीं करता है, शामसे ही कुल्ला करता है, परन्तु आरम्भादिको रात्रिको नहीं त्यागता है । इससे प्रोषध नहीं कहा जा सक्ता, क्योंकि प्रोषधमें आरम्भ घरका व बाजारका, लेना देना, किसानी, लेखन, वाणिज्य आदि सब आरम्भ नहीं करना होता है, केवल धर्म कार्योमें ही प्रवर्तन करना होता है ।

प्रोषधप्रतिमाधारी तो अष्टमी व चौदसको प्रोषधोपवास अव-श्य करे, परन्तु व्रतप्रतिमाके लिये प्रोषधोपवासका नियम नहीं है-यही फर्क है । अर्थात् व्रतप्रतिमाके यह व्रत शिक्षा रूप है । जैसे कोई उम्मेदवार किसी दफ्तरमें रोज जाता है, काम करता है, परन्तु अबतक वह वेतनवाला चाकर नहीं भया है तो उसके लिये यह खास पाबन्दी नहीं है कि वह जावे ही जावे । किसी दिन कारण पड़े तो नहीं जावे व देर हो जावे तथा जाकर काम करे

सो मनकी इच्छाके अनुसार करे। उसके लिये यह पाबन्दी नहीं है कि इतना काम करना ही पड़ेगा। इसी तरह व्रतप्रतिमावाला हर अष्टमी व चौदसको अपनी शक्तिके अनुसार तीन प्रकारमेंसे किसी भेद रूप उपवास करे, परन्तु यदि कोई विशेष कारण आ जाय तो कभी नहीं भी करे तथा जिस विधि व जितने समयके लिये कहा है उस विधि व समयमें कमी करे। जैसे व्रती सध्याको कुल्ला करके अष्टमीके दिन एक वार लघुभोजन तक करे तो कोई हर्ज न होगा तथा अष्टमीका दिन धर्म ध्यानमें वितावे; परन्तु कोई विशेष घरका व व्यापारका अत्यंत जरूरी आरंभ आ जावे तो कर भी लेवे। इसके पूरा २ नियम नहीं है, परन्तु जहांतक बने आप परिणामोंको चढ़ानेका ही उद्यम रक्खे, ढीला न होने दे।

प्रोषधोपवास शब्दकी व्याख्या श्रीपूज्यपाद स्वामीकृत श्री सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थमें इस प्रकार है:—

प्रोषध शब्दः पर्व पर्यायवाची, शब्दादि ग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः। चतुर्विधाऽहार परित्यागः इत्यर्थः। प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः। स्वशरीर संस्कार कारण स्थान गन्ध माल्याभरणादि विरहितः शुभावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथा चिन्तावहितान्तः करणः सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः॥

भावार्थ—प्रोषधके अर्थ पर्वके है। शब्द आदि विषयोंके लेनेमें इन्द्रियोंका रुचिरहित होकर जिसमें आकर बस जांय याने ठहर जांय सो उपवास है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग-

कर निर्विषय अतीद्रिंय आनंदकी रुचिमें प्रयत्नशील हो जितेद्रिंय रहना सो उपवास है अर्थात् खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चारों प्रकारके आहारका त्याग करना। प्रोषध याने पर्वमें उपवास याने अष्टमी व चौदसको उपवास करना सो प्रोषधोपवास है। अपने शरीरको सिंगारनेके लिये स्नान, गंध, माला, आभरणादि धारण न करे। शुभ स्थान जैसे साधुओंके निवास, चैत्यालय या अपने घरमें नियत प्रोषधोपवासवाले कमरेमें धर्मकथाके विचारमें अपने मनको लगाये हुए बैठे तथा आरम्भ व्यापारादि न करे। (स० अध्याय ७ वां)

इस शिक्षाव्रतको भले प्रकार पालनेके लिये इसके पांच अतीचार बचाने चाहिये।

सूत्र–अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि" ॥२४॥ (त०सू०)

१. अप्रत्यवेक्षितअप्रमार्जितउत्सर्ग–विना देखे और विना कोमल वस्त्र व पीछीसे झाड़े, पुस्तक, चौकी उपकरण व अपने शरीर व वस्त्रको भूमि आदिपर धरना, व्रती कोमल रूमाल व सूतके कोमल धागोंकी बनी पिच्छिकासे स्थानको देखते हुए झाड़ लेवे फिर कोई चेतन व अचेतन पदार्थको वहां रक्खे।

२. अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितआदान–विना देखे और विना झाड़े पदार्थोंको उठाना।

३. अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण–विना देखे और विना झाड़े संथारा चटाई आदि बिछाना।

४. अनादर–उपवासमें आदरभाव याने उत्साहका न होना, बड़ी कठिनतासे समयको पूरा करना।

५. स्मृत्यनुपस्थान–प्रोषधोपवासमें करने योग्य क्रियाओंको भूल जाना। जैसे जो नित्य स्वाध्याय जाप पाठ आदि करता था उसको करनेकी याद न रहना, प्रमाद व आलस्यमें ऐसे वेखवर हो जाना कि करने योग्य धर्म कार्यकी सम्हाल न रखनी तथा अष्टमी व चौदस तिथिका खयाल न रखना।

प्रोषधव्रती व्रतप्रतिमामें शिक्षारूप तथा प्रोषधोपवास प्रतिमामें नियमरूप इन अतीचारोंको बचावे। व्रतप्रतिमावालेके यदि अतीचार लगें तो उस श्रेणीकी अपेक्षा अयोग्य न होगा' किंतु प्रतिमारूप पालनेवाला अतीचारोंको अवश्य बचावे। यदि कदाचित् कोई लग जावे तो उसका प्रायश्चित लेवे–प्रतिक्रमण करे।

प्रश्न–यदि कोई ऐसी चाकरी करता है कि जिससे कि उसको अष्टमी व चौदसके दिन छुटी नहीं मिल सक्ती और यह भी उससे संभव नहीं है कि आजीविकाको छोड़ दे तो इस व्रतको कैसे पाले?

उत्तर–जहां तक बने वह अपने स्वामीसे प्रार्थना करके महीनेमें इन चार दिनोंकी छुट्टी ले लेवे और इसके बदलेमें दूसरे दिनोंमें काम अधिक कर देवे याने उसके दिलमें तसल्ली कर देवे कि आपके काममें कोई हर्ज न पड़ेगा। जैसे कोई सर्कारी दफ्तरमें नौकर है वहां प्रति रविवारको छुट्टी होती है तो उसको चाहिये कि इस बातकी कोशिश करके अफसरसे

कह दे कि मैं रविवारको दफ्तरमें हाजिर हो काम करूंगा मुझे अष्टमी व चौदसकी छुट्टी दी जाय। यदि किसी प्रकारसे भी इस कोशिशमें सफलता न हो तो उपवास तो वह करें ही, परन्तु दफ्तरके कामके सिवाय अन्य समय धर्म कार्योंमें ही बितावे तथा दफ्तरके काममें भी न्याय व सत्यतासे उस कार्यको धर्मका साधक जान लाचारीसे करे तथा जब रविवार आवे तब उसके बदलेमें उससे अधिक समय धर्म कार्य्यमें खर्च करे। परन्तु यदि किसीकी क्षत्रीकर्मकी चाकरीसे आजीविका हो तो वह कदापि उस दिन हिंसाका काम युद्ध आदि न करे। यदि छुट्टी न मिले तो जो जो हाजरीका समय है उसमें हाजिर हो ले। स्वतंत्र आजीविका करनेवाले सुगमतासे अष्टमी व चौदसको धर्मध्यान कर सक्ते हैं। पराधीन व्यक्तियोंको यथाशक्ति समय धर्म कार्यमें ही लगाना योग्य है। यदि समय आजीविकाका कर्तव्य बजानेमें लगाना पड़े तो निंद्रा गर्हा करते ऐसा करना, परन्तु इसके बदलेमें दूसरे किसी दिन इससे अधिक समय तत्त्व विचार जाप, पाठ स्वाध्यायादिमें बिताना योग्य है। केवल आजीविकाके बहानेसे व्रत पालनेके उत्साहको भंग नहीं करना चाहिये। और यह भले प्रकार ध्यानमें रखना चाहिये कि केवल भूखा रह लंघन करनेका नाम उपवास नहीं है। जब विषय कषायोंको रोका जावे तब ही संयम होता है और तब ही उपवास करनेसे लाभ है। जिनमतमें ऐसे भूखे रहनेको व कायक्लेश करनेको तप नहीं कहा है, जिससे परिणामोंमें आर्त्तध्यानकी वेदना पैदा हो जावे। समतारूपी रसायणका लाभ जिस उपायसे हो उस उपायको हर्षपूर्वक

करना तथा उस उपायके लिये खानेपीनेका त्याग कर कुछ कालके लिये निश्चिन्त रहना सो ही उपाय व साधन इस साधकके लिये कार्यकारी है। अपनी शक्ति न होनेपर कई दिनोंका उपवास करके बीमारीकी तरह पड़े रहना और धर्म साधनमें अन्तराय डालना कदापि उचित नहीं है। इसके विरुद्ध यह भी सोचना प्रमादयुक्त तथा अनुचित है कि उपवाससे हम कमजोर हो जावेंगे इस लिये हमको कभी उपवास करना ही नहीं चाहिये। यदि धर्म साधन और आत्म-विचारमें अपने उपयोगको विशेष लगानेका अभिप्राय है तो ऐसा सोचना सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि आरम्भ छोड़कर धर्मध्यानमें लय रहना हमारे चित्तको शांति व आनन्द प्रदान करता है तथा शरीरको भी प्रसन्न रखता है। आहार न करनेसे भीतरका शरीर सब दुरुस्त हो जाता है, जो मैला आदि इधर उधर जमा रहता है सो सूख जाता है। आठवें दिन उपवास करना शरीरकी निरोग्यताके लिये बड़ा भारी उपाय है। जैसे किसी कल व मशीनको रोज चलाते हैं और उसको ८ वें दिन साफ करनेसे उसके भीतरका मैल सब निकल जानेसे वह फिर नये रूपसे व्यवहारके लायक हो जाता है। उसी तरह शरीर रूपी मशीनको ८ वें रोज आराम देना चाहिये अर्थात् उसके अन्दर नया मसाला रूपी भोजन न डालकर उसको साफ होने देना चाहिये तथा उससे रोजके समान सांसारिक कार्य्य न लेना चाहिये, किन्तु धार्मिक कार्योंमें ही उसको चलाना चाहिये। इससे मन भी प्रौढ़ होता है। जो मन ८ दिन जगत्के जंजालोंसे खेद खिन्न है वह मन यदि उन विचारोंको हटाकर एक दिन

केवल शांति और धर्मके ही विचारोंको करे तो उसका बड़ा भारी विश्राम हो और फिर अधिक बलिष्ट हो जावे। आराम देना सुस्त पड़े रहनेका नाम नहीं है, परन्तु अपने उपयोगको एक जातिके कार्य्यसे फेरके दूसरी जाति कार्य्यमें लगाना ही आराम लेना है।

उपवास अनेक रोगोंकी औषधि है। बहुतसे रोग नियमित कई कई दिनके उपवाससे दूर हो जाया करते हैं। प्रसिद्ध जर्मनी-के डाक्टर लुई कोहेनका कहना है कि उपवास करना प्रकृतिके सुधारनेके लिये बहुत जरूरी है तथा पशुओंमें तो स्वभावसे ही यह आदत प्रगट होती है। जैसे साप एक दफे पूरी खुराक लेनेके बाद कई सप्ताह तक खाना नहीं खाते, हिरण और खरगोश कई सप्ताह व महिनों तक बहुत ही कम भोजनपर बसर करते हैं।

उपवास करनेके समयकी मर्यादा अभ्याससे बढ़ जाती है। अभ्यासके बलसे एक मनुष्य आठ आठ दस दस उपवास बड़े आरामसे कर सक्ता है। जो मोक्ष-मार्गमें उत्सुक हैं और आत्म-ध्यानके विशेष रुचिकर हैं वे कई उपवास विना किसी कष्टके करके आत्माके भेदविज्ञानमें अपनी परणतिको रमाते हैं।

४. चौथा शिक्षाव्रत-अतिथिसंविभाग व वैयावृत्य।

दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वय-गुणनिधये अगृहाय तपोधनाय विभवेन धर्माय अनपेक्षितोपचारोपक्रियं दानं वैयावृत्त्यं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रके धारी घररहित तपस्वीको विधि करके धर्मके अर्थ प्रत्युपकार कहिये किसी बदलेकी इच्छा न करके जो दान देना सो वैयावृत्य है। इसका दूसरा नाम अतिथि संविभाग है। इसकी व्याख्या इस प्रकार हैः—

" संयमं अविनाशयन् अतति इति अतिथिः। अथवा न अस्य तिथिः अस्ति इति अतिथिः अनियतकालागमनः इत्यर्थः।
तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः।" (सर्वार्थसिद्धि)

भावार्थ—संयमको नहीं विराधना करता हुआ जो विहार करे सो अतिथि है अथवा जिसके तिथि नहीं है याने किसी नियत कालमें जिसका आगमन नहीं है। जिस महात्माने सर्व तिथि और पर्वके उत्सवोंको त्याग दिया है उसे अतिथि जानो। इनके सिवाय अन्यको अभ्यागत कहते हैं। प्रयोजन यह है कि जो गृहस्थीके समान अष्टान्हिका आदि पर्वोंमें विशेष धर्म करनेवाले और अन्य दिनोंमें कम धर्म पालनेवाले नहीं हैं, किन्तु सदा ही सामायिक व छेदोपस्थापना संयममें लीन हैं। ऐसे जो सर्व परिग्रहत्यागी दिगम्बर मुनि हैं उनको अतिथि कहते हैं।

अतिथये संविभागः कहिये अतिथिको अपने ही उद्देशित आहारमेंसे विभाग करके देना सो अतिथिसंविभाग है। इसीको दान भी कहिये।

" अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं " (उमा स्वा०)

अपने और परके उपकारके अर्थ अपने द्रव्यका जो त्याग करना सो दान है। दान देनेसे अपना भला तो यह होता है कि

लोभादि कषायोंकी मंदतासे पुण्यबंध होता है तथा परोपकार इस इस अपेक्षा होता है कि साधुगण अपने शरीरकी रक्षाकर मोक्ष-मार्गमें सुखसे गमन कर सक्ते हैं अथवा क्लेशित जीवोंका दुःख दूर होकर उनके द्रव्य प्राणोंकी रक्षा होती है। इस दानके लिये
(विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः) (उ० स्वा०)
विधि, द्रव्य, दातार और पात्र इन चार बातोंको समझना चाहिये। इन चारोंकी जिस कदर उत्तमता होगी उसी कदर फल अधिक होगा। दान देनेके लिये ९ प्रकारकी विधि है जो कि देनेवालेके आधीन है।

संग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामं च।
वाक्कायमनःशुद्धिरेषणशुद्धिश्च विधिमाहुः॥१६८॥
(पु० सि०)

भावार्थ १–प्रथम श्रीमुनिराजको पड़गाहना याने शुद्ध वस्त्र पहने हुए और प्राशुक शुद्ध जलका कलश लिये हुए अपने द्वारपर णमोकार मंत्र जपता पात्रकी राहमें खड़ा रहे। उस समय घरमें अपनी रसोई तय्यार हो गई हो याने रसोई किये जानेका कोई आरम्भ घरमें न होता हो जैसे चक्कीसे पीसा जाना, उखलीमें कूटा जाना, बुहारीका दिया जाना, सचित्त पानीका भरा जाना व फेका जाना, आगका जलना व जलाया जाना व आगपर किसी चीजका पकाया जाना। क्योंकि सचित्तका आरम्भ होते देखकर मुनि लौट जायंगे। रसोई तयार करके चूल्हा ठंडा कर दिया जावे और सर्व सामान शुद्ध स्थानमें बना रक्खा रहे। राह देखते हुए जब मुनि नजर पड़ें और उस घरके पास आवें तब वह नमोस्तु

कहते झुकता हुआ कहे "आहार पानी शुद्ध अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ" इसका प्रयोजन इस बातके दिखलानेका है कि हमारे यहां आहार व पानी सब शुद्ध दोषरहित है आप कृपा करके यहां पधारें पधारें पधारें। तीन वार करनेका प्रयोजन यह है कि हमारी अत्यन्त भक्ति है आप अवश्य कृपा करें–इसका नाम संग्रह है।

२. उच्चस्थान–घरके भीतर ले जाकर किसी ऊंचे स्थान (जैसे ऊंचा पटरा व काष्ठकी चौकी आदि) पर विराजमान करे और विनयसहित खड़ा करे।

३. पादोदक–शुद्ध अचित्त जलसे पादोंको धोवे।

४. अर्चन–अष्ट द्रव्योंसे भावसहित पूजन करे, अर्घ चढ़ावे, पूजनमें बहुत समय न लगावे, नहीं तो आहारका समय निकल जावेगा। ५ व ७ मिनटमें पूजन कर ले और मुनिका दर्शन कर अपनेको कृतार्थ माने।

६. प्रणाम–भावसहित नमस्कार करे।

६. वाक्शुद्धि–जिस समयसे मुनिको पड़गाहा जाय उस समयसे लेकर जब तक श्रीमुनि घरसे विदा न हों तब तक आप भी वचन धर्म व न्याययुक्त मतलबके बहुत मिष्टता व शांततासे कहे और घरके अन्य जन भी जो वचन अति जरूरी हों सो कहें, नहीं तो मौन रक्खें। उस समय घरमें कोलाहल, दौड़धूप व घबड़ाहट किसी प्रकारकी न हो। ऐसी शांतता हो कि मानो यह एक जनरहित स्थान है।

७. कायशुद्धि–दान देनेवालेका शरीर शुद्ध होना चाहिये याने मलमूत्र आदिकी बाधासहित व रुधिर, पीप बहनेवाले घाव-

सहित व अन्य किसी तीव्र रोगसहित न हो, किन्तु वह स्नानादि किये हुए धोये और उजले वस्त्र पहने हो तथा अपने हाथोंसे कमरके नीचेका अंग व कपड़ा न छुए—अपने हाथ ऊपर ही रक्खे। यदि हाथ छुए जांयगे तो मुनि भोजन न करके लौट जांयगे। इसलिये घरमें जो पुरुष, स्त्री, बालक मुनिके सन्मुख आवें उनके शरीर अपवित्र न हों।

८. मनःशुद्धि—दातारका मन धर्म—प्रेमसे बासित हो, मनमें क्रोध, कपट, लोभ, ईर्षा, आकुलता व शीघ्रता न हो। बहुत शांत मन रक्खे, मनमें आचार्य्य उपाध्याय और साधुके गुणोंको विचारता हुआ ऐसे साधुकी भक्तिमें अपने जन्मको धन्य माने—अशुभ विचारोंको न आने देवे।

९. एषणाशुद्धि—भोजनकी शुद्धता हो जिसमें चार बातोंकी शुद्धतापर ध्यान दिया जावे।

१. द्रव्यशुद्धि—जो अन्न, दूध, मीठा आदि रस व पानी रसोईके काममें लिया जाय वह शुद्ध मर्यादाका हो और लकड़ी घुनरहित देखके काममें ली जाय तथा जो रसोई बनानेमें प्रवर्ते उसका शरीर भी शुद्ध होना चाहिये। वह स्नान करके धोये हुए साफ उजले कपड़े पहने हो तथा अपने शरीरपर कोई हड्डी चमड़े आदिकी अशुद्ध चीज न हो जैसे हाथीदांतके व सरेसके बने विलायती चूड़े, सीपके बटन, झूठे मोती, ऊन व बालके कपड़े आदि। कपड़े जहांतक हो बहुत अधिक न हों।

२. क्षेत्रशुद्धि—रसोई बनानेकी जगह शुद्ध हो याने उसमें रसोईका ही काम किया जाय। जितना रसोईघर रसोई बनाने

व जीमनेका हो वह रोज कोमल बुहारीसे साफ किया जाय तथा पानीसे धोया जाय या मिट्टीसे लीपा जाय। गोबर पशुका मल है उससे नहीं लीपना चाहिये; क्योंकि उसमें महीन जीवोंकी उत्पत्ति होसक्ती है तथा उस चौकेभरके ऊपर चंदोवा चाहिये, ताकि रसोईमें कोई जीव जंतु व जाला आदि न गिर पड़े। इस क्षेत्रकी हद्द बंधी हो ताकि अशुद्ध स्त्री, बालक व पुरुष उस चौकेमें घुस न जावे। यदि शुद्ध वस्त्रधारी स्त्री व पुरुष चौकेमें जावे तो प्राशुक जलसे पग धोके जावे और जितनी दफे बाहर आवे पग धोए विना भीतर न जावे। श्रावकको घरमें अचित्त पानीसे ही व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि सचित्तका व्यवहार देखकर मुनि भोजन न करेंगे।

३. कालशुद्धि—ठीक समयपर रसोईको तय्यार करके रखना व ठीक समयपर ही मुनिको दान देना। सामायिकके समयके पहले २ ही सर्व निवटा देना याने ११ बजेके पहले ही।

४. भावशुद्धि—दातारको यह कभी भाव न करने चाहिये कि आज मुनि महाराजको पड़गाहना है इस कारण ऐसी २ रसोई बनाऊं, क्योंकि मुनिके लिये मैं कुछ बनाऊं ऐसे संकल्पसे बनी हुई रसोईके आरंभका दोष दातारको लगता है। तथा यदि ऐसा मुनिको भ्रम हो जाय कि मेरे लिये यह रसोई खास तौरसे की गई है तो वे कभी भोजन न करेंगे। दातार अपने रोजके अनुसार ही खास अपने व अपने कुटुम्बके लिये जितनी रसोई रोज बनती थी उतनी ही बनवावे, आज मुनिको दान करना है इससे ज्यादा रसोई बनवाऊं ऐसा संकल्प न करे। अपने भाव

ऐसे रक्खे कि जो मैं खाता हूं उसमेंसे विभाग करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा जान हर्ष पूर्वक शुद्ध भावसे दान दे—सो भावशुद्धि है।

द्रव्यविशेष ।

जो कोई श्रावक मुनिको दान करनेकी इच्छा करके नाना प्रकारके व्यंजन मुनिको प्रसन्न करनेकी कामनासे बनवाता है वह उद्देशिक भोजनका दानकर पापका बंध करता है। जो भोजन रसोईमें अपने यहां तय्यार हो उसमेंसे भी वह भोजन मुनिको दो जो उनके शरीरको हानिकारक न हो, किन्तु उनके संयमको बढ़ानेवाला हो जैसा कि कहा है:—

"रागद्वेषासंयममदुःखभयादिकं न यत्कुरुते ।
द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धिकरम् ॥१७०॥

अर्थात् ऐसा द्रव्य भोजनमें देना चाहिये जो मुनिके राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, रोग आदिको पैदा न करे, किंतु जो सम्यक्, तप और स्वाध्यायको बढ़ानेवाला हो याने गरिष्ट भोजन, आलस्य लानेवाला भोजन कभी न दो। जैसे तुम्हारे यहां मूंगकी उड़दकी दाल, भात, रोटी गेहूंकी व बाजरेकी व लड्डू चनेके तय्यार हैं तो तुम मुनि महाराजके शरीर व ऋतुको देखकर ऐसा भोजन दो जो शीघ्र पचे और हलका हो याने तुम मूंगकी दाल, गेहूंकी रोटी व भात अधिक दो, लड्डू व बाजरेकी रोटी व उड़दकी दाल बहुत कम दो या न दो।

दातृविशेष ।

दानका देनेवाला बहुत विचारवान होना चाहिये। छोटे

बालक व नादान स्त्री व असमर्थ निर्बल रोगी मनुष्यको दानके लिये नहीं उठना चाहिये, ऐसे जीव केवल दानको देते हुए देख-कर उसकी अनुमोदना कर सक्ते हैं।

दातारमें मुख्यतासे ७ गुण होने चाहिये।

"ऐहिकफलानपेक्षाक्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम्। अविषादित्वमुदित्वे निरहङ्कारित्वमिति हि दातृगुणाः॥१६९॥ (पु० सि०)

भावार्थ–१. ऐहिकफलानपेक्षा–दानका देनेवाला लौकिक फलकी इच्छा न करे कि मुझे धन व पुत्र व यशका लाभ हो।

२. क्षान्तिः– क्षमाभाव रक्खे, यदि दानके समय कोई क्रोध आनेका कारण भी बने तो क्षमा भावसे उसे रोके।

३. निष्कपटता– कपट व छल भावको न करे, शुद्ध पदार्थ देवे, छलसे अशुद्ध वस्तुका दान न करे व अन्य किसी प्रकारका कपट मनमें न रक्खे।

४. अनसूयत्व–दान देते हुए अन्य दातारोंसे ईर्षाभाव न रक्खे कि मैं अन्योंसे बढ़ चढ़ कर औरोंको लजाकर दान करूं।

५. अविषादित्व–दानके समय किसी प्रकारका रंज, शोक न करे।

६. मुदित्व– दान देते समय हर्षित भाव रक्खे।

७. निरहङ्कारित्व– दातार इस बातका अहंकार न करे कि मैं बड़ा दानी हूं मेरे तो पात्रका लाभ सुगमतासे हो जाता है, मैं पुण्यात्मा हूं, अन्य तो पापी हैं।

शास्त्रके भावको जाननेवाला दातार हो। जो केवल इसी भावसे दान करे कि मेरे निमित्तसे इनके रत्नत्रय पालनमें सहायता होगी सो मेरा द्रव्य आज सफल हुआ–मोक्ष साधनमें परिणत हुआ। धन्य है मुनि ! मैं कब ऐसे रत्नत्रयको पालने योग्य हूंगा· ऐसा हर्षायमान होता हुआ अपनेको कृतार्थ और धन्य माने।

पात्रविशेष।

जो दान लेने योग्य हो उसको पात्र कहते हैं। पात्र तीन प्रकारके होते हैं:–

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मोक्षकारणगुणानाम्।
अविरतसम्यग्दृष्टिर्विरताविरतश्च सकलविरतश्च॥
॥ १७१ ॥ (पु० सि०)

भावार्थ–जिनमें मोक्ष प्राप्तिके साधन जो सम्यग्दर्शनज्ञान–चारित्र आदि गुणोंका संयोग हो अर्थात् जिनमें यह गुण पाए जावें वे पात्र हैं। ऐसे पात्र उत्तम, मध्यम, जघन्यके भेदसे तीन प्रकार हैं:–

सर्व परिग्रहके त्यागी महाव्रतधारी मुनि तो उत्तम पात्र हैं। व्रतरहित, परन्तु सम्यक्त कहिये जिन धर्मकी सच्ची श्रद्धासहित जो गृहस्थी श्रावक हैं वे जघन्य पात्र हैं तथा इनके मध्यमें जितने भेद हैं वे सब मध्यमपात्र हैं याने व्रतके धारी सर्व भेदरूप श्रावक मध्यमपात्र हैं। इनमें भी उत्कृष्ट क्षुल्लक ऐलक हैं व अनुमति त्यागी श्रावक हैं। मध्यम ब्रह्मचारीसे लेकर परिग्रहत्यागी तक हैं और जघन्य दर्शनिक श्रावकसे ले रात्री भोजन–त्यागी श्रावक तक हैं। ये सर्व ही दान देनेके योग्य धर्मके स्थान हैं।

दान करनेकी रीति।

गृहस्थी श्रावक रसोई तयार होनेपर रोज़ घरके द्वारपर खड़ा रहता है और यदि मुनि आ जाएं तो उन्हें आहार दे यदि मुनिका लाभ न हो और उत्कृष्टश्रावकका लाभ हो तो उनको दान दे, यदि उत्कृष्टका लाभ न हो तो मध्यमका सम्बन्ध मिला दान देवे। यदि मध्यमका लाभ न हो तो जघन्यव्रतीको दान देवे। यदि जघन्यव्रतीका भी लाभ न हो तो जघन्य पात्र अव्रती जैन धर्मके श्रद्धालुको दान देवे। क्षुल्लक व ऐलक तो अकस्मात् आजाते हैं तब ही उनको भक्ति पूर्वक आहार दे सक्ता है। अनुमतिश्रावक भोजनके समय बुलाये जाने पर आहारके लिये चले आते हैं। शेष नीचेके सर्व जैनी पहले निमंत्रण देने पर व भोजनके समय बुलाने पर भी आहारार्थ आ सक्के हैं। सर्वको दान विनय पूर्वक ही देना योग्य है। यदि किसी भी पात्रका लाभ न हो तो अपनेको निन्दता हुआ कोई रस व कोई वस्तुको त्यागता तथा दुःखित भुखितके दान करनेको भोजन अलग रख व उसको जिमा आप भोजन करता है।

इस चौथे शिक्षाव्रतीश्रावकको नित्य शुद्ध रसोई बनानी चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार कमसे कम रोटी व आधी रोटी भी दानकर फिर भोजन करना चाहिये।

आजकल वहुधा जैनी जैनीद्वारा निमंत्रणको स्वीकार करनेमें अपनी लज्जा समझते हैं सो नहीं चाहिये। परस्पर एक दूसरेको दानकर धर्मकी भावनाको बढ़ाना चाहिये। धर्मसाधनकी इच्छासे भक्ति पूर्वक कोई अपनेको निमंत्रण दे तो उसको कभी इनकार

न करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उस दातारके परिणामोंको आनन्द न होकर खेद होगा।

इस चौथे शिक्षाव्रतके विशेष कर मुनियोंको व उत्कृष्टश्रावकको दान करनेकी अपेक्षा पांच अतीचार हैं उनको बचाने चाहिये।

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥ (उमा० स्वा०)

१. सचित्तनिक्षेप—जीवसहित जो वनस्पति जैसे हरे पत्ते आदिक उसपर दान योग्य भोजनका रखना।

२. सचित्तापिधान—सचित्त वनस्पति हरे पत्ते आदिक व पुष्प आदिसे किसी भोजनपानको ढकना।

३. परव्यपदेश—आप पात्रको पड़गाहकर भी स्वयं दान न देकर दूसरेको दान देनेको कहकर आप अपने कामपर चले जाना।

४. मात्सर्य्य—दूसरे दातारोंसे ईर्षाभाव रखते हुए दान देना।

५. कालातिक्रम—दानके समयको उलंघन कर देना। पात्रको पड़घायकर भोजनदानमें अधिक विलम्ब लगाना जिससे पात्रको सामायिक करनेकी चिन्तासे भोजन लेनेमें आकुलता व शीघ्रता करनी पड़े।

दातार इन पांच दोषोंको बचाता है जिससे पात्रको शुद्ध दान समतासे कर सके।

दानके चार भेद हैं:—आहार, औषधि, अभय और विद्या (ज्ञान)। गृहस्थी श्रावक इन चारों ही प्रकारका दान पात्रोंको करे याने भोजन देवे, औषधि बांटे, रहनेको स्थान दे व विद्या

पढ़ानेमें मदद देवे। ये चारों प्रकारके दान करुणादानकी अपेक्षासे सर्वको करे (जिनको इनकी आवश्यक्ता हो)।

इस ही वैय्यावृतमें श्री अर्हंतकी पूजा भी गर्भित है। जैसा कि श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी कहते हैं:—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणं।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं॥११९

अन्वय—कामदुहि कामदाहिनी देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणं आदृतः नित्यं परिचिनुयात्।

अर्थ—भव्यकी इच्छाके पूर्ण करनेमें निमित्त तथा कामवाणके भस्म करनेवाले देवोंके अधिपति श्रीअरहंतदेवके चरणोंमें पूजन करना सर्व दुःखोंको हरनेवाला है, इसलिये आदरपूर्वक नित्य पूजन करनी योग्य है। श्रावकको योग्य है कि अष्ट द्रव्योंसे अपने भावोंको लगाकर श्रीअरहंतकी पूजा करे। यह पूजा महान पुण्य बंध करनेके सिवाय आत्माको वैराग्य भावनामें तथा मुक्तिके प्रयत्नमें दृढ़ करनेवाली है।

इस प्रकार ये ११ व्रत व्रतप्रतिमा याने श्रेणीमें पालने योग्य हैं। इसके सिवाय इस श्रेणी वालेको और भी कई बातोंके विचार करनेकी आवश्यक्ता है। यह व्रती १२ व्रतोंमें ५ अणुव्रतोंके अतीचारोंको अवश्य बचानेकी पूरी सम्भाल रखता है तथा ७ शीलके दोषोंको यथाशक्ति बचाता है अर्थात् जैसे परिणाम चढ़ते जांय उनको बचाता जाता है—नियमरूप नहीं है। यदि ५ व्रतोंके पालनेमें कोई दोष लग जाय तो उसका दंड याने प्रायश्चित्त लेता है जिससे आगामी वह दोष न लगे।

रात्रि भोजन त्यागि।

पंडित आशाधरजीके मतसे इस व्रतीको चारों प्रकारका भोजन रात्रिको नहीं करना चाहिये। जैसा कहा है:-

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धाऽपि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत् ॥२४॥
योऽत्ति त्यजन् दिनाद्यन्तमुहूर्तौ रात्रिवत्सदा।
स वर्ण्येतोपवासेन स्वजन्मार्द्धं नयन् कियत् ॥२९॥

अर्थ—अहिंसा व्रतकी रक्षा और मूलव्रतकी उज्वलताके लिये धीरपुरुष रात्रिको चारों ही प्रकारका भोजन सदा मन, वचन, कायसे त्यागे। जो १ महूर्त याने २ घड़ी याने ४८ मिनट दिन बाकी रहे तबसे भोजन छोड़े और जब इतना ही दिन चढ़ जाय तब तक भोजन न करे सो अपना आधा जन्म उपवासमें बितावे।

इस विषयका विशेष खुलासा रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाके स्वरूपसे विदित करना योग्य है।

मौनसे अंतराय टाल भोजन।

चूंकि यह व्रती मोक्ष-मार्गमें लवलीन है, अध्यात्मिक उन्नतिको बढ़ाना चाहता है, इसलिये अपने शरीर और मनका व्यापार इस प्रकारसे करता है जिससे शरीरमें कभी कोई रोग न हो तथा मनमें अपवित्रता, लोभ, इन्द्रिय लम्पटता न आवे। अपने आत्मकल्याणमें इस प्रकार वर्तते हुए कुटुम्बादिके पोषणके निमित्त यथासंभव आजीविका करता है। परन्तु अपना जीवन समय और नियमकी पाबन्दीसे बिताता हुआ व्यर्थ अपने अमूल्य समय और

शक्तिके उपयोगसे अपनेको रक्षित करता है और यथार्थ उपयोगमें लगा प्रमाद आलस्यको जीतता हुआ एक बड़ा विचारशील व्यक्ति हो जाता है।

गृहस्थी श्रावकव्रती भोजन करते हुए मौन रखता है।

प्रश्न—मौन रखनेसे क्या लाभ है?

भ्रूनेत्रहुंकारकरांगुलाभिर्गृद्धिप्रवृत्त्यैः परिवर्ज्य संज्ञाम्।
करोति भुक्तिं विनिताक्षवृत्तिः स शुद्धमौनव्रतवृद्धकारी॥
संतोषं भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दर्श्यते।
संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते॥
लौल्यत्यागात्तपोवृद्धिरभिमानस्य रक्षणम्।
ततश्च समवाप्नोति मनःसिद्धिं जगत्त्रये॥
वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता।
आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्ज्वलम्॥
परानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिना मौनकारिणा॥ (आशाधर)

भावार्थ—भोजन करते समय मुखसे कुछ न कह मौन रक्खे तथा अपनी भौंहोंसे, आंखोंसे, हुंकारसे, हाथकी अंगुलीसे इशारा भी न करे; क्योंकि कोई इष्ट भोग्य चीज मांगनेसे अपनी भोजनमें गृद्धता होती है। मौन रखनेसे अपनी जिव्हा इंद्रिय पर विजय प्राप्त होती है। परन्तु जो कोई पात्रमें कुछ देता हो और अपनी इच्छा लेनेकी न हो तो उसके निषेधके लिये इशारा करना मना नहीं है। जैसा कहा है:—

"तन्निषेधार्थं तु हुंकारादिना संज्ञा करणेऽपि न दोषः" (आशाधर)

अर्थात् भोजनके मना करनेके लिये हुंकार व कोई चिन्ह आदिसे इशारा करनेमें भी दोष नहीं है। मौनसे भोजन करनेवाला संतोषकी भावना करता है, वैराग्यको पाऽता है, संयमकी पुष्टि करता है। भोजनकी लोलुपताके छोड़नेसे तपको बढ़ाता है, अपने अभिमानकी रक्षा करता है तथा तीन जगत्में मनकी सिद्धि प्राप्त करता है। जो उज्ज्वल मौन धारण करता है उसकी वाणी याने भाषा मन-मोहनी, शास्त्रके विचारमें भीगी हुई तथा प्रभावशाली होती है। जो बुद्धिमानोंके द्वारा बन्दनीक पद हैं वे सर्व मौनव्रतीको प्राप्त हो सक्ते हैं।

जिस कार्य्यको करें उसीमें हमको एक ध्यान होना चाहिये इसीलिये भोजनके समय किसी और बातमें मनको न रखकर भोजन व पात्रमें ही ध्यान रखना चाहिये जिससे कोई जीव जंतु न गिरने पावे व भोजनमें साथ न चला जाय। जितनी मनकी शांति, संतोष और संक्लेश रहितताके साथमें आहार किया जायगा उतनी ही अधिक आहारद्वारा शरीरको पुष्टता प्राप्त होगी तथा मौन रखनेसे मुख भोजन चबानेमें ही प्रवृत्त होगा, एक ही समयमें बोलनेका काम भी नहीं करेगा। दोनों काम एक समयमें लेना मुखपर प्रबल चाकरी बजाना है। खाते समय बोलनेसे मुखके छींटे चारों ओर जावेंगे और वृथा अधिक समय भी जायगा।

भोजन यदि आप ही बनावे और आप ही करे तौ भी मौनसे अपने योग्य जो हो उसे अलग कर ले, यदि थालीमें फिर

भी लेना पड़े तो ले सक्ता है–दूसरेसे याचना करना ठीक नहीं है। यहांतक कि अपने ही घरमें अपनी स्त्रीसे भी मांगना उचित नहीं है। भोजनके पहले जो इच्छा हो उसे थालीमें ले लेवे फिर भोजन करते समय नहीं मांगे, वह देवे तो लेवे, न लेना हो तो इनकार कर देवे।

बालक और बालिकाओंको जन्मसे ही मौनके साथमें भोजन करना सिखाना चाहिये। मौनकी आदत न होनेके कारण बहुधा लोग भोजन करते हुए कुछ भी मनकी इच्छा विरुद्ध चीज होनेपर महाक्रोध करते हैं, कुवचन बकते हैं और सारे कुटुम्बको क्लेशित बना देते हैं। मौनव्रत मनुष्यको कषाय जीतनेके लिये अच्छा अस्त्र है। मौनसहित भोजन करते हुए अंतराय बचाने चाहिये। यदि नीचे लिखे कारण बन जाय तो उसी समय भोजन करता २ रुक जावे और फिर वह भोजन उस समय न करे। अंतर्मूहुर्त्तके पीछे दूसरा शुद्ध भोजन कर सक्ता है।

अंतराय।

दृष्ट्वार्द्रचर्मास्थिसुरामांसासृक्पूयपूर्वकम्।
स्पृष्ट्वारजस्वलाशुष्कचर्मास्थिशुनकादिकम् ॥३१॥
श्रुत्वाऽतिकर्कशाक्रन्दविड्वरप्रायनिस्वनम्।
भुक्त्वा नियमितं वस्तु भोज्येऽशक्यविवेचनैः ॥३२॥
ससृष्टे सति जीवद्भिर्जीवैर्वा बहुभिर्मृतैः।
इदं मांसमितीदृशं संकल्पे चाशनं त्यजेत् ॥ ३३ ॥

सं० टीका—दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च अशुष्कं चर्म्म अस्थि मद्यं;

मांसं, अस्टक् पूयं व्रणादिगतं पक्क अस्टक् पूर्व शद्वात् वशांऽत्रादि तथा स्पृष्ट्वा न दृष्ट्वा रजस्वलां शुष्क चर्म्म अस्थि शुनकं श्वानं आदि शब्देन मार्जार स्वपचादि, तथा श्रुत्वा अस्य मस्तकं क्रन्द इत्यादि रूपं अतिकर्कश निःशनं, आक्रंद निस्वनम् हाहा इत्यादि आर्त्तस्वरस्वभावं विड्वरप्राय निस्वनंपरचक्र आगमनं आतंक-प्रदीपनादि विषयं तथा भुक्त्वा नियमितं प्रत्याख्यातं वस्तु, भोज्ये भोक्तव्ये द्रव्ये सति किं विशिष्टे संस्पृष्टे मिलिते कैर्जीवैर्द्विचतु-रिन्द्रियप्राणिभिः किं कुर्वद्भिः जीवद्भिः किं विशिष्टैः अशक्य-विवेचनैः भोज्यद्रव्यात् पृथक् कर्तुं अशक्यैः अथवा संस्पृष्टैर्कैर्मृतै-र्जीवैः कतिभिः बहुभिः त्रिचतुरादिभिः तथा इदं भुज्यमानं वस्तु मांसं सादृश्यात् इदं रुधिरं इदं श्वाख्यायं सर्प इत्यादि रूपेण मनसाम-विकल्पमाने ॥

भावार्थ—देखने और छूने दोनोंके अंतराय इस भांति हैं:—

(१) गीला चमड़ा (२) गीली हड्डी (३) मदिरा (४) मांस (५) लोहू (६) घावसे निकली हुई पीप (७) नसें आंतें वगैरह ।

जो केवल छूनेके अंतराय देखनेके नहीं:—

(१) रजस्वला स्त्री (२) सूखा चमड़ा (३) सूखी हड्डी (४) कुत्ता, विल्ली, चांडालादि हिंसक जानवर ।

केवल सुनने मात्रके अंतराय:—

(१) इसका मस्तक काट डालो इत्यादि अति कठोर शब्द (२) हाय हाय करके आर्त्त बढ़ानेवाला रोना (३) आपत्तियोंका

सुनना जैसे शत्रुकी सेनाका आना, रोगका फैलना, अग्निका लगना मंदिरादिपर उपसर्ग आदि। केवल भोजन करनेके:-

(१) छोड़ा हुआ पदार्थ (नियम किया हुआ पदार्थ) खानेमें आ जावे (२) भोजन करने योग्य जो भोज्य पदार्थ उसमें दो इंद्री, तेंद्री, चौंद्री कई जीव जीते पड़ जांय और उनको निकाला न जा सके तो अंतराय। (३) भोज्य पदार्थमें कई याने तीन चार मरे जीव मिलें तो अंतराय। (४) यह भोजन मांसके रुधिरके व सांप इत्यादिके समान हैं—ऐसा मनमें संकल्प होनेपर जिससे चित्तमें घृणा हो जावे। इस प्रकार सब मिलके १८ अंतराय हैं।

नोट—जब भोज्य पदार्थमें तीन चार मरे जीव मिलें तो अंतराय माना जाय ऐसा कथन है। तब यह सिद्ध होता है कि एक या दो मरे जीव हों तो अंतराय नहीं होगा; किन्तु जिसमें मिले हों उस भोजनको अलग कर देगा। जब यहां यह अभिप्राय निकलता है तब ऊपर जो गीले व सूखे चर्म, मांस, रुधिर आदिके अंतराय हैं वे सर्व पंचेद्रिय पशुकी अपेक्षासे हैं—ऐसा विदित होता है। किसी किसीका कहना है कि लोहूकी धार अपने या दूसरेके शरीरसे ४ अंगुल बहती देखे तो अंतराय होवे।

ज्ञानानंदनिजरसनिर्भर श्रावकाचारमें अंतराय इस भांति कहे हैं:-

१. मदिरा, २. मांस, ३. हाड़, ४. काचाचर्म, ५. चार अंगुल लोहूकी धारा, ६. बड़ा पंचेन्द्री मुवा जानवर, ७. भिष्टा-

मूत्र, ८. चूहड़ा–इन आठनिको प्रत्यक्ष नेत्रानि करि देखने हीका भोजनमें अंतराय है।

१. सूखा चर्म, २. नख, ३. केश, ४. ऊन, ५. पांख, ६. असंयमी स्त्री वा पुरुष, ७. बड़ा पंचेंद्री तिर्यंच, ८. रितुवंशी स्त्री, ९. आखड़ीका भंग, १०. मलमूत्रकी शंका, ११. मुरदाका स्पर्शन, १२. कांसा विषै कोई त्रस मृतक जीव निकसे, १३. बाल कांसा विषै निकसै, १४ हस्तादिक निज अंग सो वेंद्री आदि छोटा बड़ा त्रस जीवका घात इत्यादि। भोजन समय स्पर्श होय तो भोजन विषै अंतराय। बहुरि मरण आदिकका दुःख ताका विरह करि रोवता ताका सुनना, लाय लागी होय ताका सुनवाका नगरादिकका मारवाका, धर्मात्मा पुरुषको उपसर्ग हुएका, मृतक मनुष्यका, कोईके नाक कान छेदनेका कोई चोरादिकने मारवा ले गया होय ताका, चंडालके बोलनेका, जिनबिंब जिनधर्मकी अविनयका, धर्मात्मा पुरुषके अविनयका इत्यादि महापापके वचन सत्यरूप आपने भासें तो ऐसे वचन सुनने विषै भोजनका अंतराय है। बहुरि भोजन करती बार ऐसी शंका उपजे कि या तरकारी तो मांस सारिखी है व लोहू सारिखी है व हाड़ सारिखी है व चर्म सारिखी है व विष्टा व सहत् इत्यादि निंदक वस्तु सारिखा भोजन समय कल्पना उपजे अर मनमें ग्लानि होई आवे अर मन वाके चाखने विषैं औहटा होय तो भोजन विषैं मनका अंतराय है अर भोजन विषैं निंदक वस्तुकी कल्पना ही उपजे और मन विषैं वाका जानपना होय तो अंतराय नाहीं। ऐसे देखवाका ८, स्पर्शका २०, सुनवेका १०, मनका ६ सर्व चारों

प्रकारके ४४ अंतराय जानना।" करीब १ इसी जातिका संस्कृत पाठ सोमसेनकृत त्रिवरणाचारमें प्राप्त होता है जो इस भांति है:—
(अध्याय छठा)

प्राणघातेऽन्नवाष्पेण, वन्हौ झंपत्पतंगके ।
दर्शने प्राणघातस्य, शरीराणां परस्परं ॥ १८५ ॥
कपर्द (कौड़ी)केशचर्मास्थिमृतप्राणिकलेवरैः ।
नखगोमयभस्मादि मिश्रितान्ने च दर्शिते ॥१८६॥
उपद्रुते विडालाद्यैः प्राणिनां दुर्वचः श्रुतौ ।
शुनां श्रुते कलिध्वाने ग्रामघृष्टि(शूकर,ध्वनौ श्रुते१८७
पीड़ारोदनतः श्वानग्रामदाहशिरच्छिदः ।
धाट्यागमरणप्राणिक्षयशब्दे श्रुते तथा ॥ १८८ ॥
नियमितान्न संभुक्ते प्रागदुःखाद्रोदने स्वयम् ।
विट्शंकायां क्षुते वान्तौ मूत्रोत्सर्गेऽन्यताड़िते॥१८९
आर्द्रचर्मास्थिमांसासृक् पूयरक्तसुरामधौ ।
दर्शने स्पर्शने शुष्कास्थिरोमविट्जचर्मणि ॥१९०॥
ऋतुमती प्रसूता स्त्री मिथ्यात्वमलिनाम्बरे ।
मार्जारमूषकश्वानगोऽश्वाद्यतिवालके ॥ १९१ ॥
पिपीलिकादि जीवैर्वा वेष्ठितान्नं मुनैश्च वा ।
इदं मांसमिदं चेदृक् संकल्पे वाऽशनं त्यजेत् ॥१९२॥

भावार्थ—१. अन्नकी भाफसे किसी प्राणीका मरण, २. आगमें किसी पतंगका जलना, ३. परस्पर कई शरीरोंका प्राणघात, ४. कौड़ी, ५. बाल, ६. चमड़ा, ७. हड्डी, ८. मरे हुए प्राणी,

९. नाखून, १०. गोबर और ११. भस्मादिसे मिला हुआ अन्न देखनेपर, १२. बिल्ली आदिका उपद्रव होनेके कारण प्राणियोंके दुर्वचन, १३. कुत्तोंकी कलकलाहट, १४. गांवके शूकरोंकी कलकलाहट, १५ कुत्तेका पीड़ाके कारण रोना, १६. ग्रामका दाह, १७. किसीके सिरका छेद, १८. और चांडालद्वारा किसी प्राणीका मरण सुने जानेपर, १९ छोड़ा हुआ अन्न खा जानेपर, २० स्वयं कोई पूर्व दुखकी यादसे रुलाई आ जानेपर, २१ पाखानेकी शंका होनेपर, २२. छीक आ जानेपर, २३. वमन हो जानेपर, २४ मूत्र निकल जानेपर, २५. दूसरेसे पीटे जानेपर, २६. गीला चमड़ा, २७. हाड़, २८. मांस, २९. असृक, ३०. पीप, ३१. रक्त, ३२. मदिरा, ३३. तथा मधु देखनेपर, ३४. सूखा चमड़ा, ३५. हड्डी, ३६. रोमसहित चर्म, ३७. रजस्वला व प्रसूती स्त्री, ३८. मिथ्यात्वी, ३९. मलीन कपड़े पहने हुए, ४०. बिल्ली, ४१. चूहा, ४२. कुत्ता, ४३. गौ, ४४. घोड़ा ४५. अव्रती, ४६. बालक इन सबसे भोजन स्पर्शित हो जानेपर तथा ४७. कई चींटी आदि जीती या मरी हुई से वेष्टित अन्न होनेपर, ४८. यह मांस है या कोई निषिद्ध चीज है—ऐसा संकल्प होनेपर भोजन करते अंतराय करे याने फिर भोजन मुखमें न देवे। यदि किसीको दो वार भोजनका नियम है तो एक वार अंतराय हो जानेपर कमसे कम अंतर्मुहूर्त पीछे दुबारा भोजन कर सक्ता है।

ज्ञानानंदश्रावकाचारके अनुसार श्रावकको ७ जगह मौन रखनी चाहिये अर्थात् देवपूजा, २. सामायिक, ३. स्नान, ४. भोजन, ५. स्त्री मैथुन, ६. लघुशंका, ७. दीर्घशंका। तथा ऊपरसे कोई

जीव जंतु न पड़े इसलिये इतनी जगह चंदोबा भी चाहिये। १. पूजाका स्थान, २. सामायिकका स्थान, ३. चूल्हा, ४. पन्हेड़ा (पानीका स्थान) ५. उखली, ६. चक्की, ७. भोजन स्थान, ८. शय्यास्थान, ९. आटा चालनेका स्थान, १०. व्यापारका स्थान, ११. धर्मचर्चाका स्थान।

अध्याय नवमां।

सामायिकप्रतिमा।

व्रतप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास करके अधिक ध्यान करनेकी अभिलाषासे तीसरी श्रेणीमें आकर सामायिककी क्रियाको नियम पूर्वक दिनमें ३ वार जो विधि पहले कह चुके हैं उस प्रमाणसे करना योग्य है। इस अभ्यासमें सामायिकका काल यद्यपि अंतर्मुहूर्त है तथापि ध्यानकी वृद्धिके वास्ते दो घडी या ४ घडी या ६ घडी भी लगा देवे जैसी अपनी थिरता और परिणामोंकी योग्यता देखे। नियम तो अंतर्मुहूर्त ही का है, जोकि जघन्य १ समय और १ आंवली, उत्कृष्ट ४८ मिनटसे एक समय कम, मध्य कम, अनेक भेदरूप होता है। जहां तक बने २ घड़ी याने ४८ मिनटसे कम सामायिक प्रति संध्यामें न करे।

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुः प्रणामः स्थितो यथा जातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥ (र० क०)

भावार्थ—जो चार आवर्त्तके हैं त्रितय जिसके अर्थात् एक २ दिशामें तीन २ आवर्तका करनेवाला इस प्रकार १२ हैं आवर्त्त

जिसके, चार हैं प्रणाम जिसके, कायोत्सर्गसहित बाह्याभ्यंतर परिग्रहकी चिन्तासे रहित, दो हैं आसन जिसके (खड्गासन व पद्मासन), तीनों योग हैं शुद्ध जिसके अर्थात् मन, वचन कायके व्यापार जिसके शुद्ध हैं और तीनों संध्याओंमें अभिवंदन करनेवाला अर्थात् प्रातःकाल मध्यान्हकाल और सायंकाल–इन तीनों कालोंमें सामायिक करनेवाला ऐसा व्रती सामायिक प्रतिमाका धारी श्रावक है।

आर्त्तरौद्रपरित्यक्तास्त्रिकालं विदधाति यः।
सामायिकं विशुद्धात्मा स सामायिकवान्मतः॥
॥ ८३५ ॥ (सु० र० सन्दोह)

अर्थ–जो धर्मात्मा आर्त्त और रौद्र ध्यानोंको छोड़कर तीनों काल सामायिक करता है उसे सामायिक प्रतिमावान कहते हैं।

जिणवयण धम्मचेईय परमेट्ठि जिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु॥ ३७२॥
(स्वा० अ०)

सामायिक प्रतिमावाला नित्य ही तीनों कालोंमें जिनवाणी जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पंचपरमेष्ठी और जिनमंदिर इन ९ देवताओंको बन्दना करता है और साम्यभावसे सामायिक करता है। यहां परोक्ष वंदनासे अभिप्राय है जो सामायिकके समय की जाती है।

सामायिकके समय १२ भावनाओंको विचारता हुआ अत्यंत उदासीन रहे। यदि उपसर्ग भी पड़े तो सामायिक छोड़कर भागे नहीं। आत्माको भिन्न अनुभव करता हुआ शरीरकी अवस्थाके पलटनका केवल ज्ञाता ही रहे–आप अपने आत्माको सदा भिन्न ही विचारे। इस प्रकार सामायिक करनेवाला इसके पांचों दोषोंको

भले प्रकार टाले और यदि कोई कारणवस कोई अतिचार लग जावे तो प्रायश्चित लेवे।

सामायिकका विशेष विवरण व्रतप्रतिमाके अध्यायमें कहा जा चुका है। सामायिक प्रतिमावालेके ३ काल सामायिक करनेका नियम है जब कि व्रत प्रतिमावालेके रोज सामायिकका दृढ़ नियम नहीं है–अभ्यास है।

प्रश्न–इन दोनोंमें क्या अन्तर है?

इस विषयमें ज्ञानानंदश्रावककाचारमें इस भांति कहा है "दूसरी प्रतिमाके विषै आठै चौदस वा और परव्यां विषै तो समायिक अवश्य करे ही करे। अपि सर्व प्रकार नियम नाहीं है करे वा नाहीं करै अर तीसरी प्रतिमाके धारीके सर्व प्रकार नियम है।" इससे भी यही अभिप्राय निकलता है कि व्रतप्रतिमावाला पर्वियोंमें तो अवश्य करे नित्यका दृढ नियम व्रतीके नहीं, जब कि सामायिक प्रतिमावालेके है तथा सामायिक प्रतिमावाला कितनी देर तक सामायिक करे इस विषयमें आत्मानुभवी पंडित बनारसीदासजी अपने नाटक समयसारमें इस प्रकार कहते हैं:–

तृतीय प्रतिमा–दरव भाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक।
तजि ममता समता गहे, अन्त महूरत एक॥

अध्याय दशवां।

प्रोषधोपवासप्रतिमा.

पर्वदिनेसु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायीप्रणाधि परः प्रोषधानशनः॥
॥ १४० ॥ (र० क०)

भावार्थ—जो हर महीनेकी चारों ही पर्वियोंमें अर्थात् १ अष्टमी व २ चौदसको अपनी शक्तिको न छिपाकर शुभ ध्यानमें तत्पर होता हुआ प्रोषधके नियमको रखता है सो प्रोषधोपवास प्रतिमावाला है।

मासे चत्वारि पर्वाणि तेषु यः कुरुते सदा।
उपवासं निरारम्भः प्रोषधीः समतो जिनैः ॥८३६॥
(सु० र० स०)

अर्थ—एक मासमें चार पर्वियें होती हैं, उनमें जो श्रावक सदा ही आरम्भ त्यागके उपवास करता है वह प्रोषधप्रतिमाधारी है—ऐसा श्रीजिनेन्द्रोंने कहा है। जिसका विशेष वर्णन व्रतप्रतिमामें किया जा चुका है। यदि अपनी शक्ति हो तो सप्तमी व तेरसको एक भुक्तकर ९ वीं व १५ को भी एक भुक्त करे और १६ पहर धर्मध्यानमें बितावे। यदि ऐसा न बने तो जलके सिवाय इन १६ पहरोंमें और कुछ ग्रहण न करे। यदि यह भी न बने तो १६ प्रहर धर्मध्यान करे। बीचके दिन नीरस भोजन आदि जैसा पहले कहा है ग्रहण करे।

दूसरी रीति यह है कि—१६ प्रहर उत्कृष्ट, १२ प्रहर मध्यम और ८ प्रहर जघन्य प्रोषध करे अर्थात् इतने काल तक धर्मध्यान व धर्मकी भावना व धर्मके कार्य्योंमें लगा रहे। आरम्भ व्यापार व घरके कार्य्य न करे। प्रतिमावालेको अवश्य ही अष्टमी व चौदसको धर्मध्यानसहित उपवासके साथ रहना होगा—यह नियम है।

यहां वैराग्य विशेष बढ़ जाता है। जैसी थिरता परिणामोंकी देखे वैसा उपवास करे। केवल १६ प्रहर भूखा रहनेसे और आर्त्त परिणाम बढ़ानेसे प्रोषध नहीं होता। प्रयोजन यह है कि वह श्रावक इतने काल निवृत्त रहकर वीतराग परिणतिको बढ़ावे और निज आत्मानन्दको प्राप्तकर परमसुखी होवे। इस व्रतके पांचों अतीचारोंको टाले। यदि प्रमादवश कोई लग जावे तो प्रायश्चित्त लेवे।

प्रोषधप्रतिमा और व्रतप्रतिमामें क्या अन्तर है? इस विषयमें ज्ञानानंद श्रावकाचारमें यह लेख है "दूजी तीजी प्रतिमाके धारीके प्रोषध उपवासका संयम नाहीं है, मुख्यपने तो करै है गौनपने नाहीं भी करे। अर चौथी प्रतिमा धारीके नियम है कि यावज्जीव करै ही करे।" आत्मानुभावी पंडित बनारसीदासजी नाटक समयसारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहते हैं:—

सामायिक कीसी दसा। चारि प्रहर लों होय।
अथवा आठ प्रहर रहे। प्रोसह प्रतिमा सोय॥

अध्याय ग्यारवां।

सचित्तत्यागप्रतिमा।

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानियोऽत्तिसोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः॥१४१

(र० क०)

जो आमानि कहिये कच्चे व अप्राशुक व अपक्व, मूल, फल,

शाक, शाखा; गांठ व केर, कंद फूल और बीज नहीं खाता है सो दयावान सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है ।

इस श्रेणीमें यह श्रावक कोई भी चीज जो सचित्त हो याने जीवसहित हो मुखमें नहीं देता है । कच्चा पानी नहीं पीता, फल आदि एकाएक मुंहमें दे तोड़ता नहीं । प्राशुक करनेकी जो विधि है उस प्रमाणे अचित्त की हुई चीजोंको ही खाता है । जो अनाज बोने योग्य हो चाहे सूखा भी है योनिभूत होनेके कारण सचित्त है ।

सचित्तं पत्त फलं छल्ली मूल च किसलयं बीजं ।
जोणय भक्खदि णाणी सचित्तविरओ हवे सोवि
॥ २७८ ॥ (स्वा० अ०)

अर्थ–पत्त–नागवल्ली, दल लिम्ब पात्र सर्षप चणकादि पत्र धतूरादि दल पत्र शाकादिकं न अश्नाति याने नागवेल, नीम, सरसों, चने, धतूरेके पत्र व शाकादि न खावे ।

फल–चिर्भट कर्कटिका कूष्मांड निबुफल दाडिम बीजपुर अपक्कआम्रफल कदलीफलादिकं अर्थात् खीरा, ककड़ी, कूष्मांड, नींबू, अनार, बिजोरा, कच्चा केला आदि ।

छल्ली––वृक्षवल्ल्यादि सचित्तत्वक् न अत्ति अर्थात वृक्षकी छाल आदिका सचित्त न खावे ।

मूलं–आर्द्रकादि लिंबादि वृक्ष वल्ली बनस्पतीनां मूलं न खादति । अदरक आदि नीमादि वृक्षोंकी व वेलादि वनस्पतिकी जड़को न खावे ।

किशलय-पल्लवं लघु पल्लवं कुपलं **अर्थात् छोटे पत्ते कोपल।**

बीज-सचित्त चणक मुद्ग तिल वर्जरिका माषाढ़की जीरक कुवेर राजी गोधूम व्राह्मयादिकं। **अर्थात् साबुत चने, मूंग, तिल, बाजरा, मसूर, जीरा, गेहूं, जौ, धान्य आदि इन सर्वका सचित्त न खावे।** बहुधा लोग खेतोंमें इन चीजोंको एकाएक उखाड़ कर व तोड़कर खाने लग जाते हैं। जैसे चनेका साग खाना, ककड़ी तोडकर मुंहमें रख लेना, छाल चबा डालना, किसी वृक्षकी जड़ उखाड़ मुखमें धर लेनी व तिल बाजरा लेकर मुंहमें धर लेना इत्यादि सचित्त भोजनकी प्रवृत्तिको यहांपर बन्द कराया है। जो वस्तु शरीरके लाभार्थ जरूरत हो उसको वह लेकर देख शोध अचित्त करके फिर खावें जिससे कुछ भी रागका विजय हो।

प्राशुक किस प्रकार होता है इसका वर्णन भोगोपभोग व्रतमें किया जा चुका है तथापि यहां श्रीगोमट्टसारकी श्रीअभयचंद सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत संस्कृतटीकाके वाक्य लिखे जाते हैं। प्रकरण सत्यवचनयोग। (पत्रे ८७ ग्रंथ चौपाटी बम्बई)

अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावस्तदाश्रितं वचो भावसत्यं यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रितदग्धादिद्रव्यं प्राशुकम् अतः तत्सेवने पापबधो नास्ति इति पापवर्जनवचनं तत्र सूक्ष्मजंतूनामिंद्रियागोचरत्त्वेऽपि प्रवचनप्रमाण्यात् प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्

सकलातींद्रियार्थज्ञानिप्रोक्तप्रवचनसत्यत्वात् ।

इसीका अर्थ भाषा गोमट्टसारटीका पं० टोडरमलकृतमें इस प्रकार है "बहुरि अतीन्द्रिय जे पदार्थ तिन विषै सिद्धान्तके अनुसार विधि निषेधका संकल्परूप परिणाम सो भाव कहिये तिहने लिये जो वचन सो भाव सत्य कहिये । जैसे सूख गया होय व अग्नि करि पचा होय व घरड़ी कोल्हू आदि यंत्र करी छिन्न किया होय व भस्मीभूत हुआ होय वस्तु ताको प्राशुक कहिये या सेवनतें पाप बंध नाहीं इत्यादि पाप वर्जनरूप वचन सो भावसत्य कहिये । यद्यपि इन वस्तुनि विषैं इंद्रिय अगोचर सूक्ष्म पाइये है तथापि आगम प्रमाण ते प्राशुक अप्राशुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा वचन सो सत्य है । जातें समस्त अतीन्द्रिय पदार्थके ज्ञानीनि करि कह्या वचन सत्य है । "

नोट–संस्कृतमें "कषायला द्रव्य व लवणके मिलानेसे भी प्राशुक होता है" ऐसा पाठ है ।

पांचवीं प्रतिमावाला प्राशुक चीजोंको खा सक्ता है इसमें कोई निषेध नहीं है । ऐसा ही सुभाषितरत्नसन्दोहमें कहा है:–

न भक्षयति योऽपक्वं कन्दमूलफलादिकम् ।
संयमासक्तचेतस्कः सचित्तात्स पराङ्मुखः ॥८३७॥

अर्थ–जो अपक्व कहिये कच्चे कन्दमूल फलादिको नहीं खाता है सो संयममें आशक्तचित्त सचित्तत्यागी कहलाता है, परन्तु अप्राशुक नहीं खा सक्ता ।

प्रश्न-भोगोपभोगमें जिन सचित्तोंका त्याग कर चुका हो उनको भी अचित्त लेवे वा नहीं ?

उत्तर-इसका समाधान यह है कि यदि भोगोपभोगमें उसने मात्र सचित्त पदार्थोंके खानेका त्याग किया है अचित्तके खानेका त्याग किया नहीं किया, तौ वह यहां भी उन सबको अचित्त रूपमें खा सक्ता है तथा यदि उसने यह त्यागा हो कि इतनी वस्तुओंको मैं सचित्तको अचित्त करकेभी नहीं खाऊंगा तौ वह इस पंचम प्रतिमामें भी उनको किसी हालतमें नहीं खावे, शेषको अचित्त रूपमें खावे; क्योंकि इसके पहली प्रतिज्ञा छूटती नहीं है।

सचित्तप्रतिमावालेके आरंभका त्याग नहीं है। इससे यह सचित्त जल, फल, साग आदिको स्वय करके या दूसरेसे अचित्त कराके खा पी सक्ता है। इसके केवल सचित्त खानेका त्याग है। व्यवहार करनेका त्याग नहीं है। सचित्त जलादिसे स्नानादि कर सक्ता है, हाथ पैर कपड़ा आदि धो सक्ता है। तौभी यदि बन सके तौ अचित्त पानीका ही व्यवहार करे, परन्तु इसके अचित्त व्यवहारका नियम नहीं है।

प्रश्न-कंदमूलादि अनंत कायका त्याग तो भोगोपभोगव्रतमें आजन्म होगया है। अब यहां कन्दको अचित्त करके खाने यह विधि क्यों की गई ?

उत्तर-वास्तवमें अनन्त कायोंका आजन्म त्याग होगया है। तथापि उस त्यागमें मुख्यता सचित्तत्यागकी है, तौ भी जिह्वा इन्द्रीकी लोलुपतावश उन अनन्त कायोंको अचित्त न करे, क्योंकि एकके घातसे अनंतका घात करेगा। यहां फिर जो

इनकी विधि की गई है, इससे यह प्रगट होता है कि जब तक आरम्भ परिग्रहका त्यागी नहीं है तब तक इसके विशेष मुख्यता इन्द्री संयमकी है और थावर प्राणोंकी रक्षाकी गौणता है। प्रयोजनसे अधिक इनकी हिंसा नहीं करता है। जैसा कहा है:-

स्तोकैकेन्द्रियघातात् गृहिणां संपन्न योग्यविषयाणां।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयं ॥७३॥

(पु० सि०)

अर्थात् योग्य विषयों करके सहित गृहस्थी प्रयोजनरूप थोड़े एकेन्द्री जीवोंके घातके सिवाय शेष स्थावरोंका भी घात न करे। इस अपेक्षासे जिव्हाके स्वादके वश तो कंदमूलादिको विराधना करके अचित्त न करे, परन्तु औषधि आदि किसी ऐसे आवश्यकीय काममें जिसमें लोलुपता जबानकी नहीं है यह ग्रहस्थी इन अनतकाय वनस्पतियोंको भी अचित्त करके काममें ले सक्ता है। जैसे बालक बीमार है और उसे अदरकका रस चाहिये तो रस निकाल करके दे सक्ता है व आपको आवश्यक हो तो ले सक्ता है। इसी कारण प्राशुकरूपसे इन पदार्थोंकी मनाई पंचम प्रतिमावालेके नहीं की गई है। भोगोपभोगमें जिह्वा इन्द्रीकी मुख्यता थी। अतएव वृथा थावरोंकी हिंसासे बचनेका गृहस्थीको उपदेश दिया गया है। इसका समाधान इसी प्रकार समझमें आता है। विशेष बहु ज्ञानी विचारें सो ठीक है।

यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह पंचम प्रतिमा भी जिह्वा इन्द्रीके रोकनेके लिये मुख्यता करके है। यद्यपि गौणतासे प्राणोंकी रक्षाका भी अभिप्राय है जैसा कहा है:-

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जयजीहाविणिज्जया तेण।
दयभावो होदि किउ जिणवयणं पालियंतेण ॥ ३८०॥
(स्वा० का०)

भावार्थ—जो सचित नहीं खाता है उसने अपनी दुर्जय जीभको जीत लिया है तथा दयाभाव कर जिन आज्ञाको पालन किया। जिसको आप सचित्त खानेका त्याग है वह दूसरोंको खिलावे भी नहीं।

जो णय भक्केदि सयं तस्सण अण्णस्स जुज्जतेदाउ।
भुत्तस्स भोजिदस्स हि णच्छि विसेसो तदोकोवि।३७९
(स्वा० का०)

भावार्थ—जो स्वयं सचित्त नहीं खाता है वह दूसरेको भी सचित्त न देवे, क्योंकि खाने और खिलाने वालोंमें कोई अन्तर नहीं है।

सचित प्रतिमाधारीके मुख्यपने सचित मुखमें देनेका त्याग है। इसी विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें यह वाक्य है—"मुखका त्याग पांचवीं प्रतिमाधारीके है और शरीरादिकका त्याग मुनि करें" भाव यही निकलता है कि सचित्तको अचित्त करके खा सक्ता है। व सचित्तसे खानेके सिवाय अन्य काम कर सक्ता है। आत्मानुभवी पं० बनारसीदासजी इस प्रतिमाके स्वरूपमें सचित खानेका ही निषेध बतलाते हैं:—

"जो सचित भोजन तजै, पीवे प्राशुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंचप्रतिज्ञा गीर॥

अध्याय बारहवां।

रात्रिभोजन-त्यागप्रतिमा।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः॥
॥ १४२ ॥ (र० क०)

भावार्थ-जो रात्रिको दयावान चित्त हो अन्नं कहिये चाँवल, गेहूं आदि; पानं कहिये दूध, जल आदि; खाद्यं कहिये बरफी, पेड़ा, लड्डू आदि; लेह्यं कहिये रबड़ी, चटनी आदि इन चारों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खाता है वह रात्रि भुक्तित्याग नाम प्रतिमाका धारी है ऐसा ही श्रीकार्तिकेयस्वामीने कहा है:-

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी।
णय भुंजावइ अण्णं णिसिविरऊ सो हवे भोज्जो॥३८१
जो णिसि भुत्तिं बज्जदि सोउववासं करेदि छम्मासं।
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए॥ ३८२॥

इस प्रतिमामें दूसरोंको भी रात्रिमें चार प्रकारका आहार खानेको न दे। जो रात्रीको न खाए उसको १ वर्षमें छह मासका उपवास हो जाता है। इस प्रतिमाका पालनेवाला रात्रीको भोजन सम्बन्धी आरंभ भी न करे-ऐसे स्वामी कार्तिकेयजीका मत है। जैसे संस्कृत टीकामें कहा है:-

रात्रिभोजन विरक्तः पुमान् आरंभं गृहव्यापारं क्रयविक्रय-वाणिज्यादिकं, खंडनी पीसनी चुल्ही, उद-कुंभप्रमार्जनी, पंच सूनादिकं, त्यजति-रात्रिभोजनविरतः रात्रौ सावद्यपापव्यापारं त्यजति।

भावार्थ–रात्रि भोजनसे विरक्त पुमान रात्रिको घरका व्यापार लेना देना वाणिज्य व चक्की, चूल्हा, उखली, बुहारी, पानी भरना आदि आरंभ न करे और पापके व्यापारोंको छोड़े ।

प्रश्न–जब यहां चार प्रकारके भोजनके त्यागका उपदेश है तब क्या इससे पहलेकी श्रेणियोंमें इनका त्याग नहीं है ? यदि है तो फिर यहां क्यों कहा ?

समाधान– इस विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें यह कथन है–'रात्रिभोजनका त्याग तो पहली दूसरी प्रतिमा ही सूं मुख्यपणे होय आया है, परन्तु ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र आदि जीव नाना प्रकारके हैं । स्पर्श शूद्र पर्यंत श्रावकव्रत होय है जो जाके कुल कर्म विषें ही रात्रिभोजनका त्याग चला आया है ताके तो रात्रिभोजनका त्याग सुगम है; परन्तु अन्यमती शूद्र जैनी होय अर श्रावकव्रत धारे ताकूं कठिन है । तातें सर्व प्रकार छठी प्रतिमा विषै ही याका त्याग संभवे है अथवा आपने खावाका त्याग तो पूर्व ही किया था यहां औरांकूं भोजन करवने आदिका त्याग किया ।

इस ऊपरके कथनसे तथा श्लोकोंके ऊपरसे यह साफ २ प्रगट होता है कि नियम पूर्वक रात्रिको चारों प्रकारके भोजन स्वयं करने व करावनेका त्याग इस छठी श्रेणीमें है । इसके नीचे नियम नहीं है, किन्तु अभ्यासरूप है । जैसे समायिक और प्रोषधोपवासका अभ्यास व्रतप्रतिमामें है, परन्तु नियमरूप तीसरी और चौथी श्रेणीमें है । ऐसे ही रात्रिभोजनके त्यागका 'अभ्यास

छठी प्रतिमासे नीचे है, परन्तु नियमरूप इस प्रतिमामें है। यदि व्रतप्रतिमा वाला ३ काल सामायिक और १६ पहरका धर्मध्यानसहित प्रोषध करे तो कुछ निषेध नहीं है, किन्तु उपदेश ही है तैसे यदि छठीसे नीचे रात्रिभोजन चारों ही प्रकारका न करे तो कुछ निषेध नहीं है, किन्तु उपदेश ही है। जैसा कि पहले दर्शन और व्रतप्रतिमामें पं० आशाधरके मतके अनुसार कहा जा चुका है।

यह जैन धर्म सर्व ही प्रकारकी स्थितिके जीवोंके पालनेके हेतुसे है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार जिस प्रकार निराकुलतासे धर्मका साधन हो सके उस प्रकार वर्तना चाहिये। श्रावक दयावान है, इसलिये यथाशक्ति यही उद्यम करना चाहिये कि रात्रिको खान पान न करे। जिस समाजमें बाल्यावस्थासे ही रात्रिको न खानेका अभ्यास है वह समाज सुगमतासे त्याग कर सक्ता है। परन्तु जिस समाज, देश व कुलमें रात्रिभोजनका अभ्यास नहीं है वहां अपने परिणामोंको देखकर त्याग किया जाय तौ भी छठी श्रेणीमें आकर सर्वथा नियमसे त्याग करना होगा- ऐसा अभिप्राय मालूम होता है। ऐसे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि नीचेकी श्रेणी वाले यदि लाचारीवश रात्रि भोजन करें तो पाप बंध न होगा- हिंसाद्वारा पापका बंध अवश्य होगा। अतएव उत्तम यही है कि पूर्व हीसे १ घड़ी दिन पहले हीसे पानी पी आहार पानका त्याग कर दे। साधारण श्रावक भी यदि ऐसा करे तो उसको विशेष लाभ है। क्योंकि डाक्टरोंके मतके अनुसार जबतक सूर्य्यकी किरणें फैली हैं तबतक ही भोजन करना

शरीरको विशेष लाभकारी है और भले प्रकार पच जाता है। यदि लाचारीवश याने किसीसे किसी भी अनिवार्य कारणवश सर्वथा त्याग न बन सके तो वह और व्रतोंको पालने योग्य नहीं है-ऐसा प्रयोजन नहीं निकलता है। यदि कोई श्रावक रात्रिको जल आदि किसी चीजका किसी कारणसे त्याग नहीं कर सकता तौ भी उसे छठी प्रतिमामें अवश्य त्याग करना होगा-ऐसा अभिप्राय समझमें आता है। इसके सिवाय यह भी यहां अभिप्राय है कि जो रात्रिको आप तो नहीं खाता पीता था, परन्तु बाल बच्चे, नौकर चाकर व किसी पाहुनेको जिमा देता था। अब इस छठी प्रतिमामें किसीको भी रात्रिको पानी या भोजन या दवाई नहीं देगा। यह कथन अपनी समझसे लिखा गया है विशेष ज्ञानी विचार करें।

इस प्रतिमाका नाम दिवामैथुनत्याग भी है अर्थात दिवसमें अपनी स्त्रीसे काम सेवन न करे। यद्यपि पहले भी ऐसा नहीं करता था, परन्तु यहां नियम हो गया, जिससे वह कभी भी ऐसा नहीं करेगा-सन्तोष पूर्वक दिवसको बितायगा। ऐसा ही अमितिगति आचार्यने सुभाषितरत्नसन्दोहमें कहा है:-

मैथुनं भजते मर्त्यो न दिवा यः कदाचन।
दिवा मैथुननिर्मुक्तः स बुधैः परिकीर्तितः॥ ८३८॥

अर्थ-जो श्रावक दिनमें कभी मैथुन सेवन नहीं करता है वह दिवामैथुनसे विरक्त श्रावक है-ऐसा कहा गया है।

अध्याय तेरहवां ।

ब्रह्मचर्य्यप्रतिमा ।

इसके पहले छठी प्रतिमा तक तो रात्रिको स्वस्त्रीका सेवन सन्तानकी इच्छासे करता था । अब इसका परिणाम अति विरक्त भावको प्राप्त हुआ है । स्त्री संमोहको स्वानुभूतिके रमन और अपनी ब्रह्मचर्यामें व यों कहिये कि आत्मीक आनन्दके विलासमें विरोधी जान, त्यागता है और निज अनुभूति-नारीके मननमें उद्योगी हो ब्रह्मचर्य्य प्रतिमामें अपना पद रखता है ।

मलबीजं मल योनिं गलन्मलं पूतगन्धिबीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥
(र० क०)

अर्थ-जो मलका बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले मल प्रवाही दुर्गन्धयुक्त लज्जाजनक अंग (स्त्रीके देह) को देखता हुआ काम सेवनसे विरक्त होता है वह ब्रह्मचारी है ।

सव्वेसिं इच्छीणं जो अहिलासं ण कुव्वए णाणी ।
मणवयणकाएण य वंभवई सो हवे सदओ ॥३८३॥
जो कयकारियमोयण मणवयकायेण मेहुणं चयदि ।
वंभ पवज्जारूढो वंभवई सो हवे सदओ ॥ ३८४ ॥
(स्वा० अ०)

भावार्थ-जो ज्ञानी मन, वचन, कायसे सर्व ही स्त्रियोंकी अभिलाषा नहीं करता है सो दयावान ब्रह्मव्रती है । जो कृत, कारित अनुमोदना तथा मन, वचन, कायसे नव प्रकार मैथुनको

त्यागता है और ब्रह्मचर्यकी दीक्षामें आरूढ़ होता है सो ही ब्रह्म-व्रती होता है।

संसारभयमापन्नो मैथुनं भजते न यः।
सदा वैराग्यमारूढो ब्रह्मचारी स भण्यते ॥८३९॥

(अमितिगति)

अर्थ—जो श्रावक संसारसे भयभीत हो सदा वैराग्यमें चढ़ा हुआ रहकर मैथुनसेवन नहीं करता है उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामीकार्तिकेयकी संस्कृतटीकामें इस भांति वर्णन है:—अष्टादशशील सहस्रप्रकारेण शीलं पालयति अर्थात् १८००० भेदोंसे शीलव्रतको पालता है।

१८००० भेद वर्णन।

स्त्री ४ प्रकार—देवी, मानुषी, तिरश्ची, अचेतना (काष्टचित्रामादिकी) ४ स्त्री जातयः मनोवचनकायैः ताडिताः कृतकारित अनुमत त्रिभिः करणैः गुणिताः ते पंचेन्द्रियैः हताः ते दशसंस्कारैः गुणिताः ते दशकामचेष्टाभिः गुणिताः १८००० भेदाः भवंति—अर्थात् ४ प्रकारकी स्त्रियां होती हैं जिनके निमित्तसे मैथुनकर्मकी अभिलाषा हो सक्ती है। याने देवी, मनुष्यणी, पशुनी और अचेतन याने काठ, पत्थर, तसवीरकी मूर्ति आदि इनको मन, वचन, कायसे गुणो तो १२ भेद हुए, इनको करना, कराना, अनुमोदना इन तीनोंसे गुणो तो ३६ भेद हुए, इनको पांचों इन्द्रियोंसे गुणो तो १८० भेद हुए, इनको १० प्रकारके संसार याने सिंगारोंसे गुणो तो १८०० भेद हुए, इनको १० प्रकारकी काम चेष्टाओंसे गुणो तो १८००० भेद हुए।

मैथुनके कारण पांचों इन्द्रियोंमें चंचलता होती है, इससे पांचोको शामिल किया तथा कामके उपजनेके १० संस्कार हैं। जैसे १. शरीरसंस्कार (शरीरकी शोभा करनी) २. श्रृंगाररसराग-सेवा (रागसहित श्रृंगार रसकी सेवा करनी) ३. हास्यक्रीड़ा (हंसी ठट्टा करना) ४. संसर्गवांछा (संगतिकी इच्छा) ५. विषय संकल्प (विषय सेवनका इरादा करना) ६. शरीरनिरीक्षण (स्त्रीकी देहको देखना) ७. शरीरमंडन (देहको आभूषण आदिकोंसे सजाना) ८. दान (स्नेह बढ़ानेको परको जो प्रिय वस्तु हो सो देना) ९. पूर्वरत–स्मरण (पहले जो काम सेवन किया हो उसको याद करना १०. मनश्चिंता (मनमें मैथुनकी चिंता करनी) इन सबके वश हो कामीकी १० तरहकी चेष्टाएं हो जाती हैं:—

१. चिंता (स्त्रीकी फिकर) २. दर्शनेच्छा (स्त्रीके देखनेकी चाहना) ३. दीर्घोच्छ्वास (बड़े २ श्वास आना जिनको आह कहते हैं) ४. शरीरे आर्ति (शरीरमें पीड़ा मालूम करनी) ५. शरीरदाह (शरीरमें जलन पैदा होनी) ६. मंदाग्नि (अग्नि मंद पड़ जानी जिससे भोजन न पचे न रुचे) ७. मूर्च्छा (बेहोशी हो जानी) ८. मदोन्मत्त (बावला होना) ९. प्राण-सन्देह (अपने प्राण निकलनेका सन्देह करना) १०. शुक्रमोचन (वीर्य्यका छूट जाना)

शीलव्रतकी रक्षाके वास्ते ९. बाड़ोंको बचाना चाहिये:—

१. स्त्रियोंके स्थानोंमें रहना, २. रुचि और प्रेमसे स्त्रियोंका देखना, ३. मीठे वचनोंसे परस्पर भाषण करना, ४. पूर्व भोगोंको

चिन्तवन करना, ५. गरिष्ठ भोजन मन भरके खाना, ६. शरीरको साफ करके सिंगार करना, ७. स्त्रीकी खाट व आसनपर सुखसे सोना, ८. कामवासनाकी कथाएं करना, ९ पेट भरके भोजन करना।

इसीलिये श्रावकको योग्य है कि ब्रह्मचारी होकर उदासीन कपड़े पहरे। जैसे कपड़े स्त्रीसहित अवस्थामें पहनता था वे न पहने याने पगड़ी जामा आदि रंग विरंगी सर्व कपड़े छोड़े जिससे वैराग्य अपनेको व दूसरेको प्रगटे ऐसे सफेद व लाल कपड़े मोटे अल्प मूल्यके रुईके पहने। सरपर-कन्टोप पहने या सांफा बांधे जिनको देखते ही हरएक समझे कि यह स्त्रीके त्यागी हैं—उदासीन वस्त्र रक्खे। इसी प्रकार आभूषणादि भी कोई न पहरे। यदि द्रव्यादिके स्वामीपनेसे कुछ रखना पड़े तो जिससे श्रृंगार न हो ऐसे कोई अंगूठी आदि शरीरपर रक्खे। यदि घरमें ही रहे तो किसी एकान्त कमरेमें सोए बैठे जहां स्त्री वा बालक न जावे न उनके कलकल शब्द सुनाई पड़ें अथवा श्रीजिनमंदिरजीके निकट किसी धर्मशालामें सोए बैठे। सिर्फ घरमें रोटी खानेको आवे व व्यापार करता हो तो व्यापार कर आवे शेष समय धर्मस्थानमें बितावे। अपना काम पुत्रादिको सौंपता जावे और आप निराकुलताकी अभिलाषा करके निश्चय ब्रह्मचर्यकी भावनामें रत रहे, अध्यात्मीक ग्रन्थोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, अध्यात्मीक चर्चामें अधिक उत्साही रहे, परोपकारमें व साधर्मी वात्सल्यमें दत्तचित्त रहे, गरिष्ठ कामोद्दीपक भोजन न करे; सादा, शुद्ध और थोड़ा भोजन करे, प्रयोजन सिवाय अधिक वा-

र्तालाप न करे, मौन रखकर विवेक व भेदज्ञान बढ़ानेका अधिक यत्न करे। यदि चित्तमें विशेष विचार स्वपरकल्याणका हो जावे तो घरका कारवार पुत्रादिको सौंप आप अपने लायक धन वस्त्रादि परिग्रहको रखके देशाटन करे, तीर्थयात्रा करे, धर्मोपदेश दे, जिनधर्मकी प्रभावना करे। सामर्थ्य होय तो अपने साथ एक दो नौकर रक्खे जिससे रसोई आदिका काम लेवे। यदि नौकर न रक्खे तो अपने आप अपने धनसे रसोई पानी करे। यदि कोई भक्ति पूर्वक स्नेहपूर्वक अपनेको निमंत्रण दे तो हर्ष पूर्वक स्वीकार कर ले और आप वृथा आरम्भिक हिंसासे बचे, परन्तु कभी भी अपने मुंहसे याचना न करे–याचना करना दीन कायर पुरुषोंका काम है। इसने तो जिन धर्माचरणरूपी सिंह वृत्तिका आलम्बन किया है। अतएव सदा स्वाधीन रहे–पराधीनताकी बेड़ीमें न पड़े। धर्मवृद्धि व दानके प्रचार हेतु यदि कोई भक्तिवश निमंत्रण करके संविभाग करावे तो उजर न करे। यदि घरमें ही रहे तब भी किसीके निमंत्रणको विना कारण अस्वीकार न करे। साधारण नियमकी अपेक्षा यह श्रावक अभी घरसे जुदा नहीं होता है, अपने कुलमें जो आजीविका प्रचलित है उनको भी नहीं त्यागता है, कुटुम्बका पोषण व पुत्रादिकोंका विवाहादि भी करता है, परन्तु अपने परिणाममें व्रतरूप रहता है और अपनी चेष्टा उदासीन रखता है। इस प्रतिमावालेको नैष्ठिकब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामीकार्तिकेयकी संस्कृतटीका तथा पं० आशाधरकृत धर्मामृतश्रावकाचारमें ब्रह्मचारीके ५ भेद ये हैं:—

१–उपनय ब्रह्मचारिणः गणधर सुत्रधारिणः समभ्यस्तागमाः गृहधर्मानुष्ठायिनो भवन्ति–अर्थात् उपनय ब्रह्मचारी जो जनेऊ लेकर आगमका अभ्यास करके गृह धर्ममें पड़ते हैं।

जो बालक ८ वर्षके उपनीति संस्कारके बाद गुरुकुलमें जा विद्याभ्यास करते हैं जिनका वर्णन पहले संस्कारोंमें हो चुका है उनको उपनयब्रह्मचारी कहते हैं।

२–अदीक्षा ब्रह्मचारिणः–वेषमंतरेण अभ्यस्तागमा गृहिधर्मनिरताः भवन्ति–अर्थात् तो जो विना किसी वेषको धारण किये आगमको पढके गृहधर्ममें लवलीन हों सो अदीक्षाब्रह्मचारी हैं।

३–अवलम्ब ब्रह्मचारिणः–क्षुल्लकरूपेण आगमाभ्यस्ताः परिग्रहीतावासा भवन्ति अर्थात् जो क्षुल्लकरूप धारण करके आगमका अभ्यास करें फिर घरको गृहण करें सो अवलम्बब्रह्मचारी हैं। मालूम यहां ऐसा होता है कि कोई क्षुल्लक विद्वान हो उनके साथ रहकर विद्या पढ़नी हो तो कोई विद्यार्थी क्षुल्लकके समान साथ २ रहे फिर घरमें जानेकी इच्छासे घर जाय। उसका प्रयोजन केवल विद्याभ्यस करने ही का था। इससे वह लौट गया-ऐसेको अवलम्ब ब्रह्मचारी कहते हैं।

४–गुढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यासाः बंधुभिः दुःसह परीषहैः आत्मना नृपतिभिर्वा निरस्त परमेश्वररूपाः गृहवासरता भवन्ति–अर्थात गूढब्रह्मचारी कुमार अवस्था ही में मुनि होकर मुनियोंके संघमें विद्याभ्यास करे फिर अपने माता पिता बंधुओंद्वारा व कठिन क्षुधा, तृषा, शीतादिकी बाधा न सह सकनेके कारण व आपसे ही वा राजाओंके द्वारा प्रेरित होनेपर

मुनि भेषको त्यागकर घरवासमें रत होय। इस कथनसे भी यह अभिप्राय निकलता है कि कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् मुनिके साथ विद्या प्राप्तिके लिये घरसे बाहर निकला हो और मुनि भेषमें रह विद्याभ्यास करी हो तथा उसके मनमें यह अभिलाषा भी हो कि मैं मुनि ही रहूं, परन्तु अशक्ति व प्रेरणावश अपनी इच्छाको पूर्ण न कर सके, विद्यालाभके अनन्तर घर चला जावे सो गूढ़-ब्रह्मचारी है।

५—नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः—समधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगा गणधरसूत्रोपलक्षिक उरोलिंगाः शुक्लरक्तवसनखंडकोपीन-कटिलिंगाः—स्नातकाभिक्षाऽभिक्षावृत्तयः भवन्ति देवतार्चनपराः भवंति—अर्थात् जिनके मस्तकमें चोटी हो या सिरका चिन्ह हो, छातीमें जनेऊ हो, सफेद या लाल कपड़े हों, खंड व कोपीन करके चिह्नित हो कमर जिनकी, भिक्षावृत्ति और अभिक्षावृत्ति ऐसे दो प्रकारके नैष्ठिक होते हैं—यह देव पूजनमें तत्पर होते हैं।

सातवीं श्रेणीके आचरणको पालनेवाला नैष्ठिकब्रह्मचारी कहलाता है। यह लाल या सफेद रंगके वस्त्रोंको उदासीन रूपमें पहन सक्ता है।

ब्रह्मचारीको नित्य स्नानका नियम नहीं है। यदि श्रीजि-नेंद्रकी पूजन करे तो स्नान करे ही करे नहीं तो अपनी इच्छापर है, तौभी मल मलकर न नहावे, केवल ग्लानि मेटे।

सुखासनं च ताम्बूलं सूक्ष्मवस्त्रमलंकृतिः।
मज्जनं दन्तकाष्ठं च मोक्तव्यं ब्रह्मचारिणा ॥३४॥

(धर्मसंग्रह श्रा०)

भावार्थ—ब्रह्मचारी गद्दे आदि सुखमई आसनोंपर, जिनसे शरीरको बहुत आराम व आलस्य आ जावे, न सोवे न बैठे। ताम्बूल कभी न खावे, महीन कपड़े न पहरे, अलंकार न पहने, शरीरका मंजन न करे, काष्ठकी दंतौन न करे।

ब्रह्मचर्य्य अवस्थाका धारक इस वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार स्वपरकल्याण बहुत ही सुगमता और आरामसे कर सक्ता है।

इस समय जैन जातिमें सैंकड़ों ऐसे ब्रह्मचारियोंकी आवश्यक्ता है जो एक स्थान ही में रहकर परोपकार करें, चाहे वे किसी भी संस्थाका काम करें—उसमें खूब मिहनत करें। जैसे किसी विद्यालय आदिमें व जिनवाणीकी सेवामें व पुस्तकोंको देखकर सारांश चुननेमें व नवीन ग्रन्थोंके रचनेमें व प्राचीन ग्रन्थोंके प्रकाशनमें व गवर्नमेन्टकी लायब्रेरियोंमें बैठकर जैन धर्म सम्बन्धी क्या २ खोज की है उनको संग्रह करनेमें व किसी पत्रको दिन रात मिहनत कर उपयोगी लेखोंसे भरकर चलानेमें इत्यादि अनेक परोपकारके कार्य्य एक ही स्थानपर रह करसक्ते हैं। तथा जो देशाटन करना चाहें वे ग्राम २ में धर्मोपदेश देनेमें, पाठशालाएं स्थापित करानेमें, सरस्वती भंडारोंकी सम्हाल करनेमें, दयाधर्मका प्रचार करनेमें, अजैनोंको मांस मदिरा छुड़ाकर जैनधर्मका श्रद्धान करा देनेमें इत्यादि अनेक उत्तमोत्तम कार्योंमें अपने जीवनके अमूल्य समयको बितावें। पर यह ध्यानमें रहे कि इन ब्रह्मचारियोंको अपने नित्य नियम व संयममें शिथिल न होना चाहिये अर्थात् नित्य ही सादा शुद्ध

भोजन नियमसे मौनपूर्वक लेनेमें, त्रिकाल सामायिक कमसे कम दो घड़ी व उसके अनुमान करनेमें, सचित्त वस्तु न खानेमें, प्रति अष्टमी व चौदसको उपवास करनेमें व १६ पहर धर्मध्यानसहित रह अष्टमी व चौदसको भी १ भुक्त करनेमें इत्यादि जो १ क्रियाएं सप्तम श्रेणी वालेको करनी चाहिये उनके करनेमें कभी भी प्रमाद न करे। क्योंकि जो आत्मीक संयम और आत्मीक बलमें सावधान है वही दूसरोंको भी सुमार्गपर चला सक्ता है तथा अपने आपको शास्त्रोक्त आत्मोन्नतिका दृष्टान्त बना सक्ता है।

आजकल कोई २ ऊपर कहे हुए चार प्रकारके ब्रह्मचारियोंमेंसे किसीमें न होकर तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी भी क्रियाओंको न पालन कर अपनेको ब्रह्मचारी कहलाते हैं और ऐसी अवस्थामें भी रात्रिभोजन पान, अशुद्ध आहार, सचित्त भोजन करते हैं, नियमसे भोजनादि नहीं करते, न तीन काल सामायिक करते न अष्टमी चौदस उपवास करते, किन्तु मात्र स्त्री सेवनके त्यागको ही ब्रह्मचर्य मान अन्य सर्व क्रियाओंमें स्वच्छन्द रहते हैं—यह प्रथा ठीक नहीं है—शास्त्रोक्त मार्गको लजानेवाली है। जिसको गृहस्थीमें फंसना है और अभी केवल विद्यार्थी हैं वही और आचरणोंमें ऐसा विचार न कर विद्या पढ़ने तक ब्रह्मचारी रहता है, परन्तु जिसने स्त्रीको होते हुए त्यागा है व स्त्रीके देहांत होनेपर फिर स्त्री संसर्गका त्याग किया है—यह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके सिवाय अन्य संज्ञामें नहीं आसक्ता। अतएव स्वच्छन्दता छोड़ नियमानुसार ही वर्तना योग्य है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा तक प्रवृत्तिका मार्ग है इसके आगे निवृ-

त्तिका मार्ग है। इसलिये भले प्रकार उद्यम करके स्वतंत्रताके साथ रहता हुआ यहां तक स्वपरकल्याण कर सक्ता है। आगे कुछ परतंत्रता है जिसका वर्णन आगे देखिये।

इस प्रतिमा तक तो अपने हाथसे कुल काम कर सक्ता है याने अपनी आजीविकाका उपाय व भोजन आदिका बनाना तथा सवारी आदि पर चढ़कर इधरउधर जाना, परन्तु इसके आगे बहुतसी बातोंका परहेज हो जाता है। जबतक किसी श्रावकके चित्तमें प्रवृत्तिरूप रह परोपकार करनेकी उत्कट चेष्टा है तब तक तो वह इसी श्रेणीमें ही रह उद्यम करे और जब अंतरंगमें प्रवृत्ति रूप परोपकारकी भावना कम हो जावे और आत्मध्यानका विशेष अभ्यास बढ़ जावे तब इसके आगे कदम रक्खे। आजकल बहुधा लोग इसके आगेके दरजोंके नियम तो पालने लग जाते हैं, परन्तु आगेकी श्रेणीमें जितने ज्ञान, वैराग्य और आत्मध्यानके अभ्यासकी आवश्यक्ता होती है उनको नहीं रखते हैं। तो ऐसे व्यक्ति बाह्य संयम बहुत कष्टसे पालते हैं तथा जिनकी वैयावृत्त्यमें बहुधा श्रावक "गले पड़ेकी बात" खयाल करते हैं, परन्तु अपनी हार्दिक रुचि तथा श्रद्धाको नहीं दिखलाते। अतएव आगेकी श्रेणियां निवृत्तिमें तन्मयी आत्मानुभवी श्रावकके ही धारने योग्य हैं। यहांतक आप स्वतंत्र वृत्तिसे हरएक काम कर सक्ता है जिससे किसी स्थान व कालमें कोई आकुलता नहीं पैदा होती।

अध्याय चौदहवां।

आरम्भत्याग-प्रतिमा।

जब गृहस्थीश्रावक जो अभी तक ब्रह्मचर्यकी श्रेणीमें था देखता है कि अब मैंने अपने पुत्रादिकोंको सर्व व्यापार सौंपदिया है व मेरे घरमें मेरे पुत्र व उनकी बधू मुझे हर्षपूर्वक भोजन पान दे दिया करेंगे अथवा साधर्मी भाई मेरे भोजन पानके प्रबंधमें सावधान रहेंगे तब वह इस आठवें नियमको धारण करता है— इसका स्वरूप इस भांति है:—

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

(र० क०)

भावार्थ—जो श्रावक जीवोंके घातके कारण सेवा, खेती, व्यापार आदि आरम्भ कार्योंसे विरक्त होता है वह आरम्भ त्याग प्रतिमाका धारी है।

जं किंचि गिहारंभं वहुथोवं वा सया विवज्जेई।
आरंभणिपत्तिमई सो अट्ठमु सावऊ भणिऊ॥

(वसुनंदि श्रा०)

भावार्थ—जो गृहका आरम्भ थोड़ा हो या बहुत सदा ही न करे सो आरंभसे छूटा हुआ आठवां श्रावक होता है।

निरारम्भः स विज्ञेयो मुनीन्द्रैर्हतकल्मषैः।
कृपालुः सर्व जीवानां नारम्भं विदधातियः ॥८४०॥

(अ० ग०)

अर्थ—जो श्रावक सर्व जीवोंपर दयावान हो आरम्भ नहीं करता है वह निरारम्भी है ऐसा जानना चाहिये। यह बात दोष रहित मुनीद्रोंने कही है।

आरम्भ दो प्रकारके होते हैं:—एक तो व्यापारका आरम्भ जैसे रोजगारके लिये तरह २ के उद्योग करना जिनसे बचानेपर भी हिंसा सर्वथा नहीं बच सकती।

दूसरे घरके कामोंका आरम्भ जैसे पानी भरना, चूल्हा जलाना, चक्कीमें पीसना, ऊखलीमें कूटना, घरको झाड़ना बुहारना, रसोईका बनाना इत्यादि। इन दोनों प्रकारके आरम्भोंको यह नहीं करता है; किन्तु धर्म कार्य्य निमित्त जो आरम्भ हैं उनका इसके त्याग नहीं है, उन धर्म कार्य्योंको बहुत यत्नके साथ करेगा। जैसा कि कहा है:—

" न करोति न कारयति आरंभविरतः श्रावकः कान् कृष्यादीन् कृषीसेवावाणिज्यादि व्यापारान् न पुनः स्नपनदानपूजाविधानादि, आरंभान् तेषां अंगिघाते अनंगत्वात्। पुत्रादीन् प्रति अनुमते कदाचित् निवारयितुम् अशक्यान्। मनोवाक्कायैः कृतकारिताभ्यामेव सावद्यारम्भो निवर्तते इत्यत्र तात्पर्यार्थः। "

(सा० ध०)

भावार्थ—खेती, सेवा, वाणिज्य आदि व्यापारोंको न करता है न कराता है; परन्तु अभिषेक, दान पूजा विधानादिके व्यापारका त्याग नहीं है। उनमें हिंसा होते हुए भी इसके त्याग नहीं है तथा अपने पुत्र आदिकोंको जब वे पूछें और आप उनको रोक नहीं सक्ता है तब सलाह दे सक्ता है। अभी इसको मन, वचन,

कायसे आरंभको खुद करने तथा करानेका त्याग है, किन्तु अनुमति देनेका त्याग नहीं है—ऐसा प्रयोजन है।

किसी किसीका ऐसा मत है कि यह व्यापारादिको तो त्यागे, परन्तु रसोई बनाना, पानीभरना अपनेलिये आवश्यक कामोंको अभी नहीं त्यागे; परन्तु ऐसा खुलासा कहीं देखनेमें नहीं आया। वसुनंदिश्रावकाचारके मतसे तो घरका कुछ भी आरम्भ नहीं कर सक्ता, परन्तु यदि वह अकेला हो और जीविकाका कोई उपाय न हो तो वह पापरहित कोई जीविका कर सक्ता है जैसे आरंभ रहित चाकरी व किसी कारीगरीका बनाना आदि—ऐसा मत पं० मेधावीका है। जैसे:—

कदाचिज्जीवनाभावे निःसावद्यं करोत्यपि।
व्यापारं धर्मसापेक्षमारम्भविरतोऽपि वा ॥३७॥

(धर्मसंग्रह)

भावार्थ—किसी वक्त जीविकाका उपाय न रहे तो पापरहित आरम्भ धर्मकी अपेक्षाको लिये हुए कर भी सक्ता है। इस वचनसे यह सिद्ध होता है कि जब वह आजीविका कर सक्ता है तब यदि अकेला हो तो अपने लिये भोजन व पानका भी उपाय कर सके तथापि यह अपवाद मार्ग दीखता है। राजमार्ग यही श्रेष्ठ है जो कोई आरम्भ करे, करावे नहीं।

इस श्रेणीमें आकर श्रावक अपना व्यापार पुत्रादिकोंको तो सौंपता ही है, किंतु अपनी सर्व परिग्रहका विभाग कर देता है। जिसको जो देना होता है दे देता है व दान करना होता है कर

लेता है और अपने योग्य थोड़ा साधन वस्त्र आदि रख लेता है सो भी उनको व्याजमें नहीं लगाता है। इस धनको वह समय२ पर धर्म कार्योंमें व परोपकारमें खर्च करता है।

अब वह विशेष उदास रह एकांत सेवन करता है, अपने पुत्रादिक व अन्य साधर्मी जो निमंत्रण दे जांय वहां जा जीम आता है। जो अपनेको त्याग आखड़ी हो सो बतला देता है। यदि किसी भी घरके कामकाजकी व व्यापार सम्बन्धी कोई सलाह पुत्रादिक पूछें तो सम्मतिरूप कहकर नफा नुकसान बता देवे-प्रेरणा न करे। यदि पुत्रादिक पूछें कि आज रसोईमें क्या २ बने तो वह केवल मात्र उन चीजोंको बतला देवे जिनसे शरीरको अनिष्ट होता हो कि यह मेरेको हानिकारक हैं, परन्तु अपने विषयकी लोलुपतावश किसी भी वस्तुको बना-नेके लिये आज्ञा न करे। पानी प्राशुक लेकर थोड़े जलसे अपना आवश्यक काम करे। ७ मी श्रेणीमें स्नानक्रिया अधिक करता था यहां बहुत कम करता है। जब पूजनादि आरम्भ करना हो तो थोड़े प्राशुक जलसे नहा लेवे। जीवहिंसा बचानेका बहुत उपाय रक्खे। मलमूत्र व जल आदि सूखी जमीनमें क्षेपण करे। सवा-रीपर चढ़नेका त्याग करे, घोडा गाड़ी, बैलगाड़ी, पालकी आदि पर न चढ़े, क्योंकि ऐसा करनेसे जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकता। रात्रिको प्राशुक भूमिपर किसी धर्म कार्यवश चले, यदि जीवोंके संचारकी शंका हो तो चांदनी व दीपकके प्रकाशमें चले। अपने हाथसे दीपक न जलावे, परन्तु स्वाध्यायादि धर्म कार्योंके लिये दीपक जला सक्ता है; क्योंकि धर्म सम्बन्धी आरम्भका त्याग नहीं

है। कपड़े न धोवे, पंखा न करे। अपने कपड़े मैले हों तब पुत्र व कोई साधर्मी ले जाकर धोकर दे देवे तो ग्रहण कर ले। आप आज्ञा करके न धुलवावे। ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहा है:—

"इसके व्यापार व रसोई आदि आरम्भका त्याग है, दूसरेके व अपने घर न्यौता बुलाया जीमें" यद्यपि सवारीपर चढ़के चलनेका त्याग यहांसे शुरू होकर आगे सर्व स्थानोंमें रहता है तथापि किसी किसीकी यह सम्मति है कि जो ऐसी सवारी है कि वह एक नियत किये हुए मार्गपर ही अपने नियत कालपर विना हमारी प्रतीक्षाके जाती है याने उसपर यदि हम जाएं तब भी जावे, न जावें तब भी जावे तो ऐसी सवारीपर चढ़के जानेमें कोई हर्ज नहीं है, जैसे रेलगाड़ी व ट्रामगाड़ी। इनकी जानेकी लाइन एक ही मुकर्रर है उसीपर यह सदा चलती है, जिससे उस लाइनपर जीवोंका संचार नहीं रहता, दूसरे इनके जानेका नियम व समय नियत ही है खास किसी एकके लिये नहीं जाती है। इन दो कारणोंसे इनपर चढ़के देशसे देशान्तर जानेमें हर्ज नहीं है—ऐसा कहते हैं। यद्यपि वर्तमान स्थितिको देखकर यह युक्ति दी जाती है तथापि वैराग्यमय आत्मध्यानी विरक्तमार्गकी शोभा पगसे गमन करनेमें ही है—निराकुलता भी उसीमें विशेष है।

आरम्भत्यागी अभी घरको सर्वथा छोड़े नहीं है। अतः घरमें रह धर्म साधन करे, यदि तीर्थयात्रादि करनेकी अभिलाषा हो तो अपने पुत्र व साधर्मी भाईको साथ ले पगसे धीरे २ धर्मोपदेश

करता, नीच ऊंच जैन व अजैन सर्वको धर्म मार्गपर लगाता चले। यदि घरमें न रहता हो और देशाटन भ्रमण ही करता हो तौ भी एक दो साधर्मियोंके साथ पगसे घूमें और धर्मका प्रचार करे व ऐसे प्रान्तोंमें घूमें जहॉ श्रावकोंके घर दस बीस मीलसे अधिक दूरपर न हों। क्योंकि निवृत्तिके उत्सुकको निवृत्ति और निराकुलताके साथमें रह कर विशेष धर्मसेवन करना योग्य है।

रेल व ट्रामपर चढ़ना या नहीं इस विषयपर सर्वथा स्वीकारता व निषेध हम अपनी बुद्धिके अनुसार नहीं कर सक्ते, ज्ञानवान विचार लेवें। तौभी हमारी सम्मतिमें आरम्भ त्यागीके लिये किसी भी सवारीपर चढ़ना योग्य नहीं है। उसकी विरक्तता उसको स्वतंत्र रहने हीकी आज्ञा देती है।

अध्याय पन्द्रहवां।

परिग्रहत्याग प्रतिमा।

इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति है:-

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः॥ १४५

(र० क०)

भावार्थ—जो बाहरके दस प्रकारके परिग्रहोंमें ममताको छोड़ करके मोहरहित होता हुआ अपने स्वरूपमें ठहरता है, सन्तोषमें लीन होता है- वह परिचित परिग्रहसे विरक्त श्रावक है।

यहां वह अपनी शेष परिग्रहको विभाजित करके अपने

पास कुछ पहनने ओढ़ने योग्य वस्त्र व खाने पीनेका पात्र रखकर और सर्व को त्याग देता है।

सागारधर्मामृतमें इस भांति कहा है:-

> एवमुत्सृज्य सर्वस्वं मोहाभिभवहानये।
> किंचित्कालं गृहे तिष्ठेदौदास्यं भावयन्सुधीः ॥ ९१ ॥

गृहे तिष्ठति इति अनेन स्वांगाछादनार्थं वस्त्रमात्रधारणमत्तः मूर्छा अस्य लक्षयति ते विना गृहावस्था अनुपपत्तेः।

> मुत्तूण वच्छमेत्तं परिग्गहं जो विवज्जए सेसं।
> तच्छवि मुच्छं ण करदि जाणसो सावऊ णवमो ॥

भावार्थ-यहां मोहकी हानिके लिये सर्व परिग्रहको छोड़कर घरमें कुछ काल उदासीनताको भावता हुआ रहता है। ऐसा कहनेसे यह प्रयोजन है कि अपने अंगको ढकनेके लिये वस्त्र मात्र रखता है।

ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस भांति है:-"अपने पहरनेको धोती, पछेवड़ी पोत्या (सिरपर ढकनेको) आदि राखे है अव-शेष त्यागे है।"

इस प्रतिमामें श्रावक पहलेसे अधिक उदासीन रहे। सामा-यिकादि ध्यानरूप कार्योंका विशेष उद्यम रक्खे। भोजन अपने पुत्रादि व अन्य साधर्मियोंद्वारा निमंत्रित होनेपर करे, प्राशुक जल बर्ते और जो क्रिया आठमीमें कही जा चुकी है उन सर्वको पाले।

सुभाषितरत्नसन्दोहमें यह श्लोक है:-

> **संसारद्रुममूलेन किमनेन ममेतियः।**
> **निःशेषं त्यजति ग्रंथं निर्ग्रंथं तं विदुर्जिनाः ॥ ८८१ ॥**

भावार्थ–यह परिग्रह संसार रूपी वृक्षका मूल है, इससे मेरा क्या प्रयोजन है–ऐसा समझकर जो सर्व परिग्रहको त्यागता है उसे परिग्रहत्याग प्रतिमावाला कहते हैं।

प्रश्न–परिग्रहसे कार्य तो आठवीं श्रेणीमें ही नहीं लेता था यहां इसने विशेष क्या किया ?

उत्तर–यद्यपि ८ वीं श्रेणीमें आरम्भके कार्य करता करता नहीं था और परिग्रहको इसने अपने पुत्रादिको सौंप दिया था, तौ भी इसने अपने पास द्रव्य वा वस्त्रादि रख छोड़ा था इससे इसकी मूर्छा नहीं मिटी थी। ९ वीं श्रेणीमें अपनी सब मूर्छाको दूर करता है केवल बहुत ही जरूरी वस्त्र व भोजन खाने पीनेके लिये पात्र रख लेता है। यह श्रावक एकान्त घरमें व धर्मशालामें रहकर रात्रि दिन धर्मध्यानकी चिन्ता रखता है।

अध्याय सोलहवां।

अनुमतित्याग-प्रतिमा।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः॥
॥ १४६ ॥ (र० क०)

भावार्थ–जो आरम्भमें, परिग्रहमें वा इस लोक सम्बन्धी कार्योंमें अनुमति कहिये सम्मति न देवे वह समान बुद्धिका धारक अनुमतित्यागी है।

सर्वदा पापकार्येषु कुरुतेऽनुमतिं न यः।
तेनानुमननं युक्तं भण्यते बुद्धिशालिना॥ ८४२॥
(अ० ग०)

अर्थ—जो सदा ही पापके कार्योंमें अपनी अनुमति नहीं करता है याने सलाह नहीं देता सो अनुमतित्यागी है।

" धनोपार्जनगृहहट्टनिर्माणपणप्रमुखानि तेषु गृहस्थकार्येषु अनुमननं मनसा वाचा श्रद्धानं रुचिं न करोति। आहारादीनां आरम्भाणाम् अनुमननात् विनिवृत्तो भवति।

(स्वा० सं० टीका)

भावार्थ—धन पैदा करना, घर, बाजार, हवेली बनाना आदि गृहस्थीके कार्योंमें मनसे व वचनसे रुचि न करे अर्थात् सलाह न देवे तथा आहारादि आरम्भ कार्योंमें भी सलाह न देवे। अर्थात् ९ मीं तक तो वह पुत्रादिके पूछनेपर घरके कामोंमें सलाह बतला देता था व अपने शरीरकी रक्षाके हेतु जिह्वा इन्द्रीके वश न हो आहार करनेकी भी सम्मति पूछनेपर बता देता था। अब यहां यह सब त्यागता है।

पहले तो निमंत्रण हो जानेपर जाता था। अब खास भोजनके समय जो ले जाय वहां भोजन कर लेता है—पहलेसे निमंत्रण स्वीकार नहीं करता है।

चैत्यालयस्थः स्वाध्यायं कुर्यात् मध्यान्हवंदनात्।
ऊर्ध्वम् आमंत्रितः सोऽश्नात् गृहे स्वस्य परस्य वा
॥ ३१ ॥ (सा० ध०)

१० मीं प्रतिमावाला चैत्यालयमें रह स्वाध्याय करे। मध्याह्नकी वन्दनाके ऊपर जो बुलावे अपने या दूसरेके घरमें जीम आवे।

नोट– इससे यह प्रयोजन समझमें नहीं आता कि दोपहर बाद भोजनको जावे । पर यह अभिप्राय है कि एक दिनके ४ भेद हैं प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, अपरान्हकाल, और सायंकाल । हरएक काल ३ घंटेका होता है इस कारण ९ बजेसे मध्यान्हकाल प्रारंभ होता है सो वन्दना करके आहारको जावे और सामायिकके समय तक निवट ले।

इसके परिणाम पहिलेसे बहुत विरक्त हैं। घर सम्बन्धी कामोंकी सलाह देना भी नहीं चाहता है। घरके त्यागका उत्सुक है। शेष क्रियाएं पहलेकी भांति पालता है। वस्त्रके परिग्रहको भी यथाशक्ति घटाता है। शीत व उष्णकी बाधा सहनेका अभ्यास करता है, क्योंकि यह शीघ्र ही खंड वस्त्रधारी क्षुल्लक होनेका उत्सुक हो रहा है। यह अत्यन्त उदासीनताको चाहनेवाला एकांत गृह व धर्मशाला व नगर बाहर रहकर अपने कर्मोंके नाशका उद्यम करता है।

अध्याय सत्रहवां।

उद्दिष्टत्याग-प्रतिमा।

क्षुल्लक और ऐलक।

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

(र०क०)

भावार्थ–जो घरको बिलकुल छोड़कर घरसे मुनि महाराजके पास वनमें जाता है और गुरुके निकट व्रतोंका धारण करके भिक्षा-

वृत्तिसे भोजन करता हुआ तप करता है सो खण्ड वस्त्रका धारी उत्कृष्ट श्रावक है।

स्वनिमित्तं त्रिधा येन कारितोऽनुमतः कृतः।
नाहारो गृह्यते पुंसा त्यक्तोद्दिष्टः स भण्यते ॥८४३॥

[सु० र०]

अर्थ– जो अपने निमत्त किया हुआ, कराया हुआ व अपनी अनुमति या सलाह या रुचिसे बनाया हुआ ऐसे तीन प्रकारका भोजन नहीं ग्रहण करता है सो उद्दिष्ट आहार त्यागी श्रावक है।

" पात्रं उद्देश्यनिर्मायतमुद्दिष्टः स च असौ आहारः उद्दिष्टाहारः तस्मात् विरतः—

स्वोद्दिष्टापिंडोपधिशयनवरासनवसत्यादेः विरतः य अन्नपान स्वाद्यखाद्यादिकं भक्षयति भिक्षाचरणेन मनवचनकायकृतकारित अनुमोदनारहितः। मह्यं अन्नं देहि इति आहार प्रार्थनार्थे द्वारोद्घाटनं शब्दज्ञापनं इत्यादि प्रार्थनारहितं, मकारत्रयरहितं चर्मजलघृततैलरामवादिभिः अस्पृष्टं रात्रावाकृतं चांडालनीचलोक मार्जारशुनकादि स्पर्शरहितं यतियोग्यं भोज्यं। एकादशके स्थाने ह्युत्कृष्ठः श्रावको भवेत् द्विविधः वस्त्रैकधरः प्रथमः कोपीनपरिग्रहोऽन्यस्तु। कोपीनोऽसौ रात्रि प्रतिमायोगं करोति नियमेन लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते हि उपविश्य पाणिपुटे।"

(स्वा० का० सं० टीका)

किसी पात्रके लिये भोजन बनाना है इस उद्देशसे बनाया हुआ भोजन उद्दिष्टआहार है। इस प्रकारके आहारसे जो विरक्त हो सो उद्दिष्टत्यागी है अर्थात् जो बुलाया हुआ किसी खास

जगह भोजन करने न जावे। भोजनके समय जावे जो भक्तिसे पड़गाहें वहीं भोजन कर ले।

यह श्रावक खास उसीके लिये बनाया हुआ भोजन, शय्या, आसन, बस्ती आदिसे विरक्त रहता है। अन्न, पान, स्वाद्य, खाद्य चारों ही प्रकारका भोजन भिक्षारूपसे करता है। मन, वचन, कायसे भोजन बनाता नहीं, बनवाता नहीं, न बने हुएकी अनुमोदना करता है। जो श्रावकने खास अपने लिये बनाया है उसीमें से त्रिभागरूप जो वह भक्तिसे दे उसे लेता है। मुझे अन्न दो ऐसी आहारके लिये प्रार्थना नहीं करता, न गृहस्थीके बंद दरवाजेको खोलता है, न भोजनके लिये शब्द करके पुकारता है। मद्य मांस मधुरहित, चर्ममें रक्खा जल, घी, तेल आदिसे विना छुआ हुआ, रात्रिको न बनाया हुआ, चांडाल, नीच आदमी, बिल्ली, कुत्ता आदिसे नहीं स्पर्श किया हुआ मुनियोंके योग्य भोजनको ग्रहण करता है। यह उत्कृष्टश्रावक दो प्रकारका होता है? प्रथम एक ही वस्त्रका धारी, द्वितीय केवल कोपीन मात्रधारी। कोपीनधारी रात्रिको मौनसहित प्रतिमा-योग धारे, कायोत्सर्ग करे। नियमसे अपने केशोंका लोंच करे, मोर पीछा रक्खे तथा अपने हाथमें ही ग्रास रखाकर बैठकर खावे। प्रथमको क्षुल्लक और दूसरेको ऐलक कहते हैं।

स द्वेधा प्रथमः स्मश्रुमूर्धजान् अपनाययेत्।
सितकौपीनसंव्यानः कर्तरया वा क्षुरेण वा॥ ३८॥
स्थानादिषु प्रतिलिखेत् मृदूपकरणेन सः।
कुर्यादेव चतुष्पर्व्यामुपवासं चतुर्विधम्॥ ३९॥

स्वयं समुपविष्टोऽद्यात् पाणिपात्रेऽथ भाजने ।
स श्रावकगृहं गत्वा पात्रपाणिस्तदंगणे ॥ ४० ॥
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्वा प्रार्थयेत वा ।
मौनेन दर्शयित्वाऽगंम् लाभालाभे समोऽचिरात ॥ ४१ ॥
निर्गत्यान्यद् गृहं गच्छेत् भिक्षोद्युक्तस्तु केनचित् ।
भोजनायार्थितोऽद्यात् तद्भुक्त्वा यद् भिक्षित मनाक् ॥ ४२ ॥
प्रार्थयेतान्यथां भिक्षां यावत्स्वोदरपूरणीम् ।
लभते प्राशु यत्राम्भस्तत्र संशोध्य तां चरेत् ॥ ४३ ॥
आकाक्षन् संयमं भिक्षापात्रप्रक्षालनादिषु ।
स्वयं यतेत चादर्पः परथाऽसंयमो महान् ॥ ४४ ॥
यस्त्वेकभिक्षानियमो गत्वाऽद्यादनुमन्यसौ ।
भुक्त्यभावे पुनः कुर्यादुपवासमवश्यकम् ॥ ४६ ॥
तद्वत्द्वितीयः किन्त्वार्यसंज्ञो लुञ्चत्यसौ कचान् ।
कौपीनमात्रयुग्धत्ते यतिवत्प्रतिभासनम् ॥ ४८ ॥
स्वपाणिपात्र एवात्ति संशोध्यान्येन योजितम् ।
इच्छाकारं समाचारं मिथः-सर्वे तु कुर्वते (सा० ध०)

भावार्थ- ग्यारह प्रतिमाधारी दो प्रकारका होता है । पहला क्षुल्लक जो सफेद कोपीन और उत्तरवस्त्र याने खंड वस्त्र रक्खे तथा अपने मूंछ, डाढ़ी और सिरके केशोंका लोंच कतरनी या छुरेसे करावे । कोमल उपकरण याने पीछीसे स्थान आदिको झाड़-कर बैठे तथा मासमें चार पर्वोके दिन चार प्रकार आहारको त्याग उपवास करे । स्वयं बैठ हाथमें रखवाकर या वर्तनमें लेकर भोजन करे । क्षुल्लक श्रावक हाथमें पात्र लिये हुए गृहस्थीके घरमें

आंगन तक जावे और खड़ा होकर " धर्मलाभ " कहे, मौनसे अपना अंग दिखावे। यदि वे पड़गाह लें तो ठीक नहीं तो लाभ व अलाभमें समभाव रखके दूसरे घर जावे। अपने पास पानीके पात्रके सिवाय १ भोजन लेनेका भी पात्र होता है उसमें जो भोजन कोई श्रावक दान कर दे उसे ले दूसरे घरमें जावे, जहां-तक उदर पूर्ति होने तक न मिले वहांतक जावे फिर किसी घरमें प्राशुक जल लेकर वहां भोजन कर लेवे और भिक्षाके पात्रको आप ही धो लेवे। मद नहीं करे, नहीं तो बड़ा असंयम होवे। जिस क्षुल्लकको एक ही घरमें भिक्षाका नियम हो वह एक ही घरमें जो मिले सो भोजन कर ले और जो न मिले सो अवश्य उपवास करे।

दूसरा भेद ऐलकका है सो भी पहलेकी भांति क्रिया करे, किन्तु उसमें विशेष यह है कि यह अपने केशोंका लोंच आप ही करे, केवल कोपीन मात्र धरे। यतीके समान आप प्रकाशमान रहे, अपने हाथमें ही नियमसे भोजन खावे जो दूसरेने विचार पूर्वक हाथमें रख दिया हो तथा यह श्रावक परस्पर इच्छाकार करे इसको कई घरसे लेनेका निषेध है, क्योंकि ऐलकके पास जलका पात्र तो होता है, परन्तु भोजन रखनेका पात्र नहीं होता।

वसुनंदिश्रावकाचारमें भी ऊपरकी भांति ही कथन है। ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस भांति कथन है:—

" उत्कृष्टश्रावक बुलाया नहीं जीमें, कमंडल, पीछी पछे-वड़ी लंगोटी स्पर्श शूद्र लोहेका शेष पीतल आदि धातुका और

पांचे घरां सूं भोजन लेना। अंतके घर पानी ले वहां बैठ भोजन करे। कातरया करावे, ऐलक कमंडल पीछी करपात्र आहार, लोंच करे। लाल लंगोटी राखे है और लंगोट चाहिये सो भी लेय, श्रावकके घर कहे अक्षयदान नगर, मंदिर व मठ वाह्यमें बसे है।

श्रीपार्श्वनाथपुराणमें इस भांति लेख है:-

" जो गुरु निकट जाय व्रत गहै, घर तज मठ मंडपमें रहे।
एक वसन तन पीछी साथ, कटि कोपीन कमंडल साथ।
भिक्षा भाजन राखे पास, चारों परब करे उपवास।
ले उदंड भोजन निर्दोष, लाभ अलाभ राग ना रोष।
उचित काल कतरावै केश, डाढ़ी मूछ न राखे लेश।
तप विधान आगम अभ्यास, शक्ति समान करे गुरु पास।
यह क्षुल्लक श्रावककी रीति, दूजो ऐलक अधिक पुनीत।
जाके एक कमर कोपीन, हाथ कमंडल पीछी लीन।
विधिसे बैठ लेहि आहार, पानपात्र आगम अनुसार।
करे केश लुंचन अतिधीर, शीत घाम सब सहै शरीर।
सोरठा-पान पात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ मुनि।
खड़ो रहो तिहवार, भक्ति रहित भोजन तजै।
दोहा-एक हाथ पर ग्रास धर, एक हाथमें लेहि।
श्रावकके घर आयके ऐलक असन करेय।

क्षुल्लकका खुलासा कर्तव्य।

क्षुल्लक एक लंगोटी और १ खंड वस्त्र रक्खे जिससे सर्व शरीरको ढक न सके ताकि किसी अंगको खुला रखते हुए डांस

मच्छर, शर्दी गर्मीकी परिसहोंको सहनेका अभ्यास करे। जलके लिये कमंडल व एक पात्र भोजनके लिये रक्खे तथा मोरके परोंकी पीछी रक्खे, क्योंकि मोरके बाल ऐसे कोमल होते हैं कि रंचमात्र भी हिंसा नहीं होती। भोजनके समय उदास रूप संतोषके साथ निकले। तब यह प्रतिज्ञा करे कि मैं किस १ मुहल्लेमें भोजनार्थ घूमूंगा व कई घरसे थोड़ा २ भोजन लेकर जीमूंगा व एक ही घरमें जो मिलेगा सो ले लूंगा। ऐसा विचारकर श्रावकके घरके द्वारपर व आंगन तक आ जावे जहां सब कोई जा सक्ते हैं। यदि श्रावक देखते ही पड़गाह लेवे और आहार पानी शुद्ध कहे तो श्रावकके साथ होकर घरके भीतर चला जावे, जो सम्मुख न खड़ा हो तो कायोत्सर्ग करके "धर्मलाभ" कहे। यदि इतनेमें कोई पड़गाह ले तो चला जावे नहीं तो लौटकर दूसरेके घरमें इसी भांति करे। यदि वह पड़गाह ले और पग धुवाय चौकेमें भक्तिसहित ले जाय और बैठावे तो आप सन्तोष सहित आहार करले तथा यदि एक ही घर जीम लेनेका नियम न हो तो पात्रमें जो श्रावक डाल दे उसे ले और दूसरे घर जावे। यहां यह मालूम होता है कि वह पात्र ढका हुआ होना चाहिये ताकि उसमें कुछ गिर न पड़े और फिर दूसरे घरमें जावे। जब भोजनके योग्य प्राप्त हो जावे तो किसी श्रावकके यहां केवल प्राशुक जल ले बैठ कर भोजन कर ले और अपने ही हाथसे मांज कर धो लेवे। कई घरोंकी प्रवृत्ति इसी लिये मालूम होती है कि गरीबसे गरीब दातार भी दान कर सके और उसको उद्दिष्ट दोष न लगे। परन्तु वर्तमानमें एक घर ही जीमनेकी

प्रवृत्ति दूसरेकी अपेक्षा अधिक रुचिकर मालूम होती है अथवा किसी २ का ऐसा भी कहना है कि पांच घर एक ही सीधमें हों तो इस प्रकार पांचोंके यहांसे भोजन ले आहार कर ले और फिर निवृत्त हो जावे। क्षुल्लक त्रिकाल सामायिक व प्रोषधोपवास अवश्य करे। अधिक वैराग्य और आत्मज्ञानकी उत्कंठा रखकर उद्यम करे।

ऐलकका कर्तव्य।

क्षुल्लकके समान सामायिक व प्रोषधोपवास करे। रात्रिको मौन रख ध्यानमें लीन रहे। एक लंगोटी मात्र वस्त्र व पीछी कमंडल रक्खे। भोजनके समय मुहल्लोंकी व घरोंकी प्रतिज्ञा कर जावे। यदि कोई जाते ही पड़गाह ले तो ठीक नहीं तो कायोत्सर्ग करके अक्षयदान कहे, इतनेमें वह श्रावक पड़गाह ले तो जाकर चौकेमें बैठ व खड़े हो हाथमें ही भोजन करे अर्थात् श्रावक एक हाथमें रखता जाय और वह दूसरे हाथसे लेता जावे। अपने सिर, डाढ़ी और मूछके केशोंका आप ही लौंच करे। विशेष ध्यान स्वाध्यायमें लीन रहे।

क्षुल्लक तथा ऐलकके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह रोज व्रतसंख्यान तपके अभिप्रायसे ऐसी अटपटी आखड़ी लेवे जिससे गृहस्थ लोग खासकर अनेक प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह कर द्वारपर खड़े हो वाट देखें। जब कभी अपने शरीरकी ऐसी स्थिति देखे कि आज आहार नहीं प्राप्त होगा तौ भी मेरे ध्यान व स्वाध्यायमें कोई आकुलता न होगी तथा आज मुझे अपना अपना अंतरायकर्म अजमाना है तो कोई अटपटी आखड़ी रख ले,

जैसे कि पड़गाहनेवाला ऐसी स्थितिमें प्राप्त होगा तो आहार लेंगे अन्यथा नहीं। यदि प्रतिज्ञाके समान प्राप्त न हो तो आहार न लेवे और अपने ध्यान स्वाध्यायके स्थानको लौट जावे। नियम रूपसे रोज अटपटी आखड़ी क्षुल्लक तथा ऐलकको करना चहिये यह बात कहीं देखनेमें नहीं आ,ई किन्तु प्राय: साधारण रीतिसे ही अनुद्दिष्ट भोजन लेकर धर्मध्यान करनेकी आज्ञा पाई गई है।

अध्याय अठारहवां।

विवाहके पश्चात् आवश्यक गृहस्थके संस्कार।

गत अध्यायोंमें गृहस्थश्रावक किस प्रकार अपने धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थोंको भले प्रकार अपनी कषायोंके अनुसार सम्पादन करता हुआ मोक्ष पुरुषार्थका उद्यम करे और अंतमें ऐलक तक अभ्यास करता हुआ मुनिपनेके योग्य हो यह बात वर्णन कर दी गई है। जो गृहस्थीका पुत्र गुरुकुलमें विद्याभ्यासके लिये गया था वह जब विद्या अच्छी तरह प्राप्त कर अपने घरमें लौटता है तब मातपिता उसको गृहस्थ धर्मके पालनेके योग्य अभिलाषी जानकर उसका विवाह करते हैं। उसके पश्चात् वह गृहस्थमें किस प्रकार रहे और क्या २ आवश्यक संस्कार उसके लिये हैं इनका वर्णन आगे किया जाता है।

नं० १८ **वर्णलाभक्रिया**—जब यह विवाह करके आ जाता है तब संतानके अर्थ ही ऋतु समयमें काम सेवन करता है। और अपने कर्तव्यको सीखता है। जब इसकी स्त्री घरके

कामकाजमें चतुर हो जाती है और यह पुत्र अपने गृहस्थ योग्य सर्व व्यवहारमें प्रवीण हो जाता है और अपने पितासे स्वतंत्र रह आजीविका कर सक्ता है तब यह वर्णलाभ क्रिया की जाती है जिससे यह स्वतंत्रताके साथमें अपने पुरुषार्थोंकी सिद्धि कर सके। जब तक इस योग्य नहीं होता है तबतक पिताके ही साथ एक ही घरमें रहता है। जब सब तरह योग्य हो जाता है तब पिता अपनी इच्छासे इसको स्वतंत्रता दे देते हैं। उस समय मंत्र पूर्वक यह क्रिया की जाती है। पिता अपने पुत्रको अच्छी उन्नति करनेके लिये यह स्वतंत्रता देता है न बिलकुल छूट जानेके लिये। इनका पिता व पुत्रका सम्बन्ध नहीं छूटता है। इस क्रियाकी आवश्यक्तामें महापुराणमें श्रीजिनसेनाचार्य इस भांति कहते हैः-

" ऊढ़ भार्योप्ययं तावदस्वतंत्रो गुरोर्गृहे।

ततः स्वातन्त्र्यसिद्ध्यर्थं वर्णलाभोऽस्य वर्णितः १३७॥

अर्थात्-जब तक इसकी वधू ऊढ़ा है अर्थात् विज्ञ (तजुर्बेकार) नहीं है तब तक यह अपने पिता ही के घरमें माता पिताके सर्वथा आधीन रहे, परन्तु इसके पश्चात् इसको स्वतंत्रताकी सिद्धिके लिये वर्णलाभ-क्रिया की जाती है। जिस तरह एक म्यानमें दो तलवार नहीं रह सक्तीं ऐसे ही एक घरमें दो प्रवीण पुरुष व स्त्रियां एक साथ नहीं रह सक्तीं-समय २ पर स्वतंत्रताका घात होता है। इसीलिये आजकल घर २ में लड़ाईं रहती है, क्योंकि हमने सर्व संस्कारोंको मिटा दिया है और पूर्वाचार्योंकी आज्ञाका लोप कर दिया है।

इस वर्णलाभक्रियासे यह पुत्र वधू पृथक् खाते, पीते, सोते, बैठते हैं; परन्तु एक घरके हातेमें न रहें सो नहीं है। एक घरके हातेमें व निकटके ही घरमें रहते हैं।

इस क्रियाकी विधि।

शुभ दिनमें पहलेकी भांति सात पीठिकाके मंत्रोंसे पूजा होम आदि क्रिया की जावे फिर सर्व श्रावक मंडलीके सामने उनकी साक्षीसे पिता पुत्रको धन धान्यादि द्रव्य देवे और यह आज्ञा करे।

"धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मिन् स्वगृहे पृथक्।
गृहिधर्मस्त्वया धार्यः कृत्स्नो दानादिलक्षणः ॥१४०॥
यथाऽस्मत्पितृदत्तेन धनेनास्माभिरर्जितम्।
यशो धर्मश्च तद्वत्त्वं यशो धर्मानुपार्जय ॥ १४१ ॥

भावार्थ–हे पुत्र ! इस धनको ले और इस जुदे अपने घरमें रहकर सम्पूर्ण दान पूजा आदि धर्म करते हुए गृहस्थी धर्मका पालन कर। जैसे हमने अपने पिताके दिये हुए द्रव्यसे यश और धर्मको पैदा किया है वैसे तू भी यश और धर्मका लाभ कर।"

उस समय वह जुदे मकानमें जाकर रहे और भोजन करे, करावे, बड़ा आनन्द माने। इस क्रियाके कर लेनेसे पिता पुत्रका सम्बन्ध नहीं टूटता है। पिता पुत्रकी रक्षा व पुत्र पिताकी भक्तिमें लवलीन रहता है तथा पिताकी जायदादमें पुत्रका सम्बन्ध फिर भी बना रहता है ऐसा भाव समझमें आता है। क्योंकि पिताके गृह त्याग करनेपर उसका पुत्र ही उसकी जायदादका स्वामी बनता है।

इस वर्णलाभ–क्रियासे यह भी लाभ विदित होता है कि यदि एक पिताके कई पुत्र हैं तो वे सर्व स्वतंत्रतासे रहें, धनोपार्जन करें और–परस्पर धनके अर्थ कोई तकरार न करें। स्वतंत्रतासे जो उपार्जन करें उसके स्वामी वे अलग २ रहें, यदि एक ही व्यापार करें तो व्यापारके लाभमें अपनी २ पूंजी व शर्तोंके अनुसार जो फायदा हो उसका विभाग कर लेवें। इसमें सन्देह नहीं कि सामर्थ्य होनेपर यदि परतंत्रताकी बेड़ीमें पड़ा रहे तो कदापि धन, धर्म और यशकी बढ़वारी नहीं कर सक्ता। स्वतंत्रता ही अपनी मानसिक व शारीरिक शक्तियोंका उपयोग कराती है तथा अपने उद्योगमें जो विघ्न आवें उनको धीरजके साथ सहने और दूर करनेका साहस प्रदान करती है। जो धनिक पुत्र पिताकी जायदादको ही खाते और स्वयं उद्यम करके परिश्रम नहीं करते हैं वे आलसी, सुस्त, विषयानुरागी, मदान्ध और अधर्मी बन जाते हैं और अपने मनुष्य–जन्मको वृथा गमा देते हैं। अतएव यह १८ वां संस्कार मनुष्यकी उन्नतिके लिये अतिशय उपयोगी है।

१९. **कुलचर्याक्रिया**–इस प्रकार स्वतंत्रतासे रहता हुआ वह गृहस्थी होकर गृहस्थके कुलका आचरण करे अर्थात् नीचे लिखे षट्कर्म साधन करेः–

१. इज्या–श्री अरहंतकी नित्य पूजा करे।

२. वार्ता–आजीविका अपने वर्णके योग्य ६ प्रकार करे याने असि, मसि, व्यापार, कृषि, शिल्प व पशु–पालन या विद्या। ब्राह्मणके लिये कोई आजीविका नहीं है। उसको जिन–पूजन व जिन–शास्त्रोंका पठनपाठन करना ही योग्य है और यही उसका मुख्य कार्य्य है।

३. दत्ति-चार प्रकारका दान करे, दयासे सर्वका उपकार करें, भक्तिसे पात्रोंको देवे, अपने समान जैनियोंको औषधि, शास्त्र, अभय, भूमि, सुवर्ण इत्यादि भी देवे, जिसमें वे निराकुल हो गृहस्थके कर्तव्य कर सकें।

४. स्वाध्याय-शास्त्रोंको पढ़े, सुने व सुनावे।

५. संयम-प्राणसंयम और इन्द्रीसंयम पाले, जितेन्द्री रहे।

६. तप-ध्यान व उपवास व्रत आदिक कार्य करे।

२० गृहीशिता (गृहस्थाचार्यकी क्रिया)-जब यह गृहस्थी अपने उद्योगसे धन, धर्म यशको बढ़ा ले तथा लोकमान्यता प्राप्त करले और यह देखे कि मेरेमें अन्य गृहस्थियोंको गृहस्थधर्ममें चलानेकी योग्यता है तब यह गृहस्थाचार्यके पदको गृहण करे। उस समय प्रथमकी भांति पूजा आदि होकर यह मुख्य होवे और तबसे इसको श्रावक लोग वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपती, मान योग्य ऐसे नामोंसे सत्कार करें। तबसे यह अन्य गृहस्थियोंके गर्भाधानादि संस्कारोंको करावे, उनकी प्रतिपालना करे, न्याय और धर्ममें औरोंसे अधिक सूक्ष्मतासे वर्ते। अपने शुभाचरणसे अपना प्रभाव प्रगटावे। आजकल पंचायतियोंमें बहुधा चौधरी, सेठ, मुखिया व पंच होते हैं। ऐसे चौधरी, सेठ व मुखिया पहले गृहस्थाचार्य्य ही हुआ करते थे। इनकी सर्व व्यवहार क्रिया औरोंसे उत्तम और बढ़कर रहती थी।

अनन्यसदृशैरेभिः श्रुतवृत्तक्रियादिभिः।
स्वमुन्नतिं नयन्नेष तदाऽर्हति गृहीशिताम्॥१७॥

भावार्थ—जब गृहस्थीमें शास्त्रज्ञान, आजीविका व धर्मादि क्रियाकी ऐसी उन्नति हो जाती है जो दूसरोंमें न हो। तब यह गृहीशिताक्रियाके योग्य होता है। अब भी यह रिवाज है कि चौधरियोंके विना विवाहादि कार्य नहीं होते, परन्तु अबके चौधरी केवल रीति रिवाज पुरानी लकीरके अनुसार जानते हैं; परन्तु पूजा, पाठादि संस्कार नहीं करा सक्के और न अपना प्रभव जमा सक्के हैं। अतएव समाजको शास्त्रानुसार धर्मके मार्गपर चलानेके लिये गृहीशिताक्रियाको प्राप्त ऐसे प्रभावशाली गृहस्थाचार्योंकी आवश्यक्ता है।

हमारे भाइयोंको इस सनातनके मार्गको देख इसके पालनेके लिये तुरन्त उत्साही हो जाना चाहिये; क्योंकि निराकुलताका यही मार्ग है। जब गृहस्थी कुलचर्य्यामें प्रवीण हो यश और धर्म बढ़ा ले तब अन्य गृहस्थियोंका अधिपति हो उनको कुमार्गसे बचावे और सुमार्गपर चलावे।

२१. **प्रशांतता क्रिया**—यह गृहस्थी जैसे २ उन्नति करता जाता है वैसे २ प्रतिमा सम्बन्धी क्रियाओंको दृढ़ करता जाता है। जब इस गृहस्थाचार्यके चित्तमें पूर्ण शांति स्थापनेकी इच्छा होती है तब यह अपने समान समर्थ जो पुत्र उसको गृहस्थपनेका सारा भार दे देता है और आप शांतताका आश्रय कर विषयोंसे विरक्त रह स्वाध्याय व उपवाससहित घरमें ही रह अपना जीवन बिताता है। इस कथनसे यह विदित होता है कि यह धीरे २ आरम्भका त्याग करता है और ८ वीं प्रतिमाके नियम पालने लग जाता है।

२२. गृहत्याग क्रिया—जब गृहस्थीको पुत्र पौत्रादिकोंके व धनादि परिग्रहके सम्बन्धमें रहना भी अपनी आत्मोन्नतिमें बाधक मालूम होता है तब यह सर्व साधर्मी जनोंको बुलाकर उनके सामने पूर्वोक्त पूजा आदि कर पुत्रको नीचे लिखे भांति शिक्षा दे व स्वयं दानादि धर्ममें अपने द्रव्यका विभागकर घरको त्याग देता है।

"कुलक्रम त्वया तात सम्पाल्योऽस्मत् परोक्षतः।
त्रिधा कृतं च नो द्रव्यं त्वयेत्थं विनियोज्यताम् ॥१५२॥
एकांशो धर्मकार्येऽतो द्वितीयः स्वगृहव्यये।
तृतीयः संविभागाय भवेत्त्वत्सहजन्मनाम् ॥१५३॥
पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः।
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठः सन्ततिं नोऽनुपालय ॥१५५॥
श्रुतवृत्तिक्रियामंत्रविधिज्ञस्त्वमतान्द्रितः।
प्रपालय कुलाम्नायं गुरुंदेवांश्च पूजयन् ॥१५६॥
इत्येवं मनुशास्य स्वं ज्येष्ठं सूनुमनाकुलः
ततो दीक्षां समादातुं द्विजः स्वगृहमुत्सृजेत् ॥१५७॥

भावार्थ—हे पुत्र! हमारे कुलकी रीतिको हमारे पीछे भले प्रकार पालियो तथा मैंने जो अपने द्रव्यके तीन भाग कर दिये हैं उसी प्रमाण उसका उपयोग करियो। इन तीन भागोंमें एक भाग तो धर्मकार्य्यके लिये, दूसरा भाग घर खर्चके लिये और तीसरा भाग तुम्हारे सहजन्मोंके लिये है। पुत्रोंके विभागके समान पुत्रियोंका भी हिस्सा है अर्थात् सर्व पुत्र पुत्रियोंको बराबर २ द्रव्यका भाग करना योग्य है। तू कुलमें बड़ा है—इससे सर्वकी रक्षा कर;

तू शास्त्र, सदाचार क्रिया, मंत्र व विधिको जाननेवाला है, इससे आलस्य त्याग कर कुलकी रीतिकी रक्षा कर और अपने इष्टदेव और गुरुकी पूजा कर। इस तरह अपने बड़े पुत्रको शिक्षा दे-क्रम २ से आकुलता छोड़कर दीक्षा लेनेके अभिप्रायसे घरको त्याग करे।

२३. **दीक्षाद्यक्रिया**-ऊपरके कथनसे विदित होता है कि गृहस्थी परिग्रहका त्याग कर घरसे अलग मठ व धर्मशालामें रहे फिर अनुमतिको भी त्यागे। इस तरह ९मीं और १० मीं प्रतिमाके व्रतोंको पालता हुआ दीक्षाद्यक्रिया धारण करे अर्थात् क्षुल्लक और ऐलकके व्रत पाले। मुनिकी दीक्षाके पहलेकी यह ११ मीं प्रतिमाकी क्रिया है, इससे इसको दीक्षाद्यक्रिया कहते हैं। क्योंकि जो विरक्त पुरुष दीक्षाद्यक्रियामें अभ्यास कर लेगा वही मुनिव्रतको धारकर सुगमतासे पाल सकेगा।

२४. **जिनरूपताक्रिया**-अर्थात् नग्न हो मुनिका रूप धारण करे।

त्यक्तचेलादिसङ्गस्य जैनीं दीक्षामुपेयुषः।
धारणं जातरूपस्य यत्तत्स्याज्जिनरूपता॥ १६०॥

भावार्थ-सर्व वस्त्र आदि परिग्रहको छोड़कर मुनि दीक्षाको ले यथा जात अर्थात् जिस रूपमें जन्म लिया था उस रूपको धारण कर जिनरूपता अर्थात् नग्न दिगम्बरत्वको प्राप्त होवे।

२५. मौनाध्ययन व तत्त्वाक्रिया।

कृत दीक्षोपवासस्य प्रवृत्ते पारणाविधौ।
मौनाध्ययनवृत्तित्वमिष्टमाश्रुत निष्ठिते॥१६२॥

भावार्थ—दीक्षा लेनेके दिन उपवास करके पारणाकी विधि मुनिके समान करे तथा मौन धर विनयवान हो निर्मल मन, वचन, कायसे गुरुके समीप सकलश्रुत पढ़े। शास्त्र समाप्ति तक मौनसहित पढ़े, आप परके उपदेशमें न प्रवर्ते। यहां तककी क्रियाओंका जानना गृहस्थीके लिये बहुत जरूरी है, इसलिये इनका खुलासा लिखा गया है।

आगे २८ क्रियाएं मुनि दीक्षासे लेकर सिद्ध अवस्था प्राप्ति करने तककी हैं जिनका हाल इस पुस्तकमें लिखना आवश्यक नहीं समझा गया। जिनको देखना हो आदिपुराणके ३८ वें पर्वको पढ़ें।

अध्याय उन्नीसवां।

संस्कारोंका असर।

हरएक वस्तु उत्तम २ निमित्तोंको पाकर शोभनीक और उपयोगी अवस्थाको प्राप्त होती है। जैसे खानसे निकला हुआ ही एक माणिक, नीलमका पत्थर प्रवीण कारीगर और घिसनेके लिये योग्य शान व मसालेका सम्बन्ध पानेपर बहुत ही मूल्यवान और उपयोगी हो जाता है व ईंट, पत्थर, लकड़ी, चूना आदि मसाला प्रवीण शिल्पीका संयोग पाकर १ अच्छे शोभनीक महलकी सूरतमें बदल जाता है। इसी तरह जिस मनुष्य—गतिमें ये बालक व बालिकाएं आते हैं उस समयके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे वे अजान होते हैं, उनकी आत्मामें शक्ति व्यक्तरूप

होनेको भी सन्मुख होती है, जिस कार्य्यके लिये गर्भ अवस्थासे ही उपयोगी निमित्तोंका मिलाना जरूरी है। यदि योग्य निमित्त मिलें तो ये बालक व बालिकाएं बहुत ही उपयोगी पुरुष और स्त्रीके भावको प्राप्त हो जाते हैं।

गर्भावस्थामें गर्भस्थानमें जिस समय जीव आता है उस समय वह एक पिंडके भीतर प्राप्त होता है। यह पिंड माताके रुधिर और पिताके वीर्य्यसे बनता है। इस पिंडका सम्बन्ध होना ही पहला संस्कार है। यदि माता पिता मिथ्यात्त्व, अन्याय, अभक्ष्यके त्यागी, सुआचरणी, धर्मबुद्धि, संतोषी, परिमित आहारी, शुद्ध भोजनपानके कर्त्ता और शुद्ध विचारोंके धारक होते हैं तो उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका असर भी उनके रुधिर और वीर्य्यमें वैसा ही उत्तम पड़ता है और इन्हींसे बने हुए पिंडका असर उस बालकके पौद्गलिक शरीरपर पड़ता है।

पहले जो गर्भाधानादि संस्कार वर्णन किये गये हैं वे गर्भके समयसे ही प्रारम्भ होते हैं। इन संस्कारोंको जब सुआचरणी माता और पिता बालकके साथमें करते हैं तब उनके परिणामोंमें जो धार्मिक व सुव्यवहारिक असर पड़ता है उससे बालक बालिकाके विचार एक खास अवस्थामें बदलते जाते हैं। संस्कारोंके प्रताप और माता पिताके सम्हालसे बालककी शक्तियां बहुत प्रौढ़ और मजबूत हो जाती हैं, जैसे कच्चे गेहूं और चनेको सूर्य्यकी धूपकी किरणोंका संस्कार पका देता है। गृहस्थका कर्तव्य संस्कारित पुरुष और स्त्रीके द्वारा ही यथायोग्य पाला जा सक्ता है और ऐसे सुकर्तव्यके वर्तावसे

दोनोंका जीवन सुखमई देव और देवीके तुल्य परस्पर हितरूप हो जाता है तथा ऐसे गृहस्थ ही पहले कही हुई प्रतिमाओंकी रीतिसे धर्माचरण करते हुए आत्मोन्नति करते चले जाते हैं और क्षुल्लक व ऐलक होकर फिर मुनि होनेके योग्य हो सके हैं। अतएव यदि मनुष्य-जन्मकी सफलता करना हो तो अवश्य अपने बालक बालिकाओंको संस्कारित करो और पहले कही हुई रीतिसे गृहधर्मको पालो और पलवाओ। इसमें शंका नहीं कि बालकका संस्कार ठीक होनेके लिये सुसंस्कारित और सुशिक्षित माताकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। अतएव जैसे बालकको संस्कारित व सुशिक्षित किया जाता है ऐसे ही बालिकाको उसके योग्य संस्कारोंसे विभूषित करना चाहिये और सुशिक्षित बनाना चाहिये।

अध्याय वीसवां।

संस्कारित माताका उपाय।

जब बालक गर्भमें आता है तब यह तो निश्चय नहीं हो सक्ता कि पुत्र होगा या पुत्री। अतएव बालकके जन्मसे पहले गर्भाधानसे लेकर मोदक्रिया तकके संस्कार तो किये ही जाते है, परन्तु यदि पुत्र न जन्मकर पुत्री जन्मे तो उसके लिये क्या संस्कार किये जावें तथा उसके क्या २ मंत्र हैं? इनका विधान किसी शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया। तो भी जो २ सस्कार पुत्रके किये हैं उनमेंसे वे संस्कार पुत्रीके लिये भी किये जावें जो कि पुत्रीके लिये संभव हैं- ऐसा करनेमें कोई हर्जकी बात नहीं

है। जबतक खास विधि व खास मंत्र न मिलें तब तक नीचे प्रमाणे क्रियाएं की जावें ताकि पुत्रीके चित्तपर भी असर पड़े।

जन्म समयकी प्रियोद्भवक्रिया उसी विधिसे करे जैसे पुत्रके लिये कहा गया है। नित्यपूजाके बाद सात पीठिकाके मंत्रोंसे होम किया जावे। आगे चलकर पहले कहे हुए मंत्रोंसे बालिका-का सिर गंधोदक छिड़क कर पिताद्वारा स्पर्श किया जावे। उस समय पिता आशीर्वाद देवे। पहली विधिमें पुत्रके कहनेको तो शब्द हैं, परन्तु पुत्रीके लिये नहीं हैं। अतएव जब तक वे शब्द न मिलें तब तक चिरंजीव रहे, सौभाग्यवती रहे, तीर्थंकरकी माता हो इत्यादि शब्द कहे जावें। फिर बालककी नाभिनाल काटनेसे लेकर नाभि गाड़ने तककी क्रिया पहलेकी भांति करे, परन्तु क्रि-याओंके मंत्र न पढ़े; क्योंकि वे सर्व पुत्र सम्बन्धी हैं। इन मन्त्रोंके स्थानमें "नमः अर्हद्भ्यः" गृहस्थाचार्यद्वारा कहा जावे। बालककी माताको स्नान करानेका जो मंत्र है उसीसे पढ स्नान कराया जावे। तीसरे दिन तारामंडित आकाश दिखाया जावे, तब 'नमः अर्हद्भ्यः" ही मंत्र पढ़ लिया जावे। फिर नामकर्मक्रियामें पहलेकी भांति सात पीठिकाके मंत्रों तक होम करे और कुछ शुभ नाम सतियों व धर्मात्मा स्त्रियोंके व त्रेशठशलाका पुरुषोंकी माताओंके प्रत्येक पत्रपर अलग २ लिख कर रक्खे, किसी शुचि बालकसे उठवावे जो नाम आवे वही रक्खा जावे।

बहिर्यानक्रियामें—पूर्वकी तरह प्रसूतिघरसे बाहर लाया जावे। पूजा केवल सात पीठिकाके मंत्रों तक ही की जावे। इस क्रियाके खास मंत्र पुत्रकी अपेक्षा हैं, तिनको न पढ़ केवल 'नमः

अर्हद्भ्य.' कहा जावे। इसी भांति निषद्याक्रिया, अन्नप्राशनक्रिया व्युष्टिक्रिया भी की जावे। केवल खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे। पुत्रीके लिये चौलिक्रियाकी आवश्यकता नहीं है। यदि किसी कुलमें इसका रिवाज हो तो की जावे, खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्य.' कहा जावे अथवा किसी पुत्रके साथ पुत्रीकी चौलिक्रिया की जावे।

जब बालिका ५ वर्षकी हो जावे तब उसको सुशिक्षित अध्यापिका व वयोवृद्ध सुशील अध्यापकके द्वारा लिपिकी शिक्षा देनेके लिये "लिपिसंख्यान क्रिया" कराना चाहिये। उस समय भी सात पीठिकाके मंत्रों तक पूजा की जाय। शेष मंत्रोंके स्थानपर 'नमः अर्हद्भ्य' ' से काम लिया जाय। उस समयसे बालिकाके योग्य लिखने, पढ़ने, गणित आदिकी ऐसी प्राथमिक शिक्षा दी जावे जिससे उसे आगामी ज्ञानके साधनोंमें व गृहस्थी सम्बन्धी क्रियाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेमें सुगमता मालूम हो। ८ वर्ष तक साधारण शिक्षा देकर फिर विशेष शिक्षाके अर्थ किसी योग्य श्राविकाश्रममें पढ़ने भेजे अथवा अन्य शालाओंसे काम लेवे। उस समय धर्मका भले प्रकार ज्ञान कराया जावे और साथमें सीनापिरोना, रसोई-बनाना, पुत्र-पालन, वैद्यक आदिकी जरूरी शिक्षाएं दी जावें तथा कन्याओंको गाना, बजाना व नृत्य भी सिखाना चाहिये, क्योंकि गृहधर्ममें प्राप्त बधूके लिये इनका जानना अपने पतिके चित्तके प्रसन्नार्थ जरूरी है। जब यह कन्या सच्ची माता होने योग्य शिक्षाको प्राप्त कर लेवे तब इसकी रक्षिका अथवा माता व पिता यह देखें कि अब भी इस कन्याकी पढ़नेमें

अधिक रुचि है तथा इसका काम-विकार दबा हुआ है तो और अधिक प्रयोजनीय शिक्षा दी जावे। कमसे कम ११ वर्षकी अवस्था तक तो पढ़ना ही चाहिये। यदि सुशिक्षित कन्या धर्मके स्वरूपको जानकर यह कहे कि मैं आजन्म ब्रह्मचर्य पालकर अपना जीवन स्वपरकल्याणमें ब्राह्मी तथा सुन्दरीकी तरह बिताऊंगी तो माता पिताको इसके लग्नका हठ नहीं करना चाहिये, परन्तु उसकी योग्यता और परिणामोंकी जांच किसी एक दो वयोवृद्ध धर्मात्मा सुशिक्षित श्राविकाओंसे कराई जाय। यदि यथार्थमें उसके भाव इसी प्रकारके दृढ़ हों तो वह कन्या अपने घरमें न रह किसी श्राविकाश्रममें अथवा किसी धर्मात्मा विरक्तचित्त ब्रह्मचारिणी श्राविकाके साथ रह ज्ञान, तप और उपकारकी वृद्धि करे। यदि कन्याके परिणाम विरक्त न हों तो गृहधर्म-प्रेमी कन्याकी लग्न योग्य बरके साथ उसी विधिके साथ की जावे जिसका वर्णन विवाहसंस्कारमें किया जा चुका है। और तब वह कन्या वधू भावको प्राप्त हो अपने पतिको अपना स्वामी, रक्षक, व परम प्रीतम समझे, उसकी आज्ञामें चले, अपने सत्य जिनधर्मकी क्रियाओंको रुचिसे पाले। यदि अपना पति धर्मसे विमुख हो तो उसको प्रिय बचनोंसे उपदेश देकर धर्ममें दृढ़ करे। यदि कदाचित् पति धर्मकी तरफ ध्यान न दे तो आप कभी भी धर्माचरणसे विमुख न हो, किन्तु धर्माचरणको इस तरह पाले जिससे परिणामोंमें आकुलता न हो। पतिकी सेवामें किसी प्रकारकी त्रुटि न रहे, जिससे पतिको संक्लेशपना हो जावे तथा पुत्रादिकोंकी योग्य सम्हाल करे, भोजन शास्त्रानुसार क्रियासे

बनावे, प्रमाद न करे तथा अपनी सास, ननद आदिसे प्रेम रक्खे और एक घरमें वास करनेवालोंको अपने निमित्तसे आकुलता पैदा हो जाय इस तरह वर्ताव न करे। जिस कन्यापर बाल्यावस्थासे संस्कारोंका और फिर सुशिक्षाका असर पड़ेगा वह अवश्य योग्य माता हो सक्ती है और उसकी सन्तान प्रति अवश्य सन्मार्गपर चलनेवाली होगी। अतएव अपनी कन्याओंको धार्मिक संस्कार और विद्यासे सुसज्जित करना चाहिये—यही एक कारण बीजरूप वीर पुत्रोंकी प्राप्तिका है।

अध्याय इक्कीसवां।

गृहस्त्री-धर्माचरण।

स्त्री अपने पति और पुत्रादिकोंके साथमें रहती हुई उसी प्रकार श्राविकाके व्रत पाल सक्ती है जिस तरह एक पुरुष अपनी स्त्री पुत्रोंके साथमें रहता हुआ श्रावकके व्रत पाल सक्ता है। पहले पाक्षिकश्रावकके व्रत पाले। जब उनमें अभ्यास हो जावे तब दर्शनप्रतिमा व व्रतप्रतिमाके नियमोंको पाले। यहां तकके नियम हरएक गृहस्थ स्त्री सुगमतासे पाल सक्ती है। फिर जब अधिक धर्मध्यान करनेकी शक्ति और अवकाश हो तब सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग-प्रतिमा, रात्रिभोजन, व दिवामैथुनत्याग प्रतिमाके नियम पाले। यहां तकके नियम अपने पतिके साथमें मेलसे रहते हुए श्राविका पाल सक्ती है। इसके आगे ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाके नियमोंको वह श्राविका उसी वक्त

पाले जब पति भी पालने लग जावे अथवा अपने पतिकी आज्ञा लेकर पाले और तब घरमें किसी एकांत कमरेमें सोये बैठे। इसके आगे आरम्भ त्यागका नियम उसी समय धारे जब कि वह श्राविका यह देख ले कि मेरे घरमें पुत्रवधू आदि हर्ष पूर्वक मेरी आवश्यकताओंका प्रबन्ध कर देवेंगे अथवा स्थानीय श्राविका मंडलीपर विश्वास करके इस श्रेणीके नियम पाले। पश्चात् ९ वीं श्रेणीके नियम रखते हुए वस्त्र व पात्र मात्र रक्खे, शेष परिग्रहको और उसके ममत्वको त्यागे। इसके आगे दो श्राविकाएं मिलकर किसी मठ या धर्मशालामें रहें और तब १० वीं श्रेणी याने अनुमति त्यागके नियम पालें। वर्तमान अवस्थामें यहां तकके नियम पालना श्राविकाके लिये कुछ कठिन नहीं हैं। इसके आगे ग्यारहवीं प्रतिमामें अर्जिकाके व्रत हैं। यदि दो तीन श्राविकाएं मिलकर अर्जिकाके व्रत धारें तो धार सक्ती हैं। परन्तु यह व्रत उसी समय लेना योग्य है जब शीत व उष्णकी बाधाको सहनेके लिये शरीर तयार हो जावे, क्योंकि अर्जिका केवल १ सफेद साडी, पीछी और कमंडल रखती है, क्षुल्लकके समान भिक्षावृत्तिसे भोजन लेती है। परन्तु केशोंका लोंच करती है।

विधवा कर्तव्य।

जब स्त्रीका पति देहान्त कर जावे तब उसको विधवा अवस्थामें रह कर अपना जीवन श्राविकाके व्रतोंके पालनेमें बिताना चाहिये। विधवाको किस प्रकार रहना चाहिये इस विषयमें सोमसेन त्रिवर्णाचारके कुछ श्लोक लिखे जाते हैं:—

तत्र वैधव्यदीक्षायां देशव्रतपरिग्रहः ।
कंठसूत्रपरित्यागः कर्णभूषणवर्जनम् ॥१९८॥
शेष भूषानिवृत्तिश्च वस्त्रखंडान्तरीयकम् ।
उत्तरीयेण वस्त्रेण मस्तकाच्छादनं तथा ॥१९९॥
खट्वाशय्याञ्जनालेपहारिद्रप्लववर्जनम् ।
शोकाक्रान्दनिवृत्तिश्च विकथानां विवर्जनम् ॥२००॥
त्रिसंध्यं देवतास्तोत्रं जपःशास्त्रश्रुतिः स्मृतिः ।
भावना चानुप्रेक्षाणां तथात्मप्रतिभावना ॥ २०२॥
पात्रदानं यथाशक्ति चैकभक्तिमगृद्धितः ।
ताम्बूल वर्जनं चैव सर्वमेतद्विधीयते ॥ २०३ ॥

अर्थ—विधवा श्राविकाके देशव्रत ग्रहण करे, कंठमेंसे मंगल सुत्र उतारे. कानके गहने व अन्य आभूषण न पहरे, धोती पहरे, ऊपरके वस्त्रसे मस्तकको ढके, खाट व शय्यापर न सोवे, सुरमा न लगावे, हल्दी लगाकर न नहावे, पतिके लिये शोक न करे न रोवे, खोटी कथाएं न कहे तीनों संध्याओंमें श्रीजिनेन्द्रका स्तोत्र पढ़े, जाप देवे तथा शास्त्र सुने, १२ भावनाओंका विचार करे तथा आत्मरूपकी भावना करे यथाशक्ति पात्रदान करे, गृद्धता न करके एक समय भोजन करे तथा पान ताम्बूल न खावे ।

विधवा स्त्री यदि शृङ्गार करे, पान खावे, गहने पहने, काम कथाएं करे, खोटे गीत गावे, दोनों वक्त कई समय भोजन करे, खोटी संगति करे रागरंग व नाच देखे तो वह अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन कैसे रख सक्ती है? यही कारण है कि बहुधा विधवा स्त्रियें अपने शीलको भ्रष्ट कर बैठती हैं ।

यह तन क्षणभंगुर है तौ भी यह बड़े कामका है। यदि इस तनसे तप किया जाय, स्वाध्याय, पूजा व परोपकार किया जाय तौ इस मनुष्य देहसे यह आत्मा स्वर्गादिक व परम्परा मोक्षको प्राप्त कर सक्ता है। इसलिये विधवा स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने जीवनको सफल कर लेवें, आप विद्यासहित और सुचारित्रवान होकर दूसरोंके साथ उपकार करें व उनका भला करें। विषयोंकी तृष्णामें पड़ा हुआ यह आत्मा कभी भी शांतिको नहीं पा सक्ता? सो ये सब बातें उसी वक्त सम्भव हैं कि जब विधवा स्त्री ब्रह्मचारिणीकी रीतिके अनुसार रहकर अपना जीवन बितावे, ध्यान स्वाध्याय और परोपकारमें ही अपना दिन रातका समय खर्च करे। जिस तरह पुरुष श्रावक अपना धर्म पाल सक्ते हैं उसी तरह स्त्री श्राविकाएं भी पाल सक्ती हैं।

रजस्वलाधर्म।

स्त्री पर्यायमें प्रति मासमें रजोधर्म होता है, उससे खराब रुधिर बहने लगता है। ऐसी हालतमें स्त्रीके शरीरमेंसे केवल योनिस्थानसे ही नहीं किन्तु सर्व शरीरके रोओंसे ऐसे अशुद्ध परमाणुओंका निकास होता है कि उनके कारण छुई हुई चीजें भी खराब और अशुद्ध हो जाती हैं। अतएव ऐसी हालतमें स्त्रीको एकान्त स्थानमें गुप्त रीतिसे मौन धारे हुऐ बैठना चाहिये, ताकि उसका स्पर्श वहीं पर रहे। रजस्वला स्त्रीको जिस दिनसे यह विकार हो उस दिनसे लेकर तीन दिन तक एकान्तमें रहना चाहिये, वहीं पर भोजन हाथमें व मिट्टी पत्तेके वर्तनमें करना चाहिये। यदि कांसे आदिके वर्तनोंमें करे तो उनकी शुद्धि फिर अग्निमें डालनेसे

ही हो सक्ती है। किसी पुरुषके मुखको-न देखे न अपने पतिको देखे, किसीसे बात न करे। स्त्रियोंसे भी बातें नहीं करना चाहिये। ३ दिन बराबर पंच परमेष्टीकी याद मन ही मनमें करे या बारह भावनाओंका व स्त्रीपर्यायका व सिद्ध सुखका इत्यादि शुभ धर्मध्यान करे। कहीं फिरे नहीं। शौचके लिये जहां घरके और लोग जाते हैं वहां शौच न करे,अन्य स्थानमें करे। चौथे दिन स्नान करके केवल वस्त्र व सूखी चीजें छू सक्ती है। रात्रिको पतिके सन्मुख जा सक्ती है। पांचवें दिन श्रीजिनेन्द्र पूजन, दान, धर्म व भोजनादि बनानेका काम कर सकती है। यदि रजस्वला सूर्यके अस्त होनेके पीछे होवे तो दूसरे दिनसे ३ दिन गिनने चाहिये।

रजस्वला धर्मके विषयमें त्रिवर्णाचार अध्याय १३ में इस भांति कथन हैं:—रजस्वलाधर्म स्त्रियोंको दो प्रकारसे होता है। एक प्रकार याने स्वाभाविक प्रति मासमें, दूसरा विकृत याने रोगादिके होनेपर। यदि ५० वर्षसे ऊपरकी स्त्रीके अकालमें रजधर्म हो तो उसका कुछ दोष नहीं हैं। प्राकृतका नियम कहते हैं कि स्त्रियोंको रजके देखनेके दिनसे ३ दिन तक अशुद्धपना रहता है। रजदर्शन यदि आधी रातसे पहले हो तो पहलेका दिन गिन लेना ऐसा भी किसी २ का मत है। यदि मासिक रजोधर्मके बाद फिर १८ दिनके अन्दर ही रज स्रवे तो केवल स्नान मात्र ही से शुद्धि हो जाती है। उसके बाद यदि १८ दिन हो जावें तो २ दिन अशुद्ध, यदि २१ दिन होवें तो मासिक धर्मके समान ३ दिन अशुद्धि माननी ऐसा भी मत है। किसीका मत है कि १८ दिन होनेपर ही ३ दिनकी अशुद्धि माननी चाहिये।

ऋतुमतीको कैसे वर्तना चाहिये इस विषयमें ये श्लोक हैं:—

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेत्सती ।
एकांतस्थानके स्वस्था जनस्पर्शनवर्जिता ॥ १६ ॥
मौनयुक्ताऽथवा देवधर्मवार्ताविवर्जिता ।
मालती माधवी वल्ली कुन्दादिलतिका करा ॥१७॥
रक्षच्छीलं दिनत्रयं चैकभक्तं विगोरसम् ।
अञ्जनाभ्यङ्गस्रग्गन्धलेपनमंडनोज्झिता ॥ १८ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेऽपि वा ।
न च पश्येत्कुदेवं च नैव भाषेत तैः समम् ॥ १९ ॥
वृक्षमूले स्वपेन्नैव खट्वाशय्यासने दिने ।
मंत्र पंच नमस्कारं जिनस्मृतिं स्मरेत् हृदि ॥२०॥
अंजलावश्नीयात् पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले ।
भुक्तं चेत्कांस्यजे पात्रे तत्तु शुद्ध्यति वन्हिना ॥२१॥

भावार्थ—योग्य कालमें रजधर्मको पानेवाली स्त्री दर्भके आसनपर सोवे, स्वाथ्य मन हो एकान्तमें बैठे, किसीको स्पर्श न करे, तीन दिन मौन रक्खे, देव धर्मकी कथा न कहे, मालती, मोगरी व कुंदफूलकी वेल तीन दिन तक हाथमें रक्खे ।

नोट—इसका क्या प्रयोजन है सो समझमें नहीं आया ।

अपने शीलकी रक्षा करे (पूरा शीलव्रत पाले), तीन दिन दही, घी व दूधके विना एक वार भोजन करे, आंखोंमें अंजन न लगावे, अंगमें तेल न चुपड़े, माला व गहने न पहरे, देव, गुरु, राजाको न देखे, न अपने मुखको दर्पणमें देखे, किसी कुदेवको

भी न देखे, न राजा, गुरु आदिसे भाषण करे। वृक्षके नीचे व खाट या शय्यापर न सोवे, दिनमें शयन न करे, पंच णमोकार व जिनदेवकी मनमें याद करे; तीन दिन अपने हाथोंपर व पत्तेपर व तांबे या पीतलके वर्तनमें अन्न लेकर खावे। यदि कांसेके वर्तनमें खावे तो उसे अग्निमें डालकर शुद्ध करना होगा।

रजस्वलाकी शुद्धि कब होती है इस विषयमें यह मत है—

चतुर्थे दिवसे स्नायात्प्रातर्गोसर्गतः पुरा।
पूर्वान्हे घटिका षट्कं गोसर्ग इति भाषितः ॥२२॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थोह्नि भोजने रन्धनेऽपि वा।
देवपूजागुरूपास्ति होमसेवासु पंचमे ॥ २३ ॥

भावार्थ—चौथे दिन ६ घड़ी दिन चढ़े याने २ घंटे १४ मिनट दिन चढ़े पर स्नान करे तथा उस दिन केवल अपने पतिके लिये भोजन अन्न बना सक्ती है। शेष देवपूजा, गुरुसेवा, दान आदि कार्योंके लिये पांचवें दिन शुद्ध समझनी चाहिये। रजस्वला स्त्रीको उचित है कि वह परस्पर दूसरी रजस्वलासे भी बात न करे।

अस्नाते यदि संलापं कुरुतश्चोभयोस्तयोः।
अनिमात्रमघं तस्माद्वर्ज्यं सम्भाषणादिकम् ॥२४॥

भावार्थ—विना स्नान किये यदि एक स्त्री दूसरेसे वात कर ले तो वहुत पापका बंध होता है। यदि भोजन करते हुए रजस्वलाकी शंका हो तो फिर स्नान करके शुद्ध हो भोजन करे ऐसी स्त्री तालाव व नदीमें डुबकी न लगावे पानी बाहर लेकर स्नान करे।

यदि रजस्वलाको दूध पीनेवाला बच्चा छुए तो वह जल छिड़कनेसे और जो इससे बड़ा लड़का १६ वर्ष तकका छुए तो स्नान करनेसे शुद्ध होगा। जिस स्त्रीको ऋतुका ज्ञान न हो और रजस्वला हो जाय तो उससे १ हाथकी दूरी तकके पदार्थ अशुद्ध समझने चाहिये। जो कोई ऐसी स्त्रीके हाथका भोजन करे उसको एक या दो दिनका उपवास करना चाहिये।

जो स्त्रियां आरम्भ त्यागी हैं वे भी यदि रजस्वला हो जावें तो दूसरी स्त्रियां उनको जल व वस्त्र आदि देवें। अर्जिकाको भी रजस्वला होनेपर तीन दिन एकान्तमें रहकर उपवास करना होता है। चौथे दिन दूसरी अर्जिका व श्राविका पानी दे स्नान कराती है तथा साड़ी बदलवाती है। अर्जिका रजस्वला अवस्थामें भोजन लेवे व नहीं तथा और किस प्रकार वर्ते इसका कथन अन्य किसी स्थलसे जानना योग्य है।

जिन-धर्मको पालनेके हकदार जैसे पुरुष हैं वैसे स्त्रियां भी हैं। अतएव स्त्रियोंको भी रुचिसे अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये।

अध्याय बाईसवां।

समाधिमरण तथा मरणकी क्रिया।

श्रावक श्राविकाओंको १२ व्रत जन्म पर्यन्त बड़ी श्रद्धा और सावधानीसे पालना योग्य है तथा जब असाध्य रोग व अन्य कोई कारणसे अपना मरण निकट आवे तब सल्लेखणा करनी योग्य है।

सूत्र-मारणान्तिकीं सल्लेखनां ज्योषिता (उमा०)

अर्थात्-मरणके समय समाधिमरणको सेवना चाहिये।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

(र० क०)

भावार्थ-उपसर्ग याने कोई अग्नि, जल, वायु आदिकी आफत आजाने पर, दुष्काल पड़ने पर, बुढ़ापा होनेपर, रोगी होने-पर, यदि इलाजरहित हो तो अपने आत्मीक धर्मकी रक्षाके वास्ते शरीरका त्यागना सो सल्लेखना कही गई है। सल्लेखनाका अर्थ कषायोंका भले प्रकार क्षीण करना है और इसीलिये शरीरको कृश करते हुए वीतराग अवस्थासे मरना सो समाधिमरण है।

नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम् ॥१७९॥

(पु० सि०)

भावार्थ-हिंसाके कारण कषाय भावोंको जहां कम किया जाता है इसलिये यह सल्लेखना अहिंसा धर्मकी सिद्धिके लिये ही की जाती है। इसमें आत्मघातका दोष नहीं है। क्योंकि कषाय भावोंसे अपनेको मारना ही आत्मघात हो सक्ता है। यह शरीर धर्मसाधनेका निमित्त सहायक है, इसलिये जबतक आत्मीक धर्म सधे तबतक इसकी रक्षा करनी योग्य है और जब इसकी रक्षाके झगड़ेमें पड़नेसे अपना धर्म डूबता हो तब ऐसे शरीरका छोड़ देना ही अच्छा है। श्रावकके समाधिमरणकी विधि इस प्रकार है:—

स्नेहं वैरं संगं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनंपरिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः।
॥ १२४ ॥

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रमामरण स्थायि निश्शेषम् ॥ १२५ ॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पंचनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

भावार्थ–सर्वसे स्नेह छोडे, द्वेष हटावे, सम्बन्ध तोड़े, परिग्रहको दूर करे और शुद्ध मन हो मीठे वचन कह अपने कुटुम्बी तथा अन्योंको क्षमा करावे और आप भी क्षमा कर देवे। छल कपटरहित हो कृत, कारित, अनुमोदनासे किये हुए सर्व पापोंकी आलोचना करके मरण पर्यंतके लिये पांच पापोंके सर्वथा त्याग रूप महाव्रतको धारण करे। शोक, भय, चिन्ता, ग्लानि, कलुषता तथा अरतिको भी त्याग करके और अपने बल तथा उत्साहको प्रगट करके शास्त्र रूपी अमृतसे अपने मनको आनंदित करे अर्थात् तत्त्वज्ञानके चिन्तवनमें हर्ष माने।

शरीरको क्रम २ से त्यागनेके अर्थ पहले भोजन करना छोड़े, केवल दूध या छाछको ही लेवे फिर उसको भी छोड़ता

हुआ कांजी वा गर्म जलको ही पीता रहे, फिर गर्म जलको भी त्याग करके शक्तिसे उपवास करके खूब यत्नके साथ पंच णमोकार मंत्रको जपता हुआ शरीरको छोड़े। मतलब यह है कि आहार पान धीरे २ घटावे ताकि कोई आकुलता न पैदा हो और समाधि-अवस्थाके लिये परिणाम चढ़ते चले जावें। यदि अपनी शक्ति हो तो वस्त्रादि सब परिग्रहको छोड़कर मुनिके समान नग्न दिगम्बर हो जावे, केवल एक चटाईपर आसनसे बैठा या लेटा हुआ आत्मस्वरूपका शांततासे अनुभव करे, परन्तु यदि शक्ति न हो तो आवश्यक कपड़े, स्थानको प्रमाण करके शेषको त्यागे। जघन्य रूपसे ऐसा भी किया जासक्ता है कि एक२ दो२ चार २ दिनोंके प्रमाणसे भोजन व परिग्रहको छोड़े, कि यदि इस बीचमें जीता रहा तो फिर शक्ति देखकर प्रमाण कर लूंगा। जो समाधिमरण करे वह घरके झगड़ोंसे अलग एकान्तमें रहे, अपने पास ४ साधर्मी ज्ञानी भाइयोंकी संगति रक्खे ताकि वे शास्त्रोपदेश करके परिणामोंको वैराग्यमें स्थिर करें। स्त्री पुत्रादि मोहकारक चेतन अचेतन पदार्थोंकी संगति न करे। यदि शक्ति न हो तो चटाईके साथरेपर लेटा लेटा ही णमोकार सुने व अर्थको विचारे।

बहुधा कुटुम्बी जन अज्ञानतासे मरते हुएको कष्ट होते हुए भी ऊपरसे नीचे लाते हैं-यह बड़ी निर्दयता है और उसके परिणामोंको दुखानेवाली है। जब वह सुगमतासे आसके तो पहले लाओ नहीं तो केवल रूढ़ि वश ऊपरसे उतारनेकी जरूरत नहीं है। सम्हाल इस बातकी रखना चाहिये कि मरनेवालेके मनमें

शांति पैदा हो। दुःख, शोक व ग्लानि उत्पन्न न हो।

सन्यासमरणके समय ५ प्रकार शुद्धि रखनी चाहिये।

" शय्योपध्यालोचनान्नवैयावृत्त्येषु पंचधा।
शुद्धिः स्याद् दृष्टिधीवृत्तविनयावश्यकेषु वा ॥ ४१ ॥
(सा० ध०)

भावार्थ-शय्या, संयमके साधन उपकरण, आलोचना, अन्न और वैय्यावृत्तमें तथा अंतरंग दर्शन, ज्ञान, चारित्र, विनय और छह आवश्यकों (सामायिकादि) में शुद्धि रखनी चाहिये तथा इन पांच बातोंका विवेक या भेदविज्ञान रक्खे।

विवेकोऽक्षकषायांगभक्तोपधिषु पंचधा।
स्याच्छय्योपधिकायाऽन्न वैय्यावृत्त्यकरेषु वा ॥४२॥
(सा० ध०)

भावार्थ-इन्द्रिय विषय, कषाय, शरीर, भोजन और संयमके उपकरणोंमें तथा शय्या, परिग्रह, शरीर, अन्न और वैयावृत्यमें विवेक रक्खे।

सल्लेखनाव्रतके पांच अतीचार हैं सो बचाना चाहिये।

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंध
निदानानि। (उ० स्वा०)

भावार्थ-१. अपने अधिक जीनेकी इच्छा करनी कि किसी तरह जी जाऊं तो सर्व सम्बन्ध बना रहे सो जीविताशंसा है। २. अपना शीघ्र मरण चाहना कि रोगादिकी विशेष बाधा हो रही है वह सही नहीं जा सकी सो मरणाशंसा है। ३. अपने विषयोंके

मिलानेमें सहाई मित्रोंकी ओर रागभाव करना सो मित्रानुराग है। ४. पहले भोगे हुए सुखोंका बारंबार चिन्तवन करना सो सुखानुबन्ध है। ५. मरणके पीछे भोगोंकी प्राप्ति हो ऐसी चाहना करनी सो निदान है।

जैसे पुरुष समाधिमरण करे ऐसे स्त्री भी करसकती है।

मरनेपर क्या क्रिया करनी चाहिये ?

मृतक शरीरको प्रेत भी कहते हैं। प्रेतको रखनेके लिये सुशोभित विमान बना कर तथा उसे धोकर नए वस्त्रादिसे भूषित करके इस तरह लिटाना चाहिये जिसमें वह हिले नहीं, अंग तथा मुख सर्व शरीरको नवीन वस्त्रोंसे ढक देवे, उसके ऊपर फूलकी माला डाले और अपनी जातिके ४ विवेकी जन प्रेतके मस्तकको गांवकी ओर रखते हुए अपने कंधोंपर उस विमानको इस तरह ले जावें कि वह हिले नहीं तथा एक मनुष्य दग्ध करनेके लिये अग्नि ले जावे। यदि कोई ब्रह्मचारी व धर्मात्मा गृहस्थ मरे तो उसके लिये जो अग्नि जावे वह होम की हुई अग्नि होनी चाहिये अर्थात् क्रिया करानेवाला कुंडमें मंत्रोंसे होम करे उन मंत्रोंसे होम की हुई अग्निको ले जावे। कौनसे मंत्रसे होम हो यह देखनेमें नहीं आया, तो भी यदि नीचा लिखा हुआ मंत्र काममें लाया जावे तो कुछ हर्ज नहीं।

" ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्व शान्तिं कुरु २ स्वाहा "

१०८ वार इस मंत्रद्वारा होम करे।

कन्या या विधवा मरे तो उसके लिये ऐसी अग्नि ले जावे जो ९ वार दर्भको रखकर काष्ठद्वारा सिलगाई गई हो और सर्व स्त्रियोंके लिये ऐसी अग्नि ले जाई जाय जो जली हुई लकड़ीमें इस तरह जलाई गई हो कि चूल्हेमें अग्नि रखकर ऊपर थाली रखकर उसकी गर्मीसे जले—इसका क्या अभिप्राय है सो समझमें नहीं आया। इनके सिवाय तीन वर्णके और पुरुषोंके व शूद्र वर्णके सर्वके लिये वही अग्नि काममें लेवे जो रसोई आदि बनानेके काममें आती है। स्मशानको जाते हुए जब आधा मार्ग हो जावे तब किसी स्थानपर प्रेतको रक्खें और उसका पुत्र व अन्य सम्बन्धी प्रेतका मुख खोल मुंहमें कुछ पानी सीचे। इससे शायद प्रयोजन मुर्देको जांच करनेका होना चाहिये। तब जाति संबंधी तो उस शवके आगे और शेष जन और सर्व स्त्रियां पीछे २ जावें।

उसके मरणमें किसी प्रकार शंका न रहे ऐसी परीक्षा करके उस लाशको स्मशान भूमिमें ले जाकर रक्खे, फिर चंदन और काठकी लकड़ियोंसे बनी हुई चिताके ऊपर शवका पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके रख देवे और तब सुवर्णसे उठाकर घी और दूध सात स्थानोंमें डाले अर्थात् मुंह, दो नाकोंके छेद, दो आंखें और दो कानोंमें तथा तिल और अक्षत मस्तकपर डाले—यह भी शायद परीक्षाके लिये ही करना होता होगा। फिर चिताको दग्ध करनेवाला तीन प्रदक्षिणा करके और उस चिताके एक तरफ १ हाथ चौड़ा खैरकी लकड़ीका और दूसरी ओर ईंधनका मंडल कर देवे। फिर जो अंगीठीमें लाई हुई अग्नि

है इसको जलाकर घी की आहुति देकर उस मंडलपर अग्नि लगा देवे तथा चारों ओर लकड़ियां इकट्ठी कर देवे और चिताके चारों ओर आग करके शवको दहन करावे।

चिता रचनेके लिये जब काष्ट रक्खे तब यह मंत्र पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठ संचयं करोमि स्वाहा" जब प्रेतको उस काष्टपर रक्खे तब पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्टे शवं स्थापयामि स्वाहा।" फिर अग्नि बढ़ानेको जब घी डाले तब यह पढ़े "ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा"। खूब घी चदनादि द्रव्य डाल दे जिससे वह शव जल जावे। फिर तालावमें जा स्नान करे तथा चार ले जानेवाले व अन्य मंडली चिताकी प्रदक्षिणा करके जलाशयमें जावे, जिसको दग्ध करनेका अधिकार हो वह अपना सिर मुंडन करा कर स्नान करे। कन्याके मरनेपर सिरके मुंडनकी आवश्यक्ता नहीं है। बहुधा रत्नत्रयधारी पुरुषकी मूर्ति व चिन्ह स्थापित करते हैं, जिससे लोगोंको प्रेम हो इस प्रयोजनसे जलाशयके किनारे १ पाषाण रक्खे उसपर मंडप करे या न करे तिल जल उसके सन्मानार्थ आगे रखकर सर्व जने गांवमें जावें छोटे आगे और बड़े पीछे चलें।

दूसरे दिन बंधु जनसहित आकर उस चिताकी आगपर दूध डाल जावें तीसरे दिन सवेरे अग्नि को शांत करें, चौथे दिन सवेरे हड्डी जमा करें। जो मृतकको जलावे वह १४ दिन तक और शेष भाई बन्धु १२ दिन तक इस प्रमाण व्रत रक्खें; देवपूजा और गृहस्थाश्रमके कार्य्य न करें, शास्त्र पढ़ना पढ़ाना न करें, पान

न खावें, चंदनादि न लगावें, पलंगपर न सोवें, सभामें न जावें, क्षौर न करावें, दो दफे न खावें, दूध व घी न लेवें, स्त्री समागम न करें, तेल लगाकर न न्हावें, देशांतर न जावें, तास गंजीफा न खेलें, धर्मध्यान सहित १२ भावना विचारते हुए रहें।

दाहक्रिया करनेका अधिकार क्रमसे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, उनकी सन्तान व जिनके १० दिन तकका ऐसा पातक है उनको है। पुरुषका कोई सम्बंधी न हो तो पत्नी करे तथा पत्नीका पति करे। पत्नीके अभावमें कोई उसका सजातीय करे। मृतककी हड्डी मंगलवार शनिवार, शुक्रवार और रविवारको इकट्ठी न करे। शेष वारोंमें एकत्र करके पर्वतकी गुफामें व जमीनमें एक पुरुष भर या ३॥ हाथका खड्डा करके गाड़ देना चाहिये, नदीमें बहाना न चाहिये। १३ दिनके पश्चात् श्रीजिनेन्द्रकी पूजा कराके पात्रोंको श्रद्धा पूर्वक दान करे;

यह विधि सामान्यसे सोमसेनकृत त्रिवर्णाचार अध्याय १३ वें के अनुसार चुन करके लिखी गई है, क्योंकि मरनेके पीछे क्या क्रिया करनी इसका वर्णन अन्य किसी आर्ष ग्रंथमें देखनेमें नहीं आया।

यह प्रत्यक्ष प्रगट है कि जिनको मरणका पातक लगता है उनको ११ दिन तक न रोजगार करना चाहिये, न देवपूजा, न दान, परन्तु सिर्फ ब्रह्मचर्य्य पालते रहकर १२ भावनाओंका विचार करते रहना चाहिये। और जब तेरहवां दिन हो तब १२ मुनियोंको व श्रावकोंको व अविरत श्रद्धालु जैनियोंको भक्ति पूर्वक बुलाकर दान करना चाहिये और तब अपना जन्म कृतार्थ

मानना चाहिये । यह प्रवृत्ति हानिकारक है कि मरणका विरादरी भरका जीमन किया जाय । ऐसा करना दान नहीं है, किन्तु मान बड़ाई पुष्ट करना है व रीतिके अनुसार जातिका दंड भुगतना है । इसलिये केवल धर्मात्माओंको ही बुलाकर भक्तिसहित प्रेमसे दान करे और धर्मात्माओंका भी कर्तव्य है कि इसमें इनकार न करें ।

अध्याय तेईसवां ।

जन्म मरण आशौचका विचार ।

व्यवहारमें यह प्रवृत्ति हो रही है कि जब कोई जन्मता है या मरता है तो उसके कुटुम्बी जन कितने काल तकके लिये देवपूजा व पात्रको आहार दान आदि कार्य्योंके करनेके लिये रोक दिये जाते हैं । इस सम्बन्धमें कितने काल तक किस अवसरमें अटक माननी चाहिये, इसका वर्णन किसी अति प्राचीन संस्कृत शास्त्रमें देखनेमें नहीं आया । केवल सोमसेन त्रिवर्णाचारमें जो देखा गया उसीका संक्षेप सर्व साधारण जैनियोंके जाननेके लिये लिखा जाता है । जातक याने जन्मका आशौच (सूतक) तीन प्रकारका होता है-स्राव, पात और प्रसूत ।

जो गर्भ तीसरे या चौथे महीने तक गिरे उसे स्राव, पांचवें या छठे महीनेमें निकले तो पात तथा सातवें माहसे आगे तकको प्रसुति कहते हैं ।

गर्भस्राव और गर्भपातमें केवल माताको उतने दिनोंका सूतक है जितने मासका गर्भ गिरा हो, परन्तु पिता व भाई

बंधुओंको गर्भस्रावमें स्नान मात्रसे शुद्धि और गर्भपातमें एक दिनका आशौच होता है।

साधारण नियम है कि प्रसूतिमें याने जन्ममें मा बाप व भाई बन्धुओंको सबको १० दिनका सूतक होता है, परन्तु क्षत्रियोंको १२ और शूद्रोंको १५ दिनका होता है।

सूतकका हिसाब यह है कि जब ब्राह्मणको ३ दिनका सूतक होगा तब वैश्योंको ४, क्षत्रियोंको ५ और शूद्रोंको ८ दिनका होगा। यदि बच्चा जीता पैदा होकर नाभि काटनेके पहले मर जावे तो माताको १० दिनका, परन्तु पिता आदिको ३ दिनका होता है। यदि बच्चा मरा पैदा हो व नाभि काटनेके बाद मर जावे तो माता पिता सबको १० दिनका पूरा सूतक लगेगा। यदि बच्चा १० दिनके अंदर मर जावे तो मांबापको १० दिनका आशौच होता है सो जन्मके आशौचकी समाप्ति होनेपर समाप्त होता है अर्थात् जो बाकी रहेंगे सो सूतक पालना होगा।

नाम रखनेके पहले बच्चा मरे तो जमीनमें गाड़े तथा नाम संस्कार होनेपर अन्न प्राशनक्रिया होने तक बालकको गाड़े वा दाह करे। दांत निकलने पर यदि मरे तो उसे जलावे। दांतवाले बालकके मरनेका आशौच मा बाप और उसके सगे भाइयोंको १० दिनका, निकटके भाई बंधुओंको १ दिनका और दूरके भाई बंधुओंको केवल स्नान करना चाहिये। चौथी पीढ़ी तक निकटके और उससे आगेवालोंको दूरके कहते हैं।

चौलकर्म याने जिसका मुंडन हो गया हो ऐसे बालकके मरनेपर माबाप और सगे भाइयोंको १० दिन, निकटवालोंको ५ दिन और दूर वालोंको १ दिनका आशौच होता है। उपनीति प्राप्त याने जनेऊ संस्कार जिसका हो गया है ऐसे बालक (८ वर्षसे ऊपर) के मरनेपर माबाप, भाई व निकटके भाइयोंको १० दिन और पांचवीं पीढ़ीवालोंको ६ दिन, छठोको ४ दिन, ७ वींको २ दिनका आशौच होता है, इसके आगे वाले स्नान मात्रसे शुद्ध होते हैं।

जन्म और मरणके आशौचमें यह फर्क है कि बालककी नालि काटनेके बाद बालकको जीते हुए उसके बाप या भाई वस्त्र व सुवर्ण आदिका लौकिक दान कर सक्ते हैं और इनको लेनेवाले भी अशुद्ध नहीं होते।

बालक जन्मे तब माताको १० दिन तक किसीका मुख नहीं देखना चाहिये। पीछे यदि पुत्र हो तो २० दिन तक और पुत्री हो तो ३० दिन तक गृह कार्य्य न करे। एक आशौच होते होते दूसरा हो तो उसीमें गर्भित हो जाता है। यदि एकके बाद दूसरा हो तो दूसरा पूरा पालना होगा।

देशान्तरमें गये हुए पुत्रको अपने माता व पिताका मरण जिस दिन सुन पड़े उससे १० दिन तक पातक मानना पड़ेगा। देशान्तरसे मतलब यहां नदी व पहाड़ बीचमें आ जानेसे या भाषाभेद हो जानेसे है अथवा ३० योजन याने १२० कोस दूर जो क्षेत्र हो उसे देशांतर कहते हैं। ऐसा ही १० दिनका आशौच परदेशमें स्थित पति या पत्नीको होगा जिस दिन एक

दूसरेकी मृत्युको सुने। यदि माताके १० दिनके आशौचके अंदर पिताका मरण हो जावे तो मरनेके दिनसे १० दिन तक आशौच मानना होगा। यदि दोनों माता पिताओंका मरण एक ही दिन होवे या सुने तो दोनोंका केवल १० दिन तक ही आशौच रहेगा।

जिस दिन आशौच समाप्त हो उस दिन स्नान करना चाहिये। यदि कोई ज्वरादिसे पीड़ित हो तो उसके बदलेमें कोई निरोगी मनुष्य उस रोगीको जितने दिनका आशौच हो उतनी वार स्पर्शकर करके स्नान करले तो वह रोगी शुद्ध हो जावे। यदि कोई रजस्वला स्त्री बुखार आदिसे पीड़ित हो और स्नान करना उसके लिये हानिकारक हो तो चौथे दिन कोई स्त्री उस रजस्वलाको १० या १२ वार छू २ कर स्नान करे, अंतमें अपने व रजस्वला स्त्रीके कपड़े निकालके स्नान करे तो दोनों शुद्ध हों। जो कोई विष शस्त्रादिसे अपघात करके मर जावे तो वह नर्कका पात्र है। उसके मृतक शरीरको राजाकी आज्ञासे जलाना चाहिये तथा एक वर्ष पूर्ण होने पर उसका प्रायश्चित्त शांतिविधान व प्रोषधोपवास आदिसे करना योग्य है। गर्भिणी स्त्री यदि ६ माससे पहलेके गर्भ सहित मरे तो दग्ध कर दें। यदि छह माससे अधिक हो तो स्मशानमें उदर काट बालकको निकाल फिर दग्ध करे।

कन्या मरण आशौच।

चौलसंस्कार याने मुंडन विधान होनेके पहले यदि कोई कन्या मरे तो मा, बाप, भाई, बन्धु केवल स्नान कर लेवें। मुंडन होनेके बाद व्रत लेनेतक याने ८ वर्ष तक १ दिनका. इसके आगे

विवाह होनेके पहले तकका १ दिनका सूतक है। विवाहके पीछे माता पिताको दो दिन एक रात्रिका आशौच है, परन्तु भाई बन्धु केवल स्नान करें, पति और उसके भाई बन्धुओंको १० दिनका आशौच होगा। अपने बापके घरमें यदि विवाहित कन्या प्रसुत प्राप्त हो या मरण कर जावे तो माता पिताको ३ दिनका और शेष कन्याके बन्धु आदिकको १ दिनका आशौच होगा। कन्याके माता पिता कन्याके घरमें वा अन्य कहीं मर जावें और १० दिनके अंदर कन्या सुन ले तो ३ दिनका आशौच होगा। बहनके घरमें भाई व भाईके घरमें बहन मरे तो एक दूसरेको ३ दिनका आशौच है, यदि अन्य कहीं मरे तो २ दिन और एक रात्रिका आशौच होगा। बहनका सुतक भाईकी स्त्रीको तथा भाईकी स्त्रीका सुतक बहनके पतिको नहीं होता, किन्तु बहनके पतिको अपनी स्त्रीके भाई बन्धुका मरण सुनने पर, तैसे ही भाईकी स्त्रीको अपने पतिकी बहनका मरण सुनने पर केवल स्नान करना चाहिये।

अपनी माताका पिता या उसकी माता याने नाना, नानी मामा या मामी, लड़कीका पुत्र, बहनका पुत्र, बापकी बहन, माताकी बहन इनमेंसे कोई यदि उसके घरमें मरे तो ३ दिनका आशौच है। यदि बाहर कहीं भी मरे तो २ दिन एक रात्रिका है तथा १० दिन बीतने पर यदि सुना जाय तो केवल स्नानमात्र है।

व्रती, दीक्षाप्राप्त, यज्ञकर्म करनेवाले तथा ब्रह्मचारी इनको आशौच नहीं होता, केवल पिताके मरणका ही आशौच होता है।

आचार्य, गुरु, शिष्य, मित्र, धर्मात्मा सहपाठी, अध्यापक इनके मरण होनेका आशौच स्नानमात्र है।

यदि कोई महान् धर्म कार्य्य प्रारम्भ कर लिया हो व एकदम बहुत भारी द्रव्यकी हानि हो तो हरएक शौच तुरन्त ही शुद्ध हो सक्ता है।

अध्याय चौबीसवां।

समयकी कदर।

मनुष्योंको उचित है कि अपनी आयुको बहुत ही अमूल्य समझें। हमारी आयु समयोंसे मिल करके बनी है। कालका एक २ समय बीतता चला जाता है। हमारा यह कर्तव्य है कि कोई समय विना उपयोगके न पाने देवें, हमें हरएक समयमें उपयोगी काम करना चाहिये।

मनुष्य मात्रके जीवनकी दो व्यवस्थाएं हो सक्ती हैं। एक मुनि सम्बन्धी दूसरी गृहस्थ सम्बन्धी। जो मनुष्य मुनि अवस्थामें रहते हैं वे अपने समयकी बड़ी भारी सम्हाल रखते हैं, रात्रि दिन संयमके साधनमें समयको विताते हैं। श्रीदशलाक्षणी पूजाकी रैधूकविकृत प्राकृत जयमालाके इस पदके अनुसार कि "संयम विन घड़िय मयत्थ जाहु" अर्थात् संयमके विना एक घड़ी बेकार न जावे वे मुनि अपने धर्मकी रक्षाके समान समयकी रक्षा करते हैं। रात्रि दिनमें शयन भी बहुत ही कम करते हैं, शेष समय ध्यान, स्वाध्याय व आवश्यक क्रियाओंके करनेमें विताते हैं। इसी तरह हरएक गृहस्थको चाहे वह श्रेणीयुक्त हो या पाक्षिक हो या अव्रत श्रद्धालु हो या श्रद्धाके सन्मुख मिथ्यादृष्टी हो अपना समय व्यर्थ

नहीं विताना चाहिये । अपनी २ पदवीके अनुकूल लौकिक और धार्मिक कार्योंके किये जानेका समयविभाग कर रखना चाहिये और कोई विशेष कारणके अभावमें उसी तरह नित्य प्रवर्तन करना चाहिये। ऐसे खोटे व्यसनोंकी आदत हरगिज़ नहीं रखनी चाहिये जिससे समय तो व्यर्थ जावे ही और साथमें अपने शरीरका बल, धन, और धर्म भी नष्ट हो जावें । इसलिये गृहस्थको जुएके खेलसे सर्व प्रकारके नशोंसे और खोटी कहानी किस्सोंके पढ़नेसे व खोटे खेल तमाशोंके देखनेसे अपनेको सदा बचाना चाहिये । जो लोग रुपये पैसेका दाव लगाकर व यों ही तास गंजीफा, सतरंज खेलकर अपने जीवनके भागका विनाश करते हैं वे अपने अमूल्य समयके खोनेके सिवाय अनेक लौकिक और पारलौकिक व्याधियोंको प्राप्त होते हैं। जो लोग भांग, तम्बाकू, चरस, गांजा, अफीम आदि किसी भी नशेके खाने पीनेकी टेव डाल लेते हैं उनका बहुमूल्य समय ही वृथा नहीं जाता, किन्तु वे अपने शरीरके साथ आप ही शत्रुता बांध लेते हैं। जो लोग खोटे कामकथा और उपन्यासोंकी बहार देखते व ऐसे ही शृंगार रससे भरे खेल तमाशे देखते हैं उनकी बहुतसी जिंदगी वृथाके विचारोंमें उलझ जाती है और बहुधा ऐसा हो जाता है कि वे अपनी सारी जिन्दगीके लिये इश्कके बीमार बन जाते हैं। धन, धर्म व यशको गमाकर परलोकमें दुःखके भाजन बनते हैं। अतएव वृथाके हानिकारक कार्योंसे मुंह मोड़ फायदेमन्द दुनियवी व धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी आयुके एक २ भागको बिताना चाहिये । हमारी आयुका एक भाग वह सूक्ष्म समय है जिसका असंख्यात गुणा काल एक पलक मारने मात्रका होता है।

एक मामूली गृहस्थको मामूली ऋतुमें अपना समय विभाग इस प्रकार करना योग्य है:-

समय	कार्य्य
सवेरे ९ बजेसे ६ तक	भगवत्भजन व विचार
,, ६ से ६।। तक	शारीरिक क्रिया व व्यायाम
,, ६।। से ८।। तक	मंदिरजीमें पूजन, स्वाध्याय
,, ८।। से ९।। तक	पत्रादि व मामूली गृहस्थकार्य्य व कोई विद्या व कलाका अभ्यास
,, ९।। से १० तक	भोजन
,, १० से ४।। तक	आजीविकाका उपाय।
मध्य १२ से १२।। तक	आराम व भगवत्भजन
,, ४।। से ९ तक	शारीरिक क्रिया
,, ९ से ५।। तक	भोजन
,, ५।। से ६ तक	शुद्ध हवामें साधर्मी मित्रसहित टहलना
,, ६ से ७ तक	भगवत्भजन व विचार
रात्रिको ७ से ९ तक	धर्मसेवन स्वाध्यायादि या आजीविका साधनका शेष कार्य्य
,, ९ से १० तक	स्त्री पुत्रादिकोंसे वार्तालाप व शिक्षाप्रदान
,, १० से १०।। तक	किसी उपयोगी पुस्तकका विचार
,, १०।।से ५ तक	शयन

हरएक मनुष्यकी स्थितिके अनुसार कुछ फेर फारसे भी समय विभाग हो सक्ता है। परन्तु खयाल यह रखना चाहिये कि हम केवल ६ घंटा शयन करें तथा मध्यके कार्योंके लिये जो समय नियत करें उस समयमें हम उन्हीं कार्योंकी ओर दिल लगावें और यदि उन कार्योंके बीचका समय बचे तो उसका भी उपयोग करें। उसके उपयोगके लिये हमको चाहिये कि हम लौकिक तथा पारलौकिक याने धार्मिक समाचार पत्र मंगाते रहें व नई मुद्रित पुस्तकें लेते रहें और उनको अपने बचे हुए समयमें पढ़ते रहें व कोई उपयोगी पुस्तक लिखते रहें।

मामूली गृहस्थ चित्त प्रसन्नार्थ गाना बजाना सीखकर उसके द्वारा श्रीजिनगुणगानादिसे अपना और दूसरोंका मन प्रफुल्लित कर सक्ता है। आलस्य, प्रमाद, नींद व वृथाकी बकवादमें अपना समय बिताना बड़ी भारी भूल है। यदि प्रमादवश किसी दिनका कोई समय व्यर्थ हो जावे तो उसका बहुत पश्चाताप करना चाहिये और आगामी ऐसा न होसके इसका ध्यान रखना चाहिये। जैसे हमको अपने गांठके रुपये पैसेकी सम्हाल होती है और इसलिये रोज उसकी विधि मिलाते हैं—ऐसे ही हमको अपने समयकी सम्हाल रखनी उचित है। पैसा तो खोजानेपर व यों ही गायब हो जानेपर फिर भी कमा लिया जा सक्ता है; परन्तु समय जो चला जाता है वह अनन्तकालमें भी लौट करके नहीं आता है।

अध्याय पच्चीसवां।

जैनधर्म एक प्रकार है और वही सनातन है।

कोई भी कार्य हो उसका कारण एक ही प्रकारका होता है। भिन्न २ कारण भिन्न २ कार्योंकी उत्पत्ति नहीं करते हैं। जब कि साधने योग्य आत्माका रागादि रहित शुद्ध स्वभाव है अर्थात् परमात्म अवस्था है तब उसकी सिद्धिका उपाय भी एक शुद्ध वीतराग स्वरूपकी भावना, उसका अनुभव तथा उसका ध्यान है। शुद्ध वीतराग स्वरूपका निर्मल ध्यान ही आत्मशुद्धिका निकट साधन है। इसी अभिप्रायसे ही अमृतचन्द्र आचार्यने समयसार नाटकके कलशोंमें यह कहा है:-

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥ १५ ॥

भावार्थ–यह ज्ञानका समूह आत्मा ही साध्य साधक भावसे दो प्रकार तथा वास्तवमें एक प्रकार सिद्धिके इच्छुकोंसे उपासना करने योग्य है।

आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान ज्ञान और उसीमें आचरण ये तीन रूप एक समयमें होनेवाली क्रिया ही आत्माकी शुद्धताका कारण है। अभ्यासीके लिये बाह्य अवलम्बनोंके विना ऐसी आत्मक्रियाका पा लेना कठिन है। इस लिये वे अवलम्बन याने सहारे भी ऐसे ही होने चाहिये जो वीतराग–विज्ञानता रूप आत्माको परिणमन करानेमें परम प्रबल कारण हों। सबसे प्रबल कारण मुनिधर्म हैं, जो कि सर्व परिग्रह त्यागरूप है, जहां वस्त्र मात्र भी नहीं रक्खा जाता। दिशाओंको ही वस्त्र मानकर

-बालकके समान निर्भय और वेपरवाह रहा जाता है। जो पर्वत, वन आदि एकान्त स्थानोंमें रह ध्यान करते हैं, भोजन मात्रके लिये वस्तीमें आ भोजन ले लौट जाते हैं। जब तक इस अव-स्थाका निमित्त न मिलायेगा तबतक कदापि मोक्ष-साधक शुद्ध-ताको नहीं पासक्ता। इसीलिये दिगम्बर आचार्य कथित ग्रन्थोंमें तो इस अवस्थाकी उत्तमताका वर्णन है ही, परन्तु श्वेतांबर आचा-र्योंके ग्रन्थोंमें भी इस मुनिके दिगम्बर भेषकी ही महिमा लिखी है। देखो, **आचारांग सूत्र** टीका मो० रावजीभाई देवराज सं १९६२ पत्रा ९७ में.

एयं खुमुणी आयाणं सया सु अक्खाय।
धम्मे विधूतकप्पे णिज्झो सईत्ता ॥ ३५९ ॥

अर्थ—हंमेशा पवित्रपणे धर्म साचवनार अने आचारने पा-ळनार मुनि धर्मोपकरण सिवाय सर्व वस्त्रादिक वस्तुनो त्याग करे छे.

अदुवातत्थ परक्कमं तं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति तेउफासा फुसन्ति दंसमसग फासा फसति, एगयरे अन्नयरे विरूप रूवे फासे अहियासेति अचेले लाघवं आगम माणे तवेसे अभि सन्नागए भवति ॥ ३६१ ॥

अर्थ—वस्त्ररहित रहेता तेवा मुनियोंने कदाच बारंवार शरीरमां तणखडा के कांटा भराया करे अथवा टाढ़, वायु अथवा ताप लागे अथवा डांस के मच्छर, करड़े ए विगेरे अणगमता परीषहो सहेता रहे छे, एम कर्याथी तप करेलुं गणायछे ॥ ३६१ ॥

श्रीमहावीर स्वामी नग्न रहे। परीसह सही यह वर्णन आ-चारांग सूत्र अध्याय ९ पत्रा १३९-१४१ में हैं।

अहासुयं विदिस्सामि—जहासे समणे भगवंउट्ठाय—संखाय तंसि हेमंते—अहणापव्व इए रीयत्था ॥ ४६१ ॥

अर्थ—हे जंबू ! मैं जेम सांभल्युं छे तेम कहुंछुं के श्रमण भगवाने (महावीरे) दीक्षा लईने हेमंत ऋतुमां तरतज विहार कर्यो ।

णोचे विमेण वत्थेण, विहिस्सामितं सि हेमंतो से पारए आ-वकहाए एवं खु अणु धम्मियं तस्स ॥ ४१२ ॥

अर्थ— (तेमने इंद्रे एव देव दूष्य वस्त्र आपेलु हतुं पण) भगवाने नथी विचार्युं के ए वस्त्रने हुं शियाळामां पहेरीश ! ते भगवान तो जीवितं पर्यंत परीषहोंना सहनार हता. मात्र बधा तीर्थ-करोंना रीवाजने अनुसरीने तेमणे (इंद्रे आपेलुं) वस्त्र धर्युं हतुं ॥ ४६२ ॥

संवच्छरं साहियं मास । जंणरिक्कासि वद्यगं भगवं ।
अचेलए ततो चाई । तं वोसज्ज वत्थमणगारे ॥ ४६९ ॥

अर्थ—भगवाने लगभग तेरह महिना सुधी वस्त्र स्कंधपर धर्युंहतुं पछी ते वस्त्र छोड़ीने वस्त्ररहित अणगार थया ॥४६९ ॥

भगवनं च एव—मन्नेसीं सो वहिएहु लुप्पती वाले ।
कम्मं च सव्वसो णच्चा । तं पडिया इक्खे पावगं भगवं ॥४७५॥

अर्थ—अने एम भगवान महावीर देवे विचारीने जाण्युं के उपधि (उपधि बे प्रकारनी छे, द्रव्योपधि तथा भावोपधि) सहित अज्ञानी जीव कर्मोंथी बंधाय छे माटे सर्व रीते कर्मोंने जाणीने ते कर्मो तथा तेना हेतु पापनो भगवान त्याग करता हता ॥ ४७९ ॥

सिसि रसि अद्धपड़िवन्ने । तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।

पक्षारितुवाहू परक्कमें णो अवलं विपाण कंधंसि ॥ ४८२ ॥

अर्थ—भगवाने बीजे वर्षे ज्यारे अधी शिशिर ऋतु वेठी त्यारे ते (इन्द्रदत्त) वस्त्रने छांडी दईने छूट वाहुथी विहार कर्यो हतो (अर्थात) ताड़ना माटे वाहुने संकोचता नहि तथा स्कंध ऊपर पण वाहु धरता नहिं ॥ ४८२ ॥

ऐसा ही प्रवचनसारोद्धार भाग ३ छपी सं० १९३४ सफा १६४ में कहा है कि " आउरण वज्जियाणं विसुद्ध जिणकप्पिया-णं तु " अर्थात् जे आवरण एटले कपड़ा वर्जित छे ते स्वल्पोपधि पणे करी विशुद्ध जिनकल्पी कहेवाय छे।

मुनि धर्मके आलम्बनोंको जबतक न मिला सके तबतक वह धर्मात्मा जीव गृहस्थ धर्मके आलंम्बनोंको मिलावे, जिनका वर्णन है पहले पाक्षिक–श्रावकसे ले ग्यारहवीं प्रतिमाके लंगोट मात्र ऐलकके भेद रूपसे कहा है। इनको बढ़ाता हुआ तरक्की करता चला जावे। जैसे २ वाहर आचरणमें तरक्की करेगा वैसे २ ही अंतरंग परिणामोंमें कषायोंका घटाव और विशुद्ध भावोंका झलकाव होगा। गृहस्थी लोग अपनेमें इसी भावके लिये वीतराग ध्यानाकार प्रतिमाको पुनः पुनः देखकर व उसके द्वारा वीतराग भावोंके गुणोंका अनुभव कर शुद्ध स्वरूपकी भाव-नाका मनन करते हैं। वास्तवमें कोई भी प्रतिमा हो वह सामा-न्यतासे दर्शकके भावोंको उन्हीं भावोंमें पलटा देगी जिन भावोंकी वह झलकाने वाली हो। वीर रसकी वीर रसको, शृंगार रसकी शृंगार रसको, काम रसकी कामरसको ऐसे ही वैराग्य रसकी प्रतिमा वैराग्यको पैदाकर सक्ती है। इसलिये गृहस्थीके लिये सर्व प्रकार

श्रृंगार व वस्त्र अलंकारसे रहित परम शांत ध्यानाकार अरहंतकी प्रतिमा वीतराग भावोंके लिये बड़ा भारी आलम्बन है।

एक मुनि २८ मूल गुणोंमें नित्य ६ आवश्यक कर्मोंको करता है उसी तरह गृहस्थ छह कर्म नित्य करता है। १. श्रीजिनेन्द्रदेवकी उनकी प्रतिमाके द्वारा पूजन; २. परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ साधुकी उपासना; ३. जैन शास्त्रोंका अभ्यास व जैन शास्त्रोंके द्वारा तत्त्वोंका मनन; ४. मन और इंद्रियोंको अपने आधीन रखना तथा सर्व प्राणियोंपर दयाभाव रखना; ५. अपनी इच्छाओंको रोकनेके लिये सामायिक व जपद्वारा तपका करना; ६. परका उपकार करनेके लिये दानका करना। ऐसा ही कहा है:—

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने॥

यही आलम्बन आत्माके शुद्ध स्वभावकी भावना करानेवाले हैं। अतएव इन आलम्बनों करके सहित यह जिन धर्म अनादि कालसे सनातन है।

यह लोक अर्थात् जगत् छह द्रव्योंका समुदाय (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश) है। ये छहों द्रव्य अनादि अनंत हैं। क्योंकि प्रत्यक्षमें किसी भी नए द्रव्यकी न उत्पत्ति दीखती है न विनाश; जो कुछ है उसीकी अवस्थाओंका पलटन है—वही देखनेमें आता है। जैसे बीजके साथ अन्य पदार्थोंके सम्बन्धसे वृक्ष होता है, वृक्षके टुकड़े करनेसे काष्ठ होता है, काष्ठको जलाने

---

१ इनका वर्णन द्वितीय भागमें किया जा चुका है।

से कोयला और कोयलोंको जलानेसे राख होती है। राख हवामें उड़कर व कहीं जमकर किसी न किसी रूपमें पलट जाती है।

जब असत्‌की उत्पत्ति नहीं देखी जाती तब जो कुछ है वह सत्‌ रूपसे ही है और ऐसा ही था व ऐसा ही रहेगा यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। जब लोक अनादि और आत्मा अनादि, तब आत्माका स्वभाव और परिणमन भी अनादि है। आत्माका स्वभाव यद्यपि शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य्य और सुखरूप है तथापि अनादि कालसे यह विभाव अवस्थामें दीख रहा है तथा परिणमन स्वभाव होनेसे यह विभावपना घटते २ स्वभावपना हो सक्ता है-यह भी प्रगट है अतएव आत्माका परमात्मा होना व उसके लिये यत्नका किया जाना भी अनादि है।

परमात्माका स्वरूप वीतराग ज्ञानानंदमय पर द्रव्यके कर्त्ता भोक्तापनेसे रहित है तथा उसका यत्न भी ज्ञान वैराग्यमय वीतराग धर्मरूप है तथा ऐसा ही जिन धर्म मानता है। इसलिये जिन धर्म किसी खास समयमें नहीं जन्मा, किन्तु अनादि कालसे चला आया-सनातन धर्म है। जिन धर्मका अर्थ "रागद्वेषान् अजयत् सः जिनः" ऐसा जो वीतरागी आत्मा उसीका धर्म कहिये स्वभाव है। पस जब आत्मा अनादि तब उसका स्वभाव भी अनादि इसलिये यह जिनधर्म अनादि कालका सनातन है।

अध्याय छव्वीसवां ।

जैन गृहस्थधर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका सहायक है न कि बाधक ।

देश या समाज कोई खास व्यक्ति नहीं है, किन्तु अनेक मनुयोंके संगठनको ही देश या समाज कहते हैं । इसलिये अनेकोंकी उन्नति देश या समाजकी उन्नति है ।

जैन गृहस्थ समयका दुरुपयोग और आलस्यको अपना शत्रु समझता है । वह धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंको एक दूसरेके साधनमें विना हानि पहुंचाये न्यायपूर्वक सम्पादन करता है।

राज्यकीय उन्नति उस उन्नतिको कहते हैं कि जिससे देशकी प्रजा बलवान, विद्वान्, सुशील, सुआचरणी, धर्मात्मा, सत्यवादी, परोपकारी, धनयुक्त और कर्तव्यनिष्ठ हो । प्रजाके भीतर ऐक्यता, स्वास्थ्य, व्यापार; कलाकौशल्य, धनसंग्राज्य, सत्यव्यवहार, न्यायरूप विषय सेवनमें सन्तोष, परोपकारता और धर्मात्मापना बढ़ना ही उन्नतिका चिन्ह है ।

यदि किसी राज्यकी प्रजामें विद्या, कला व धन तो बढ़ता जाय; परन्तु स्वास्थ्य, सन्तोष, सत्य–व्यवहार घटता जाय और इन्द्रिय विषयोंकी तल्लीनता व क्रोध, मान, माया, लोभ व धर्मसे अरुचि बढ़ती जाय तो वह उन्नति प्रजाकी दिखलानेकी उन्नति है–सच्ची राज्यकीय उन्नति नहीं ।

राज्यकीय उन्नतिकी एकदेशीय उन्नतिका नाम सामाजिक उन्नति है ।

एक देशमें सर्व प्रजा एक ही समाजिक बंधनमें बंधी हो ऐसा प्रायः होना कठिन है। अतएव भिन्न २ एक नियमसे वर्तनेवाले समूहोंको समाजें कहते हैं।

यदि समाजके लोग ऐक्यता व सत्यतासे रहते हुए एक दूसरेका उपकार करें, विद्याका प्रचार करें, परस्पर धर्म, स्वास्थ्य और सन्तोषकी रक्षाके हेतु जन्म, मरण, शादीके योग्य नियमोंका पालन करें तथा जिससे समाजमें कर्जा बढ़े, दोष फैले, निर्धनता आवे, शरीर बिगड़े व विषय परायणताकी आदत पड़ जावे ऐसे कुनियमोंको रोक देवै तो अवश्य समाजकी उन्नति हो।

जैन गृहस्थियोंके ४ वर्ण हैं: ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। ये चारों ही वर्ण अनेक प्रकारकी कला व विद्याएं यथायोग्य सीख सक्ते हैं। परन्तु आजीविकाका साधन क्षत्रीके लिये देशकी रक्षा अर्थात् असिकर्म, वैश्यके लिये मसि (लिखना) कृषि और वाणिज्य तथा शूद्रके लिये विद्या व शिल्प है। ब्राह्मणोंके लिये परोपकारतासे पठन पाठन धर्माचरण करना कराना है व जो दान अन्य तीनों वर्णवाले भक्तिसे देवें उनको लेकर अपना व अपने गृहका पालन करना है।

जब क्षत्री जैनधर्मी होगा तो श्रीरामचंद्रकी भांति निर्बलोंकी रक्षा करेगा, प्रजाको सुखी रखनेके लिये अपना शारीरिक स्वार्थ भी त्याग देगा (जैसे श्रीरामने लोगोंको अधर्मकी प्रवृत्तिसे बचानेके लिये अपने दिलमें निश्चय रखते हुए भी कि सती सीता पतिव्रता है उसको घरसे निकाल दिया) तथा प्रजाके कष्टको दूर करने व धर्मात्माओंकी रक्षाके हेतु युद्ध भी करेगा। परन्तु वृथा किसीके

प्राणोंको न दुखाएगा और न बेमतलब शत्रुके प्राण लेगा, जैसा श्रीरामने राजा सिंहोदरको जब वह आधीन हो गया तब छोड़ दिया और बहुत सन्मानित किया।

जैनी राजा न केवल मनुष्योंकी रक्षा करेगा, परन्तु पशुओंकी भी रक्षा करेगा। जैसा कि राजा चंद्रगुप्त जैनी राजाके इतिहाससे प्रगट है कि उसने पशुओंके लिये स्थान २ पर पशुशालाएं खुलवा दी थीं तथा रोगी पशुओंकी चिकित्साका पूरा प्रबन्ध किया था। जैनी राजा तुरन्त उस हिंसाको बन्द करा सक्ता है जो वृथा पशुओंका बलिदान देकर धर्मके नामसे की जाती हो तथा मांस व मादक वस्तुओंके प्रचारको बन्द कराकर शुद्ध भोजनपानकी प्रवृत्ति कराएगा। जैनी राजा अपने आपको प्रजाका सेवक समझेगा व जिस तरहसे प्रजामें धन, बल, स्वास्थ्य, सत्यता व धर्म बढ़े वैसा उपाय कर देगा।

इसी तरह जैनी वैश्य नीतिपूर्वक व्यापार करता हुआ असत्य बोलकर व चोरी करके प्राणोंको नहीं दुखाएगा, सदा दयाको सामने रखता हुआ दूसरोंका मन दुखाकर द्रव्य पैदा करूं यह बात कभी नहीं ठानेगा। जिससे कभी कुछ कर्ज लेगा उसको उसका कर्जा ठीक कहे हुए समयपर अदा कर देगा, धनका लाभ कर परोपकारतामें खर्च करेगा; दीन, दुखी, अनाथ पुरुष, स्त्री और बालकोंकी तो रक्षा करे हीगा; किन्तु पशुओंकी भी पालना करेगा। ऐसे गृहस्थियोंसे जगत्‌को न तो दुःख पहुंचेगा न अदालती मुकद्दमें उठेंगे। सदा ऐक्य और सन्तोष उनके मनको सुखी रक्खेगा।

जैनधर्मी शूद्र भी अपना कार्य्य परिश्रमसे करता हुआ इस बातका ख्याल रक्खेगा कि दूसरोंका मन पीड़ित न करूं। सत्यता और सन्तोषको अपना भूषण बनाता हुआ कभी लड़ाई झगड़ा न करेगा और सुखसे जीवन बिताएगा। मूढ़ताईमें पड़ जैसे आजकलके शूद्र अपनी बचीबचाई कमाई देवियोंको बलि चढ़ाने व नदीमें स्नान करनेसे पुण्य मानकर यात्रा करनेमें बिता देते हैं अथवा तरह२ के नशेखानेमें बरबाद कर देते हैं—ऐसे नहीं करेगा। उस शूद्रका जीवन भी स्वपर लाभकारी हो जायगा, वह पशुओंको कभी मांसाहारी, कसाई आदिकोंके हाथ नहीं बेचेगा, करोड़ों गाय, भैंस, बकरी, भेड़ जो शूद्रोंकी मूढ़ताईसे मारी जाती हैं अपने प्राणोंको उस समय बचा सकेंगीं, यदि शूद्र लोग जैनधर्म पालने लग जावें। अतएव इस बातके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं। यह तो स्वयं सिद्ध है कि जैनधर्मके आश्रयसे राजा व प्रजा सब उन्नतिके सच्चे मार्गपर चलेंगे और लौकिक सातांके साथ २ आत्मानुभवरूपी आनन्दको भी भोगेंगे। इसलिये यह जैन धर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका हर तरह सहायक है—बाधक नहीं।

अध्याय सत्ताइसवां।

जैन पंचायती सभाओंकी आवश्यक्ता।

समाजमें सुनीति और सुरीतिका प्रचार हो तथा कुनीति और कुरीतिका विनाश हो इसके लिये हरएक मंडलीमें पंचायती

सभाओंकी मजबूती होनी चाहिये । इस पंचायती सभाकी एक अंतरंगसभा हो, जिसके ५ सभासद ऐसे हों जो गृहीसिता याने गृहस्थाचार्य्यके गुणोंसे विभूषित हों। हरएक विषयको यह अंतरंगसभा जांचकर व विचारकर सर्व पंचायतसे मंजूर करावे। आजकल गृहस्थी लोग जरासी तकरारमें अदालत दौड़ जाते हैं, इससे महा हानि उठाते हैं। जैसे अगर किसीको किसीसे सौ रुपया लेने हों तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों दो दो सौ अदालतमें खर्च कर देते हैं अथवा किसी जायदादकी हककी मिलकियत तो एक लाखकी हो और करीब १ लाखके अदालती झगड़ोंमें ही लगा देते हैं, इससे सिवाय मूर्खताके और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। यह सब माल सम्बन्धी झगड़े पंचायतसे तय होना चाहिये, ताकि खर्च तो कुछ न पड़े और फैसला सुगमतासे हो जावे। आजकल यह भी देखनेमें आता है कि कोई २ लोग ऐसे २ निंद्यकर्म कर बैठते हैं कि जिससे वे दंड भोगे विना एक नियमरूप समाजके साथ खान पान व्यवहार करनेके अधिकारी नहीं हो सक्ते। परन्तु पंचायतोंकी शिथिलतासे व पंचायतोंमें धर्मात्मा परोपकारी मुखियाओंके विना उन ऐसे लोगोंको कुछ प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता और न रोका जाता है; पस निंद्यकर्म समाजमें बढ़ते चले जाते हैं। इसलिये दृढ़ पंचायतियोंकी अंतरंग सभाके मेम्बर अपनी समाजके हरएक व्यक्तिकी सम्हाल रक्खें तो समाजमें निंद्यकर्मसे भय बना रहे और हरएक काम जो पंचायती करना चाहे वह सुगमतासे हो सके, अदालतोंसे लाखों रुपये बचें और कष्टोंसे रक्षा हो। इस पंचायती सभाके अंतरंग मुख्य सभासद

ज्ञानवान समझदार होने चाहिये जो अपना फैसला अदालतकी अपेक्षा भी बढ़िया कर सकें। ये पंचायतें ही समाजमें विद्योन्नति आदिके अनेक उपायोंसे समाजका उपकार कर सक्ती हैं।

अध्याय अट्ठाइसवां।

सनातन जैनधर्मकी उन्नतिका सुगम उपाय।

इस पवित्र जैनधर्मकी उन्नतिका सर्वसे सुगम उपाय यह है कि पढ़े लिखे गृहस्थियोंको ब्रह्मचारी होकर देशाटन करना चाहिये। जबतक समाजको अपना कर्तव्य विदित न हो तबतक यह प्रथा होनी चाहिये कि शास्त्र-ज्ञाता गृहस्थ अपने २ पुत्रोंको काम सौंप स्त्रीको त्याग ब्रह्मचारी हो भ्रमण करते हुए उपदेश करें तथा स्वाधीनतासे अपना खर्च आप चला सकें इसके लिये कुछ रुपया बैंकमें जमा करा देवें। ऐसे लोग किसीसे कहीं कुछ याचना न करें,केवल परोपकार-वृत्ति धार कष्ट सहें और जैनधर्मका प्रचार करें। आप खूब ध्यानके साथ ७ वीं प्रतिमा तकके नियमोंके पालनेका अभ्यास करें, क्योंकि जिसका चारित्र ठीक होगा उसीका असर समाजपर पड सक्ता है। ऐसे ब्रह्मचारी दस पांच नहीं सौ दोसौ पांचसौकी तुरन्त आवश्यक्ता है जो ग्राम २ घूमें और लोगोंका कल्याण करें। अपने आत्मानुभवके रससे जीवोंको तृप्त करें। जबतक किसी धर्मके उपदेष्टा बहुतायतसे नहीं होते तबतक उसका प्रचार हरगिज़ नहीं हो सक्ता। जैसे आजकल श्वेतांबरी साधु व ढूंढ़िये साधुओंकी अधिकता है ऐसे ही ब्रह्मचारियोंकी अधिकता होनी चाहिये। वर्तमानमें दिगम्बर मुनियोंका संघ अधि-

कतासे होकर भ्रमण करे—यह बात बननी अभी कष्टसाध्य है, है, परन्तु ब्रह्मचारीगण वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार देशाटनकर जगत्का बहुत बड़ा उपकार कर सक्ते हैं और इस सनातन पवित्र जैनधर्मके प्रचारका सर्वसे सुगम यही उपाय है।

अध्याय उन्नीसवां।

पानी व्यवहारका विचार।

श्रावकको पानी कैसा काममें लेना चाहिये इस विषयपर विचार करना अतिशय जरूरी हैं।

कुछ संस्कृत शास्त्रोंमें पानी छानने, प्राशुक करने आदिके जो श्लोक देखनेमें आये वे नीचे दिये जाते हैः—

(यशास्तिलक चम्पूकाव्य लम्ब ७ पत्रे ३३४.)

गृहकार्याणि सर्वाणि दृष्टिपूतानि कारयेत्।
द्रव द्रव्याणि सर्वाणि पटपूतानि योजयेत्॥
वातातपादि संस्पृष्टे भूरितोये जलाशये।
अवगाह्य आचरेत् स्नानमतोऽन्यद्गालितं भजेत्॥

अर्थ—घरके काम देखकरके करे, सर्व बहती हुई चीजें कपड़ेसे छानकर काममें लेवे। हवा धूप आदिसे छूए हुए गहरे भरे हुए तालाव या नदीके पानीमें स्नान कर सक्ता है मेधावीकृत धर्मसंग्रहश्रावकाचारमें इस भांति हैः—

गालितैर्निर्मलैर्नीरैः सन् मंत्रेण पवित्रतैः।

प्रत्यहं जिनपूजार्थ स्नानं कुर्यात् यथाविधिः ॥ ९१ ॥
सरतां सरसां वारि यदगाधं भवेत क्वचित् ।
सुवातातापसंस्पृष्टं स्नानार्हं तदपि स्मृतम् ॥ ९२ ॥
नभस्वताहतं ग्राव घटी यंत्रादि ताड़ितम् ।
तप्तं सूर्यांशुभिर्वाप्यां मुनयः प्राशुकं विदुः ॥ ९३ ॥
यद्यप्यस्ति जलं प्राशु प्रोक्तलक्षणमागमे ।
तथाप्यति प्रसंगाय स्नायात् तेनाऽत्र नो बुधः ॥ ९४ ॥

अर्थ—छने हुए निर्मल मंत्रसे पवित्रित जलसे रोज जिन पूजाके लिये स्नान करे। नदी व तालावका जल यदि बहुत गहरा हो तथा हवा, धूपसे स्पर्शित हो तो स्नानके लिये योग्य कहा गया है। जो जल हवासे छिन्न भिन्न किया गया हो तथा पत्थरकी घटी व यंत्र वगैरहसे दलमला गया हो व सूर्यकी किरणोंसे गर्म हो ऐसे वापीके जलको मुनियोंने प्राशुक कहा है। यद्यपि आगमके अनुसार यह जल प्राशुक है, तो भी विद्वान् इस जलसे स्नान न करें। क्योंकि अतिप्रसंग हो जायगा जिससे अजैनोंकी तरह जैनी भी विना विचारे नदी व तालावोंमें न्हाने लग जावेंगे।

श्री अमितिगति आचार्यकृत सुभाषितरत्नसंदोहमें इस प्रकार है:—

स्पर्शेन वर्णेन रसेन गन्धाद्यदन्यथा वारिगतं स्वभावम् ।
तत्प्राशुकं साधुजनस्य योग्यं पातुं मुनीन्द्रा निगदन्ति जैनाः॥२१४॥
उष्णोदकं साधुजनाः पिबन्ति मनो वचः कायविशुद्धिलब्धम् ।
एकान्ततस्तत्पिबतां मुनीनां षड्जीवघातं कथयंति सन्तः २१५

हतं घटीयंत्रचतुष्पदादिसूर्येन्दुवाताग्निकरैर्मुनीन्द्राः ।
अत्यन्तवातेन हतं वहच्च यत्प्राशुकं तन्निगदन्ति वारि ॥ २१६ ॥

भावार्थ–यदि पानीका स्पर्श, वर्ण, रस, गंध और रूप हो जावे तो वह पानी प्राशुक है और साधुजनोंके पीने योग्य है–ऐसा जैन मुनियोंने कहा है। मन, वचन, कायकी विशुद्धतासे याने अपने विना किसी संकल्पके प्राप्त हुए गर्म जलको मुनिजन पीते हैं। यदि तीनों विशुद्धतामें एक की भी हानि हो तो पीने-वाले मुनिको छह कायके जीवोंके घातका पाप होता है–ऐसा सन्तोंने कहा है। जो पानी घटीसे, यंत्रसे व चौपायों आदिसे छिन्नभिन्न किया जावे व सूर्य्यकी किरण व वायु व अग्निके कणोंसे हता जावे व जो वहता हुआ पानी उल्टी ओर की वायुसे हता जाय वह सब पानी प्राशुक है–ऐसा कहते है।

पानीके छाननेकी क्या विधि है? इसका वर्णन किसी भी संस्कृत शास्त्रमें नहीं देखा गया केवल सागारधर्मामृतमें इतना मात्र है:—

**मुहूर्त्तयुग्मोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालन-
मम्बुनो वा ।
अन्यत्र वा गालित शेषितस्य न्यासोनिपानेऽस्य न
तद् व्रतेऽर्च्यः ॥ १६ ॥**

अर्थात्–दो महूर्तके ऊपर विना छना व मैले खराब कपड़ेसे छना पानी व्रती न पीवे तथा पानी छानकर उसका बिलछन उसी स्थानपर पहुंचा देवे।

भाषाके श्रावकाचारोंमें जो पानी छाननेकी विधि है सो नीचे दी जाती है:—

बहता हुआ नदी व कूप व तालावका पानी लोटे या डोलसे भरे और दूसरे वर्तनमें विना सुराखदार गाढ़े सफेद दोहरे कपड़ेको रखकर धीरे २ पानी छाने ताकि अनछना पानी बाहर न गिरे। यह कपड़ा दुहरा किये जानेपर ३६ अंगुल लम्बा और २४ अंगुल चौड़ा हो अर्थात् जिस वर्तनमें छन्ना लगावें उसके मुंहसे तीन गुणा चौड़ा हो। छाननेके बाद जो छन्नेमें बचता है उसको बिनलछन कहते हैं। इसमें कूड़े करकटके सिवाय बहुतसे महीन त्रस जीव वेगिनती होते हैं, जो एकाएक देखनेमें नहीं आते। एक डाक्टरसे मालूम हुआ कि एक इञ्चके १०० वें भागसे छोटे त्रसजीव होते हैं। इस सर्व बिलछनको उसीमें पहुंचा देना चाहिये जहांसे पानी भरा हो। जिस डोल व लोटेसे पानी भरा जाय उसके नीचे कुंडा लगा रहना चाहिये, ताकि बिलछनको छने पानीसे छननेमेंसे धो उस लोटे व डोलमें करले तथा उल्टी ओर कुंडेमें उस डोरको अटकावे तथा एक छोटीसी लकड़ीकी डंडी मुंहमें अटका लोटा नीचे गेर कर हिला दे तब वह उल्टा हो जावेगा और बिलछन कुएमें गिर पड़ेगा। अथवा बिलछनको किसी वर्तनमें रहने दे जब दूसरी दफे फिर पानी भरे तो भरने-वाले पात्रमें बिलछन कुएमें पहुंचा दे। इस तरह भी बिलछन सुगमतासे नीचे पहुंच सक्ता है। इस प्रकारका छना पानी एक महूर्त याने दो घड़ीकी म्याद रखता है उसीके अन्दर काममें लाया जा सक्ता है। यदि ४८ मिनटका समय हो जावे तो फिर

छानके काममें लेता रहे और बिलछन एक वर्तनमें जमा करता रहे और दिनभरका इकट्ठा करके उसी जलके स्थानपर पहुंचा देवे जहांसे पानी भरा था। परन्तु इस छने हुए पानीमेंसे खाली त्रसजीव दूर हुए हैं जलकायिक जीव मौजूद हैं। पानीको जलके जीवोंसे रहित करनेके लिये नीचे लिखी विधि है:—

यदि कषायला पदार्थ जैसे पिसीहुई लौंग, मिरच, इलायची, अमली, बारीक राख आदि चीजें डालकर पानीका स्पर्श, रस, रंग व गंध बदल लिया जावे तो यह पानी उस बदले हुए समयसे ६ घंटे तक प्राशुक याने जलकायिक जीवोंसे भी रहित हो जाता है।

यदि छने पानीको गर्म करलें और उबालें नहीं तो १२ घंटे तकके लिये प्राशुक हो जाता है। यदि छने पानीको अधनके समान औटा लेवें तो २४ घंटेके लिये प्राशुक हो जाता है। इन तीनों तरहके प्राशुक किये हुए जलको उसकी म्यादके अन्दर ही वर्त लेना चाहिये। म्यादके बाद वह छाननेसे भी काममें नहीं आ सक्ता। पानीकी म्यादके विषयमें किसी शास्त्रका जो श्लोक सुननेमें आया सो दिया जाता है —

"मुहूर्तं गालितं तोयं प्राशुकं प्रहरद्वयं।
कोराहं चतुष्कर्मं च विशेषोष्नं तथाऽष्टकं॥"

अर्थात् छना हुआ दो मुहूर्त, प्राशुक किया दो पहर, गर्म किया हुआ ४ पहर व विशेष गर्म किया हुआ ८ पहर याने २४ घंटे चलता है।

अध्याय तीसवां।

हम क्या खाएं और पिएं ?

इस अध्यायमें हमको शारीरिक स्वास्थ्यकी ओर विचार करके इस बातपर नमूनेकी रीतिसे कुछ दिखलाना है कि हम गृहस्थ लोग क्या खाएं और पिएं।

इस विषयकी खोज करते हुए हमको जर्मनीके एक प्रसिद्ध डॉक्टर लुई कोहनी (Louis kohne) की बनाई हुई किताब "New Science of Healing" अर्थात् "भला करनेके लिये नई विद्या" का उर्दूमें तर्जुमा श्रीत्रकृष्णप्रसाद बी० ए० गवर्नमेंट प्लीडर, बदायूं जिला बिजनौरकृत देखनेमें आया है। इस तर्जुमेंका नाम "नया इल्म शफाबख्श" है और सन् १९०४ में केसरेहिंद प्रेस, बदायूंमें छपा है। यही पुस्तक जर्मनी भाषामें ५० दफे छप चुकी है तथा इसका तर्जुमा पच्चीस भाषाओंमें हो चुका है। यह किताब हरएकके पढने योग्य है तथा इसका पूरा उल्था हिन्दी भाषामें भी होना चाहिये। इस किताबके सफा ११९ से १५२ तक इसी बातका वर्णन है कि हम क्या खाएं और क्या पिएं ? उसीके अनुसार नीचे कुछ कहा जाता है:—

सर्व बीमारियोंको रोकनेकी तरकीब—जब तक पहलेका खाया हुआ ठीक तौरपर हजम न हो जावे दूसरी बार भोजन मत करो। क्योंकि सर्व रोगोंका मूल कारण भोजनका नहीं पचना याने हजम न होना और अनुचित आहारका करना है।

भोजन ठीक पच जानेकी पहचान—जब दस्त (पाखाना) थोड़ा व भूरे रंगका मुलायम और बंधा हुआ हो और उसपर लेसदार एक तह पाई जावे तथा जो झटसे अलग हो जावे—पाखानेके स्थानपर लगा न रहे तो जानना चाहिये कि भोजन ठीक पचा है।

एक भोजन करनेके बाद दूसरा भोजन कब ले—एक भोजनके ठीक २ पच जानेके लिये पूरा वक्त देना चाहिये। संसारमें पशु पक्षियों तकमें नियम है कि एक खाना खानेके बाद दूसरा खाना बहुत देर बाद लेते हैं। बहुधा व्रत उपवास करनेसे शरीरका हाजमा ठीक हो जाता है। यह देखा गया है कि एक दफा पूरी खुराक खानेके बाद सर्प बहुधा कई सप्ताह तक खाना नहीं खाता। यह भी जांचा गया है कि हिरण और खरगोश हफ्तों और महीनों तक बहुत कमती भोजनपर रहते हैं। इसलिये जब भोजन भले प्रकार पच जावे तब दूसरा भोजन करे।

कौनसे खाने जल्दी पचते है और लाभकारी होते हैं?

जो भोजन अपनी असली दशामें स्वादिष्ट और चित्तको आकर्षण करनेवाले हों जल्दी हजम होते हैं और जो यही भोजन नमक व मसाला लगाकर पकाकर खाए जावें तो देरमें हजम होते हैं और असली हालतकी अपेक्षा कम लाभकारी होते हैं। पकाए व तयार किये हुए भोजनोंमें वे भोजन जल्दी पचते हैं जो सादे तौरपर पकाए जावें व जिनमें नमक मसाला कम लगा हो। पतले भोजन जैसे सुगन्धित शर्बत वगैरह असली दशामें चबाए जाने-

वाले भोजनकी अपेक्षा देरसे हजम होते हैं। जो भोजन अपनी असली हालतमें मनुष्यमें घृणा पैदा करें हमेशा स्वास्थ्य यानें तन्दुरुस्तीको हानिकारक होते हैं, चाहे वे कितने ही स्वादिष्ट क्यों न बनाए गये हों ? और सर्वसे अधिक मांस ही इस प्रकारका भोजन है। कोई भी मांस खानेवाला मनुष्य जिन्दे पशुपर दांत नहीं मार सक्ता न भेड़का कच्चा मांस खासक्ता है; क्योंकि दर असलमें कच्चा मांस घृणा पैदा करानेवाला है। कच्चे मेवे पक्के मेवेकी अपेक्षा जल्द हजम होते हैं जैसे पकी हुई किसमिसकी अपेक्षा गीले तरअंगूर जल्दी हजम होते हैं। यदि देरमें हजम होनेवाला भोजन किया हो और ऊपरसे कच्चा मेवा खा ले तो सब खाना जल्द हजम हो जावेगा। बहुधा वे कुत्ते जो कभी ज्यादा खाते हैं पीछे घास खाते हैं जिससे अपनी खुराक जल्द हजम कर लेते हैं। पिसे हुए अनाजकी अपेक्षा साबुत या तला हुआ अनाज यदि चबाकर खाया जाय तो जल्दी हजम होता है, क्योंकि चबानेमें मुंहकी राल साथमें मिल जाती है।

पिसे हुए गेहूंका आटा चूकरसहित बिना छना जल्दी पचता है और चूकर अलग करनेसे कब्ज़ होता है और देरमें हजम होता है। यह बात प्रसिद्ध है कि मैदेकी चीज़ काबिज़ होती है, क्योंकि वह बिलकुल चूकरसे रहित होती है। यदि घोड़ेको जई गेहूंके चूकरके साथ दी जाय व छिलके सहित जई दी जाय तो जल्द हजम हो। मतलब कहनेका यही है कि ठीक २ जिस हालतमें खुराककी कोई चीज नेचरने पैदा की है उसी हालतमें हमेशा वह हाजमेके वास्ते सबसे अच्छी होती है। दाल पतलीकी अपेक्षा

मटर जल्दी हजम होते हैं। यह बात अच्छी तरह जांच की गई है कि एक मजदूर तीन महीने तक रोज़ मुट्ठी भर कच्चे मटर खाकर अपनी सारी ज़िन्दगीमें सबसे अधिक तन्दुरुस्त मालूम पड़ा।

यह बात सर्व जैनियोंमें प्रसिद्ध है कि त्यागी महाचन्दजी ताजे मूंग कूटे हुए खाते थे-उनकी आवाज़ बहुत तेज और बुलन्द थी-मुहल्लों तक उनके व्याख्यानकी आवाज़ फैल जाती थी। त्यागी लालमनजी ताजे धान्य कुटवाकर खाया करते थे।

उम्दासे उम्दा अंग्रेजी शराब, बड़ा कीमती गोश्त, अंडे या पनीर ये सब चीजें शरीरमें बहुत कठिनतासे हजम होती हैं। जब कि विना छने हुए आटेकी रोटी, ताजे फल, हरी तरकारियां और आटेके बने हुए पदार्थ व पानीमें पके हुए चिकनई, शक्कर या नमकसे विना मिले हुए भोजन बहुत जल्द हजम होते हैं। अन्न व तरकारी जिस पानीमें पके उस गर्म पानीको फेंकना नहीं चाहिये, क्योंकि उसमें बलकारक पदार्थ रहता है। तरकारियोंको बहुत कम पानीसे या केवल भाफसे पकाना चाहिये और जितना पानी वे सोख लेवें उसको निकाला न जावे। बीमार आदमियोंके लिये तो यह बहुत ही आवश्यक है कि वे बिना छनें हुए चूकरसहित मोटे आटेकी रोटी चबा २ कर खावें ताकि मुंहका लुआब मिल जावे जिसमें जल्दी हजम हों तथा जईके आटेकी लपसी भी बहुत फायदेमंद होती है, परन्तु उसमें सिवाय कुदरती नमक (पानी जमा कर जमाया नहीं हो) या विना गर्म किये हुए दूधके और कुछ न मिलाया जावे। दूध ठंडा और विना गर्म किये हुए ही पीना चाहिये, परन्तु यह देख

लो कि इसमें दुर्गन्ध तो नहीं है या उसका स्वाद तो नहीं बिगड़ा। गर्म दूध देरसे हजम होता है और वलदायक नहीं होता और न गर्म करनेसे हानिकारक पदार्थ इसमेंसे निकलते हैं। ऐसा दूध दोहे जानेके २ घडी याने ४८ मिनटके भीतर पीलेना चाहिये। भोजन करते समय ताजा मेवा खाना चाहिये वा चांवल जौ वगैरह खाना ठीक है। जिसका स्वास्थ्य अच्छा है वह इसी प्रकारकी बहुतसी चीजें खा सक्ता है। जिस आदमीको वदहजमीकी शिकायत हों उसे बहुत ही सादा भोजन खाना चाहिये जो भले प्रकार चबाया जाय, जैसे विना छने आटेकी रोटी और फल।

एक साधारण आदमी सवेरे यदि नाश्ता करे तो विना छने आटेकी लपसी, और फल खाए और फिर चावल, जौ, गेहूं, जईका आटा पानी या घीमें तयार किया हुआ या थोड़ा मेवा मिला हुआ, दालके अनाज याने मटर, सेम, लोभियां, मोठ और मसूर। इन सबको पानीमें खूब पका ले, घुटे हुए व कुचले हुए न हों, पानी इतना डाले कि सब सूख जावे, परन्तु इनकी असली सूरत न बिगड़े।

तरकारियां ऐसी गलाना चाहिये जो पतली न हों-चबाई जासकें। मसालोंमेंसे जीरा सफेद, सौंप, धनियां, अजवाइन तरकारियोंमें डाली जा सक्ती हैं। गर्म मसाले जैसे लौंग, मिर्च हींग नहीं डालने चाहिये।

एक साथ एक वक्तमें एक रोटी और एक तरकारी खाओ। साथमें दूसरी तरकारी या दाल न हो, खाना भूख रखकर खाओ, बारबारके खानेसे परहेज करो; क्योंकि इससे हाजमा बिगड़ता

है। जब तक पहला खाना हज्म न हो जावे दूसरी चीज दूसरी बार मत खाओ।

हम क्या पीवें ?–हमको ताजा पानी पीना चाहिये। जानवर हमेशां बहते हुए पानीको ही तलाश करते हैं और नदी धाराओंसे पानी पीना पहाड़ोंसे निकलते हुए झरनोंकी अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। जिस पानीपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं और जो पत्थरके टुकड़ोंपर बहता आया है वह पहाड़के झरनोंके ताजे पानीसे अच्छा होता है।

पानी कम पीना–जो जानवर रसदार भोजन खाते हैं वे पानी कम पीते हैं। मनुष्य यदि रसदार फलोंको खाय तो प्यास कम लगे।

यदि हम बीमारीसे छूटना चाहते हैं तो यह जरूरी है कि उसी ही पानीको जैसा कि नेचरमें मिलता है पियें और सिर्फ पानीसे ही अपनी प्यास बुझावें।

डाक्टर साहबके इस कथनसे साफ प्रगट होता है कि हमको बनावटी पानी जैसा कि नलका व बर्फका व सोडावाटर व लेमोनेडेको हरगिज नहीं पीना चाहिये। जो पानी असली हालतमें बहता हुआ हो और जहां सूर्यकी किरणें भी पड़ें वह पीनेके लिये सबसे अच्छा है।

पेटकी रक्षाके दो दरवान हैं–नाक और जबान। जिसको अच्छी हवा लेनेकी आदत रहती है वह अपनी नासिकके द्वारा बुरी हवाको पहचानकर भीतर जाने नहीं देता है। बुरी गन्दी हवासे बचना शरीर रक्षाका अति उत्तम उपाय है। जो अपनी

नाकसे काम नहीं लेते और उसके बार २ चितानेपर भी खयाल नहीं करते उनकी नासिका अपना काम करना छोड़ देती है। इसी तरह जो वस्तु जिव्हा पर रखनेसे बिगड़े स्वादकी मालूम पड़े उसे कभी न खाओ। जो लोग लड़कईसे जांचकर खाते हैं उनके लिये जिव्हा बड़ा काम करती है—सदा ही सड़ी, बुसी, गली, चीजको पेटमें जानेसे बचाती है; परन्तु जिनकी आदत खराब हो जाती है उनकी जबान अपना काम देना बन्द कर देती है। फिर उनको सड़े व बुसे व बासी चीज़की कुछ परवाह ही नहीं होती। इसीलिये हमको शरीर रक्षाके लिये इन दोनों दरवानोंसे आप भी काम लेना चाहिये और अपने लड़कोंको सिखलाना चाहिये कि वे इनसे मदद लेते हुए खायापीया करें व रहासहा करें।

डाक्टर साहब मांसाहारको मनुष्यके लिये बहुत बड़ा हानिकारक बतलाते हैं और आपने इस बातको बड़े वादानुवादके साथ सिद्ध किया है कि मनुष्य कभी मांसाहारी नहीं हो सक्ता।

मांसपर विचार।

डॉक्टर साहबने दांत, पेट, भोजनकी रक्षा, बच्चोंका भोज्य इन चार बातोंका मुकाबला किया है और यह फल निकाला है कि "(१) मनुष्यके दांत मांसाहारी जानवरोंसे नहीं मिलते, इसलिये वह मांसखोर जानवर नहीं है, न साग व घास खानेवाले जानवरोंसे मिलते हैं, क्योंकि वह घास खानेवाला जानवर नहीं है और न उन जानवरोंसे मिलते हैं जो मांस और घास दोनों खाते हैं; परन्तु मनुष्यके दांत फल खानेवाले बन्दरोंके दांतोंसे करीब २ मिलते हैं। इसलिये यह सिद्ध है कि मनुष्य

फल खानेवाली किस्मका जानवर है। (२) पेटकी अपेक्षासे भी देखा जावे तो मनुष्य फल खानेवालोंसे मिलता है, मांसाहारियोंसे नहीं। (३) भोजनकी रक्षाका कारण नाक और ज़बानकी शक्तियां हैं। प्रगट है कि शिकारी जानवर शिकारकी बू पाते ही उधर दौड़ेगा और उसका खून चूस लेगा, जब कि मनुष्यका दिल इस तरह किसी पशुपर नहीं चल सक्ता, किन्तु उसकी तबियत फलादिकी ओर जायगी जो उसकी ज़बानको रुचते हैं। फल खानेवाले पशु भी खेत और फलदार वृक्षों ही पर रहना पसंद करते हैं। एक बच्चेको जिसने कभी पशुओंका मारा जाना सुना नहीं है कभी खयाल नहीं आ सक्ता कि पशुको मारो इसका मांस अच्छा होगा। कच्चा मांस किसीकी भी आंख व नाकको पसन्द नहीं आएगा, खानेके वास्ते तो लोग मसाले डालकर स्वादयुक्त बनाते हैं; जब कि फलोंको देखकर दिल खुश होता है। अन्नको काटने और जमा करनेमें किसीको भी घृणा नहीं होती। (४) नए जन्म प्राप्त बच्चे माताका दूध ही पसन्द करते हैं। असली भोजनके सामने कोई चीज ठीक नहीं है। मांसाहारी माताओंके दूध कम होता है। जर्मनीमें बच्चोंके लिये बहुधा उन गावोंकी धायें बुलाई जाती हैं जो मांस नहीं खातीं व बहुत कम मांस खाती हैं। समुद्री यात्राओंमें धाओंको जईके आटेकी पकी हुई लपसी दी जाती है। इससे यह साफ २ प्रगट है कि मांस माताके दूधके बनानेमें कुछ भी मदद नहीं देता। जो लोग कहते हैं कि जानवरोंसे मनुष्यका मुकाबला न करो, मनुष्य तो मुद्दतसे मांस खानेकी आदत डाल

चुके हैं उनके लिये डाक्टर साहबने अपने तजुर्वेसे लिखा है कि "कई घरोंमें बच्चे जन्मसे ही विना मांसकी खुराकके पले गए और उनके शरीरकी ऊंचाईकी जांच मैंने स्वयं की तो बहुत अच्छा फल रहा, वे बच्चे हर तरह अच्छे रहे। इससे यह बात सिद्ध है कि मनुष्यके लिये मांसकी जरूरत नहीं है।" इंद्रियोंकी तृष्णाके बढ़नेसे ही बदचलनी होती है। जो बच्चे मांसादिके भोजनपर रहते हैं वे अपनी इच्छाओंको रोक नहीं सके, इसलिये जल्द बदचलन हो जाते हैं। अतः यदि बदचलनीको रोकना होवे तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि बच्चोंका पालण पोषण असली खुराकसे हो, इस बातकी डाक्टर साहब कहते हैं कि हमने पूरी २ जांच कर ली है। जिन लोगोंने कुसंगतिमें पड़ मांस खाना स्वीकार कर लिया वे लोग बीमार हो गए और लाचार उनको मांसरहित भोजन लेना हुआ।

थियोडवर हान साहब २९ वर्षकी उमरमें मरन किनारे हो गए थे, परन्तु मांसके त्यागने और फलाहार करनेसे ३० वर्ष और जी सके। "जो लोग मांस और शराबको छोड़नेके लिये अपना दिल मज़बूत नहीं करते वे बराबर खराब मैला भीतर जमा करते जाते हैं जिसको तन्दरुस्तीके लिये फिर दूर करना पड़ेगा।" इस तरह बहुत वादानुवादके साथ डाक्टर साहबने दिखलाया है कि मनुष्यको शुद्ध अन्न, फल, तरकारी, ताजा दूध, ताजा असली पानी—इन चीज़ोंका आहार करना चाहिये।

पस जैनी भाईयो! तुम आप और अपने स्त्री बच्चोंको शुद्ध ताजे खानपानकी आदत डलवाओ। बासा, मर्यादारहित भोजन

पान कभी न करो। हर वस्तुको खाने पीनेके पहले अच्छी तरह देखलो और सूंघलो, यदि रस चलित न हों और अपने दिलमें घृणा नहीं आवे तब ही ग्रहण करो।

अध्याय इकतीसवां।

फुटकर सूचनाएं।

स्वास्थ्य रक्षा—"शरीरमेव खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीर ही निश्चय करके धर्म सिद्धिके लिये निमित्त कारण है। इस नियमके अनुसार गृहस्थियोंको उचित है कि अपने और अपने कुटुम्बके शरीर मजबूत, निरालसी और निरोगी रहें इसपर पूरा २ ध्यान देवें। इस स्वास्थ्य रक्षाके लिये ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा और शुद्ध निरोगकारक पदार्थोंका खानपान है। देखनेमें आता है कि गृहस्थ घी और दूधका व्यवहार अधिकतासे करते हैं, परन्तु यह नहीं विचारते कि जिनको हम काममें लेते हैं वे रोग-वर्द्धक हैं या शरीरको बल प्रदाता हैं। इस वर्तमान समयमें जब कि गाएं भैंसें मांसाहार, चर्म और हड्डीके लिये अधिकतासे बध की जाती हैं, तब घी व दूधकी महंगी होनेसे लोभवश इनके विक्रेता घीमें चर्बी व तैलादि तथा दूधमें जल अवश्य मिला देते हैं और वही बाजारोंमें मिलता है। यहां तक कि ग्रामवासी भी मेल करनेमें शंका नहीं करते। तथा बहुतसे ग्रामवाले दूधमेंसे यंत्र द्वारा मलाई निकालके फिर उसे वेचने लाते हैं तथा मलाई इंग्रेजोंको देते हैं। ऐसा घी दूध शरीरको पुष्टिकारक नहीं हो सक्ता। अतएव गृहस्थियोंको स्वास्थ्य रक्षाके लिये अपने २ यहां

घरमें स्वच्छ पक्के स्थानमें गाय भैंसोंको पालना चाहिये और उनका थन धोकर उचित प्रमाणसे दूध निकालना चाहिये, ताकि उसके बछड़ोंको कष्ट न हो। इस दूधको अच्छे दोहरे छन्नेसे तुरन्त छान लेना चाहिये और उसी समय अग्निपर गर्म करनेको रख देना चाहिये नहीं तो दोहनेसे दो घड़ी याने ४८ मिनटके होते ही गाय भैंस जातिके सन्मूर्छन पंचेन्द्री त्रस जीव पैदा होने लग जायंगे। यदि कच्चा ठंढ़ा दूध पीना हो जो कि वास्तवमें बहुत लाभदायक होता है, तो दो घड़ीके भीतर ही पी लेना चाहिये। यदि दूध औटा लिया जावे तो जलके समान २४ घंटे तक चल सक्ता है। इसी ही दूधसे दही व घी बनाना चाहिये। इसलिये जिस मक्खनमें घी होता है उसको उसी समय निकलते ही ताlेना चाहिये। ऐसा ताजा घी शरीरको लाभकारी और शुद्ध होता है। बहुतसे जैनी लोग प्रमादके वश इन पशु-ओंको रक्षित रख शुद्ध घी दूध लेनेका यत्न नहीं करते और अनेक आरंभिक हिंसाजनित काम करते हुए भी गाय भैंस रखनेमें हिंसा होती है इतना मानकर रह जाते हैं। प्राचीन कालमें हरएक गृहस्थ इनको रखता था और यही धन नामका परिग्रह कहलाता था। जिसके पास यह नहीं होते थे उसीको ही निर्धन कहा जाता था। श्रावकधर्म पालनेवाले अपने घरमें इस परिग्र-हको उस समय तक रख सक्ते हैं जब तक वे परिग्रहका त्याग करके श्रावककी नौमीं श्रेणीमें न जावें।

अस्पर्श्य शूद्र—जो शूद्र मलीन कर्म करते हैं ऐसे अस्पर्श्य शूद्र भी जैन धर्मको धारण कर सक्ते हैं और ये शूद्र श्रावकके

१२ व्रतोंको पाल सक्ते हैं। प्राचीन जैन इतिहाससे प्रगट है कि अनेकोंने श्रावकव्रत पाल स्वर्ग गति प्राप्त की और फिर वहांसे आकर उत्तम क्षत्री कुलमें जन्म ले मोक्षके पात्र हुए। ऐसा शूद्र कौनसी प्रतिमा तकके नियम पाले सो किसी संस्कृत शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया।

इस कालमें मुनि धर्मका निर्वाह कैसे हो?–इस विषयका उत्तर कुछ कठिन नहीं है। श्रावकोंको ऐलक तक आचरण पालनेका अभ्यास करना चाहिये। जब अनेक ऐलक हो जावेंगे तब उनमेंसे मुनि होनेके लिये बहुत सुगमता होगी। मुनिके लिये केवल लज्जाका वस्त्र लंगोट ही छोड़ना पड़ेगा जिसे वे छोड़कर नग्न दिगम्बर हो सक्ते हैं। ऐसे साधुओंको धार्मिक स्वतन्त्रताकी अपेक्षा कहीं भी विहार करनेमें किसीको बाधा देनेकी जरूरत नहीं है। हिन्दुओंमें भी परम हंस नागे साधु होते हैं, जो विना रोकटोक घूमते हैं तो जैन साधुओंके भ्रमणमें क्यों कोई रुकावट हो सक्ती है? मुनियोंके प्रचार कम रहनेसे सरकारी कर्मचारी रुकावट डालते हैं। रुकावटका रुकना कठिन नहीं है। कर्मचारियोंको समझानेसे वे अवश्य मान सकेंगे। वे ऐसे ध्यानी वीतरागी साधुओंसे अपने राज्यको पवित्र समझेंगे, देशी रजवाड़ोंमें तो मुनिगण सुगमतासे विहार ही कर सक्ते हैं। इसमें भी कोई हर्ज न होगा यदि एक २ विशेष २ प्रान्तके ग्रामोंमें १-१ मुनि विहार करें। मुनि धर्मके सम्बन्धमें हम इस जिनेन्द्र मतदर्पणके किसी अन्य भागमें प्रगट करेंगे।

नित्यनियम पूजा ।

देव–शास्त्र–गुरु पूजा ।

ओं जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
ओं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः ।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत-लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहुलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारिसरणं पव्वज्जामि–अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा ।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये ।)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥
(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये ।)

(यदि अवकाश हो, तो यहांपर सहस्रनाम पढकर दश अर्घ देना चाहिये, नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढकर एक अर्घ चढाना चाहिये) ।

उदकचंदनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥७॥
ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु-
जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय
स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।

स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ ११ ॥
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १२ ॥
(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः । श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः । श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः । श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः । श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः । श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः । (पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥
(पुष्पांजलि क्षेपण)

(आगे प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये ।)

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसं श्रोतृपदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥
जङ्घावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तु प्रसूनबीजाङ्कुरचारणाह्वाः ।
नभोऽङ्गणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि ।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥
सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोः नः॥७॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥
आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

इति स्वस्तिमंगलविधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसन्तापहर्ता
त्रैलोक्याक्रान्तकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसम्पद्वरयुवतिकरालीढकण्ठः सुकण्ठै-
र्देवेन्द्रैर्वन्द्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥१॥

जय जय जय श्रीसत्क्रान्तिमभो जगतां पते !
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भासि मज्जतां ।
जय जय महामोहध्वान्तप्रभातकृतेऽर्चनम्
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥२॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् !
(इत्याह्वानम्)

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ट । ठः ठः ।
(इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।
(इति सन्निधिकरणम्)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पादपंकेरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं सम्पूजयामोऽधुना ॥३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्नि-
हितो भव भव वषट् ।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान् शुम्भत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥१॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्वाऽहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचन्दनैर्गन्धविलुब्धभृंगैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥२॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥४॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानंतज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुदर्पकन्दर्पविसर्पसर्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥५॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान् ।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगन्धगन्धैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥७॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसामगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान् ।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥८॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनंतानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम ॥९॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्टिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा—
स्ते भव्याःसकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम ॥१॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षेपण करना ।)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनन्दनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥
चंद्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥

अनन्तो धर्मनामा च शांतिः कुन्थुर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥ ४ ॥
कर्म्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसम्भवः ।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः ।
चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥ ६ ॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ८ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना ।)

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ९ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना ।)

अथ देवजयमाला प्राकृत ।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु ।
तुहु चरणविहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥१॥
जय रिसह रिसीसर णमियपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय ।
जय संभव संभवकयविओय । जय अहिणंदण णंदिय पओय ॥

जय सुमइ सुमइ सम्मयपयास । जय पउमप्पह पउमाणिवास ।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंततरंग । जय सयिल सीयलवयणभंग ।
जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज । जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥४॥
जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण ।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त ॥५॥
जय कुंथु कुंथुपंहुअंगिसदय । जय अर अर माहर विहियसमय ।
जय मल्लि मल्लिआदामगंध । जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥६॥
जय णमि णमियामरणियरसामि । जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि ।
जय पास पासछिंदणकिवाण । जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥७॥

घत्ता ।

इह जाणिय णामहिं, दुरियविरामहिं, परहिंविणमिय सुरावलिहिं ।
अणहणाहिं अणाइहिं, समियकुवाइहिं, पणविमि अरहंतावलिहिं ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ शास्त्रजयमाला प्राकृत ।

संपइ सुहकारण, कम्मवियारण, भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि, सत्तपयस्समि, सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥ १ ॥
जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार, गणिंदविगुंफिय गंथपयार ।
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥२
अवग्गहईहअवायजुएहि, सुधारणभेयहिं तिण्णिसएहि ।
मई छत्तीस वहुप्पमुहाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥३॥

सुर्द पुण दोण्णि अणेयपयार, सुवारहभेय जगत्तयसार ।
सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥४

जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि, पयासइ पुण्णपुराकिउलद्धि ।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥५

जु लोयअलोयह जुत्ति जणेइ, जु तिण्णिवि कालसरूव भणेइ ।
चउगगइलक्खण दुज्जउ जाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ, सुसावयधम्मह जुत्ति जणेइ ।
णिउग्गुवितिज्जउ इत्थु वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि

सुजीवअजीवह तच्चह चक्खु, सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु ।
चउत्थुणिउग्गु विभासिय णाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

तिभेयहिं ओहि विणाण विचित्तु, चउत्थु रिजाविउलं मयउत्तु ।
सुखाइय केवलणाण वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु, महातमणासिय सुक्खणिहाणु ।
पयच्चहुभत्तिभरेण वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

पयाणि सुबारहकोडिसयेण, सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण ।
सहसअट्ठावण पंचवियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

इक्कावण कोडिउ लक्ख अठत्र, सहस चुलसीदिसया छक्केत्र ।
सढाइगवीसह गंथपयाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

घत्ता ।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई, जो भवियण णियमण धरई ।
सो सुरणरिंदसंपय लहई, केवलणाण वि उत्तरई ॥३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथ गुरुजयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलह कारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तव कम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥ १ ॥
वंदामि महारिसि सीलवंत, पंचेंदियसंजम जोगजुत्त ।
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति, जे चउदहपुव्वह मुणि थुणंति ॥२॥
पादाणुसारवर कुट्ठबुद्धि, उप्पण्णजाह आयासरिद्धि ।
जे पाणाहारी तोरणीय, जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥
जे मोणिधाय चंदाहणीय, जे जत्थत्थवणि णिवासणीय ।
जे पंचमहव्वय धरणधीर, जे समिदिगुत्तिपालणहिं वीर ॥४॥
जे वड्ढहिं देह विरत्तचित्त, जे रायरोसभयमोहचत्त ।
जे कुगइहि संवरु विगयलोह, जे दुरियविणासणकामकोह ॥५॥
जे जल्लमल्लतणलित्त गत्त, आरंभ परिग्गह जे विरत्त ।
जे तिण्णकाल बाहर गमंति, छट्ठट्ठम दसमउ तउचरंति ॥६॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरसभोयण रइ करंति ।
ते मुणिवर वंदउँ ठियमसाण, जे कम्म डहइवरसुक्कझाण ॥७॥
बारहविह संजम जे धरंति, जे चारिउ विकहा परिहरंति ।
बावीस परीषह जे सहंति, संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥
जे धम्मबुद्ध महियलिथुणंति, जे काउस्सग्गो णिस गमंति ।
जे सिद्धविलासणि अहिलसंति, जे पक्खमास आहार लिंति ॥

गोदूहण जे वीरासणीय, जे धणुह सेज वज्जासणीय ।
जे तवलेण आयास जंति, जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥१०॥
जे सत्तुमित्त समभावचित्त, ते मुणिवर वंदउं दिढचरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त, ते मुणिवरवंदउं जगपवित्त ॥११॥
जे सुज्झाणिज्झा एकचित्त, वंदामि महारिसि मोक्खपत्त ।
रयणत्तयरंजिय सुद्ध भाव, ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥१२

घत्ता ।

जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधूअणुराईया ।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते रिसिवर मइ झाईया ॥१३॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा ।

अडिल्ल छंद ।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांतजू ।
गुरु निरग्रंथ महन्त मुकतिपुरपन्थजू ॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥१॥

दोहा—पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

गीता छन्द ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा-मलिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदरमझार प्रानी, तप्त अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ २ ॥

दोहा-चंदन शीतलता करै, तप्तवस्तु परवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,-के निमित्त सुविधि ठई ।
अति दृढ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि, तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ३ ॥

दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामी-
ति स्वाहा ॥ ३ ॥

जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान है।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान है॥
लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ४ ॥
दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
तासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामी-
ति स्वाहा।

अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुडसमान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥
दोहा—नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय चरुं निर्वपामी-
ति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिर महाबली।
तिहिकर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली॥

इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ६ ॥
दोहा–स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व-पामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधि ताकरि सकलपरिमलता हंसै॥
इह भांति धूप चढाय नित, भवज्वलनमांहि नहीं पचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ७ ॥
दोहा–अग्निमांहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं॥
सो फल चढावत अर्थ पूरन, परम अमृतरस सचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ८ ॥
दोहा–जे प्रधान फल फलविषै, पंचकरण-रसलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, वहुजनमके पातक हरूं ॥
इह भांति अर्घ चढाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ९ ॥

दोहा–वसुविधि अर्घ संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥१॥

पद्धरीछन्द।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादशदोषराशि।
जे परम सगुण हैं अनंत धीर, कहवतके छयालिस गुण गंभीर ॥२
शुभ समवरणशोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदों मनवचतनकरि सु सेव ॥३॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥
सो स्यादवादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध
संसारदेहवैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥

गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारनतरन जिहाज ईस ॥
गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचकाय ॥७॥

सोरठा-कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना-आगे जिस भाईको निराकुलता स्थिरता हो, वह वीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करे। यदि स्थिरता नहीं हो, तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर अर्घ चढावे।

अथ विद्यमान वीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥१॥

ॐ ह्रीं सीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभाननअनन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचंद्राननचन्द्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ।

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीं गतान्।
वन्दे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान्कल्पामरान्सर्वगान् ॥
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै-
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये ॥१॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ सिद्धपूजा प्रारभ्यते ।

ऊर्द्ध्वाधोरयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं ।
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितम् ॥
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं ।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

निजमनोमणिभाजनभारया सम्यसैकसुधारसधारया ।
सकलबोधकलारमणीयकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

सहजकर्मकलङ्कविनाशनैरमलभावसुभाषितचन्दनैः ।
अनुपमानगुणावलिनायकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

सहजभावसुनिर्मलतन्दुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः ।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया ।
परमयोगबलेन वशीकृतं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणान्तकैः ।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये क्षुधारोगविनाशाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः रुचिविभूतितमः प्रविनाशनैः ।
निरवधिस्वविकाशविकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः ।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अष्टकर्मविध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

परमभावफलावलिसम्पदा सहजभावकुभावविशोधया ।
निजगुणाऽऽस्फुरणात्मनिरञ्जन सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै ।
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ॥

यश्चिन्तामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोऽपि तीर्थंकराः ।
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥११॥

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शान्त निरंश । निरामय निर्भय निर्मलहंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥ विदूरितसंसृतभाव निरङ्ग । समामृतपूरित देव विसङ्ग ॥ अबन्ध कषायविहीन विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपाश । सदामलकेवलकेलिनिवास ॥ भवोदधिपारग शान्त विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ३ ॥ अनन्तसुखामृतसागर

धीर। कलङ्करजोमलभूरिसमीर ॥ विखण्डितकाम विराम विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक। विबोधसुनेत्रविलोकितलोक॥ विहार विराव विरङ्ग विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥ रजोमलखेदविमुक्त विगात्र। निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥६॥ नरामरवन्दित निर्मलभाव। अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव। सदोदय विश्वमहेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिंद्र। परापर शङ्कर सार वितन्द्र ॥ विकोप विरूप विशङ्क विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८ ॥ जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार ॥ अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥९॥ विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ ॥ अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१०॥

घत्ता।

असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं परपरणतिमुक्तं पद्मनन्दीन्द्रवन्द्यम् ॥ निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छंद।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥

शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥१॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे॥
ज्ञायकके आकार ममत्व निवारिकैं।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं ॥२॥

दोहा।

अविचलज्ञानप्रकाशते, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरे सौं पाइये, परमसिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अथ शान्तिपाठः प्रारभ्यते।

(शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये)

दोधकवृत्तम्।

शान्तिजिनं शशिनिर्म्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्च्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥१॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥२॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥३॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसन्ततिलका ।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा-
स्तीर्थङ्करा सततशान्तिकरा भवन्तु ॥ ५ ॥

इन्द्रवज्रा ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥६॥

स्रग्धरावृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप् ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तम्।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ १० ॥

आर्या।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःखक्खयं दिंतु ॥११॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥१२॥

(परिपुष्पांजलिंक्षिपेत।)

अथ विसर्जनम्।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्ज्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥४॥